१९६१
राजकमल पॉकेट बुक्स में पहली बार

कलापक्ष
एसोसिएटिड आर्टिस्ट्स, नई दिल्ली

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

मुद्रक
मूवीज़ प्रेस, दिल्ली

प्राक्कथन

अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष (१९५७-१९५८) और अंतरराष्ट्रीय भू-भौतिक सहयोग, जिसके अंतर्गत अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के काम को १९५९ में जारी रखा गया, अन्तरिक्ष-युग के आरंभ के परिचायक हैं।

अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के वैज्ञानिक कार्यक्रम के बारे में आम जनता के लिए प्रकाशित पुस्तकों में 'पृथ्वी और अन्तरिक्ष' पहली थी। विषय की जटिलता और नवीनता के कारण अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष पर पुस्तकों का अभी भी अभाव ही है। सोवियत संघ तक ने, जिसने इस ऐतिहासिक कार्य में शानदार योग दिया था, इस विषय पर कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं की है, संभवतः एक दिन इस विषय पर कई पुस्तकें प्राप्त होंगी।

तब तक 'पृथ्वी और अन्तरिक्ष' अपने समय की एक महत्वपूर्ण पुस्तक रहेगी। जिन प्रश्नों के कारण अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष का सूत्रपात हुआ, वे इस पुस्तक में बिलकुल उसी तरह पेश किये गए हैं, जैसे वैज्ञानिकों ने स्वयं उन्हें रखा था। किसी भी मामले में उन प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया गया है। इस दृष्टि से यह पुस्तक आज भी उतनी ही ताजा है, जितनी कि यह लिखने के समय थी।

पुस्तक के अन्त में अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष तथा अंतरराष्ट्रीय भू-भौतिक सहयोग के कार्य का सिंहावलोकन और शामिल कर दिया गया है। इससे पुस्तक का वर्ण्य-विषय स्वाभाविकतया फैल गया है, लेकिन यह ध्यान में रखने की बात है कि यह पुस्तक मनुष्य के अपने चारों ओर की दुनिया को समझने के प्रयास की कहानी के रूप में लिखी गई थी। इस सिंहावलोकन में उन सभी प्रश्नों के विस्मयकारी किन्तु आंशिक उत्तर दिये गए हैं, जो अन्तरिक्ष-युग के समारम्भ से उत्पन्न हुए हैं।

— अलेक्जेंडर मारशैक

जनवरी, १९६०

भूमिका

अंतरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष विज्ञान की प्रगति तथा मनुष्य के पृथ्वी और विश्व से सम्बन्धों में एक नये युग के प्रारम्भ का प्रतीक है, फिर भी, जहाँ तक जनसाधारण का सम्बन्ध है, भू-भौतिकी सबसे कम समझी जाने वाली विज्ञान की शाखाओं में एक है। इस समय भू-भौतिकीविदों की बड़ी कमी है और यह विज्ञान कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम तक में सम्मिलित नहीं है।

यह पुस्तक अंतरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष की पृष्ठभूमि को समझाने और उसे तथा भू-भौतिकी को—ऐतिहासिक दृष्टि-क्षेत्र में रखने का एक प्रयास है। दुनिया-भर की पत्र-पत्रिकाएँ अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के सिलसिले में उपग्रहों की सनसनीखेज़ उड़ान को मनुष्य की 'अन्तरिक्ष में पहली छलाँग' बता रही हैं, लेकिन इस समाचार के पीछे यह तथ्य भी रहता ही है कि अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष एक अनुसंधानात्मक वैज्ञानिक प्रयास है, और यह केवल मनुष्य के ज्ञान तथा जीवन को ही नहीं, प्रत्युत जिस धरती पर वह रहता है, उसके तथा उसके ऊपर जो अन्तरिक्ष है, उसके आपेक्षिक अज्ञान को भी अभिव्यक्त करता है।

मैं अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के कार्य में रत वैज्ञानिकों तथा अधिकारियों और संसार-भर के अन्य वैज्ञानिकों को धन्यवाद देना चाहता हूँ, जिन्होंने सामग्री के संकलन में मेरी सहायता की है और जिन्होंने पाँडुलिपि के विभिन्न अंशों को जाँचा है।

विशेषकर मैं अंतरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के कार्य में लगे निम्न-लिखित वैज्ञानिकों के प्रति, अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष में उनके कार्य

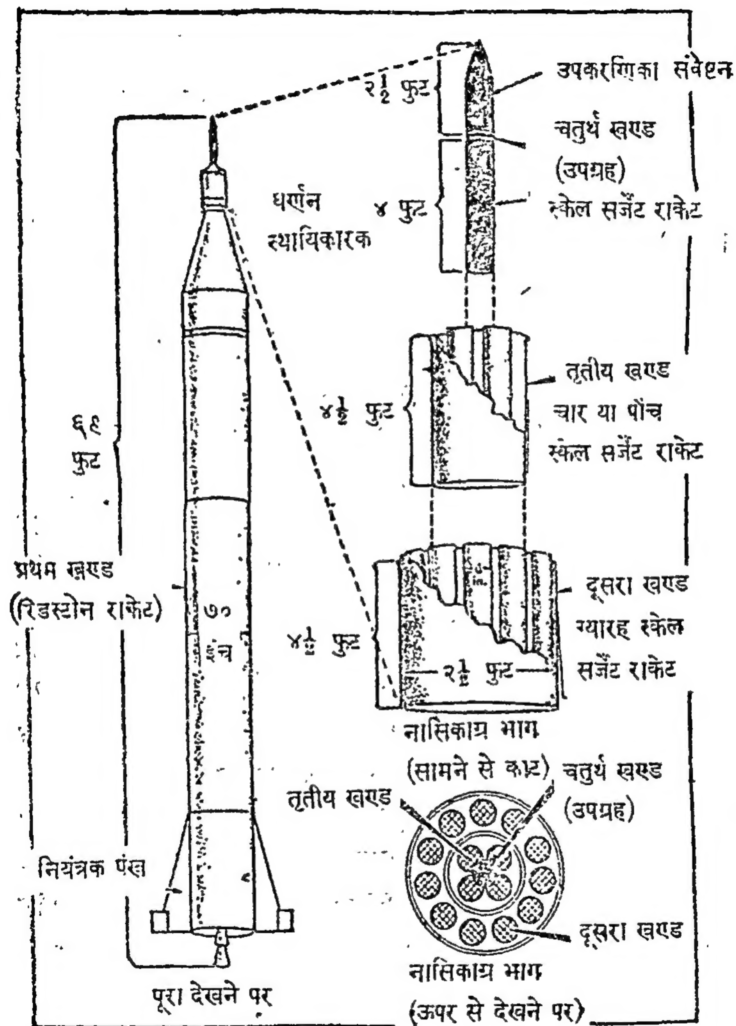
से सम्बन्धित अध्यायों की जाँच करने के लिए, आभार प्रकट करता हूँ — अमरीकी नौ सैनिक वेधशाला की समय-सेवा के निर्देशक तथा अक्षांश और रेखांश-समिति के अध्यक्ष, डॉक्टर विलियम मार्को विट्ज़, नौ सैनिक अनुसंधान प्रयोगशाला के सागर-विज्ञान-विभाग के अध्यक्ष तथा सागर-विज्ञान-समिति के अध्यक्ष डॉक्टर गार्दन जी० लिल, न्यूयार्क विश्वविद्यालय के मौसम-विज्ञान-विभाग के सदस्य तथा मौसम-विज्ञान-समिति के अध्यक्ष डॉक्टर बी० हरविट्ज़, अमरीकी मौसम-कार्यालय के मौसम वैज्ञानिक अनुसंधान के निर्देशक तथा राष्ट्रीय समिति व द० ध्रुव क्षेत्र-समिति के सदस्य डॉक्टर हैरी वैक्सलर; अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के वरिष्ठ वैज्ञानिक तथा भू-चुंबकत्व-समिति के अध्यक्ष डॉक्टर ई० ओ० हल्बर्ट; भू-चुंबकत्व के कार्नेगी इंस्टीट्यूट के तथा गुरुत्व-समिति के सचिव डाक्टर हावर्ड ई० हैटेल, कैलिफ़ोनिया विश्वविद्यालय के भू-भौतिकी विभाग के अध्यक्ष तथा भूकंप विज्ञान-समिति के अध्यक्ष डॉक्टर पैरी बायर्ली; अमरीकी भौगोलिक समाज के, तथा हिमनद-विज्ञान-समिति के अध्यक्ष डॉक्टर विलियम ओ० फ़ील्ड, अमरीकी नौसेना की वेंगार्ड परियोजना के अध्यक्ष डॉक्टर जान जी० हैगन, राष्ट्रीय मानक कार्यालय के तथा सौर सक्रियता समिति के सदस्य श्री एलान शैपले तथा अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष के अन्तरराष्ट्रीय उप-सभापति डॉक्टर लायड वी० बर्कनेर, जिन्होंने अयनमंडल पर लिखे अध्याय की जाँच की। इन वैज्ञानिकों का अपने-अपने विशिष्ट क्षेत्र से सम्बन्धित सामग्री की यथार्थता से ही सम्बन्ध है।

सहायता तथा सहयोग के लिए मैं राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी तथा अमरीकी अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष-समिति के कार्यकारी निर्देशक श्री ह्यू ओडीशाँ, वुड्स होल सागर वैज्ञानिक इंस्टीट्यूशन के डॉक्टर जान हान, कोलम्बिया विश्वविद्यालय के डाक्टर लॉयड मोट्ज़ तथा डॉक्टर मॉरिस ईविंग, माउंट विलसन वेधशाला के डाक्टर सेंट बी० निकलसन, पैन अमेरिकन एयरवेज़ के मुख्य मौसम-वैज्ञानिक श्री ई० बी० बक्सटन, अमरीका का सागर तट तथा भू-मापन सर्वेक्षण कार्यालय

तथा कई अन्यों को भी धन्यवाद देता हूँ। कनाडियाई प्रतिरक्षा अनुसंधान मंडल के अध्यक्ष डॉक्टर ई० आर० होय, जिन्होंने भू-चुंबकत्व, भू-धाराओं तथा उ० ध्रुव अनुसंधान पर सोवियत कृतियों के अपने श्रेष्ठ अनुवाद मुझे उपलब्ध किये, तथा स्वर्गीय कैप्टेन हैरल्ड गेट्टी, जिन्होंने मुझे अपनी पुस्तक 'दी रैपट बुक' से चित्र लेने की आज्ञा दी, मेरे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

पांडुलिपि की प्राविधिक तैयारी में सहायता देने के लिए मैं कुमारी टॉबी बेल्लिन के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ।

—अलक्जेंडर मारशेक



आकृति १—प्रथम अमरीकी भू-उपग्रह को छोड़ने वाला जुपीटर-सी यान

: १ :

पृथ्वी का वर्ष

अंतरराष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष* (१ जुलाई, १९५७ से ३१ दिसंबर, १९५८) अब तक किये गए सभी वैज्ञानिक अनुसंधान-कार्यक्रमों में सबसे बड़ा अनुसंधान-कार्यक्रम है। इसमें ६७ राष्ट्रों की सरकारों के सहयोग से ५००० से अधिक वैज्ञानिक पृथ्वी, सूर्य तथा अंतरिक्ष के रहस्यों पर दूरगामी अभियान में भाग ले रहे हैं।

इतिहास में पहली बार सारी पृथ्वी पर की मुख्य घटनाओं का अध्ययन एक साथ किया जा रहा है पृथ्वी-भर पर फैले २५०० से अधिक वैज्ञानिक केन्द्र तथा उपकेन्द्र इसमें सम्मिलित हैं और इस प्रयास के लिए राडार, रेडियो समस्थानिक तिथ्यांकन, रेडियो ज्योतिर्विज्ञान रॉकेटों तथा उपग्रहों और इलेक्ट्रानी संगणकों के नये यंत्रों और प्रविधियों को जुटाया गया है।

यह संयुक्त प्रयास क्यों? इसलिए कि संसार की प्रमुख घटनाएँ इतनी विराट हैं कि किसी एक ही देश की सीमाओं के भीतर से प्रेक्षक उसका केवल एक छोटा भाग ही देख सकते हैं। मौसम, वायु, महासागरों तथा पृथ्वी के हिम, ऊपरी वायुमण्डल या अयनमण्डल, ठोस पृथ्वी, अंतरिक्ष तथा ऊर्जा के मुख्य स्रोत, सूर्य से पृथ्वी की तरफ आने वाली ऊर्जा के विशद अध्ययन के लिए समूची पृथ्वी और सौर-

*सुविधा के लिए अंतरराष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष को अंभूव कहा जाएगा —अनु०

परिवार की 'प्रयोग शाला' चाहिए, ये घटनाएँ इतनी निकट सम्बन्धित हैं कि इनका अलग-अलग अध्ययन कठिन है, इसलिए विज्ञान की बारह से अधिक शाखाओं के अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक संगठन इस कार्य में सहयोग कर रहे हैं।

भू-भौतिकी—'पृथ्वी की भौतिकी'—पृथ्वी तथा उसके वायुमण्डल का विज्ञान है। लेकिन अंभूव पृथ्वी की परिधि से बाहर निकलकर अंतरिक्ष के विज्ञानों—ज्योतिर्विज्ञान तथा ज्योतिभौतिक—तक चला गया है, क्योंकि 'बाहर' घटने वाली घटनाएँ पृथ्वी को हजारों तरह से प्रभावित करती हैं।

वायुमण्डल का १५ से २०० मील तक की ऊँचाइयों पर अध्ययन करने के लिए पृथ्वी के सभी भागों से सैकड़ों रॉकेट तथा हजारों गुब्बारे छोड़े जा रहे हैं। सोवियत संघ तथा अमरीका द्वारा छोड़े गए कृत्रिम उपग्रह वायुमण्डल का अध्ययन करने के लिए २०० से १६०० मील तक की ऊँचाइयों पर पृथ्वी के आसपास घूम रहे हैं। १००० मील से ७००० मील तक 'अंतरिक्ष' की जाँच के लिए नयी रेडियो-प्रविधियाँ प्रयोग में लाई जा रही हैं। अंतरिक्ष-किरणें हमें और भी दूर के अंतरिक्ष के बारे में जानकारी दे रही हैं। दुनिया-भर में ज्योतिर्विद् सूर्य की सतह पर घटने वाली घटनाओं की ओर चौबीसों घण्टे रोज़ ताक रहे हैं।

अंभूव के दौरान ग्यारह राष्ट्रों के वैज्ञानिक द० ध्रुव महाद्वीप पर सरदियाँ काटकर नये इतिहास की रचना कर रहे हैं। दो राष्ट्रों—अमरीका तथा सोवियत संघ—के वैज्ञानिक द० ध्रुव महासागर की तैरती हिम पर ठहरे हुए हैं। अंभूव के जलयान तथा वायुयान संसार के प्रमुख राष्ट्रों की नौ तथा वायुसेनाओं की सहायता से महासागरों तथा निचले वायुमण्डल को आर-पार कर रहे हैं और उनका अध्ययन कर रहे हैं। उन्हें कई देशों के मछली तथा ह्वेल पकड़ने के जहाजी बेड़ों का तथा संसार के सभी मार्गों पर अपने वायुयान उड़ाने वाली व्यापारिक विमान-कम्पनियों का सहयोग प्राप्त है।

महासागरों तथा पृथ्वी के इतिहास को प्रकट करने के लिए समुद्रों के पेंदे से रेत तथा कीचड़ के नमूने निकाले जा रहे हैं। पृथ्वी के आस-पास की हवा तथा समुद्री पानी के नमूने लेकर उनका विश्लेषण किया जा रहा है। पवनों तथा गहरे सागरों की गतियों का प्रेक्षण किया जा रहा है। पृथ्वी के केन्द्र का सही चित्र लेने के लिए भूकंपों का अध्ययन किया जा रहा है। ज्वार की विराट लहरों की जाँच की जा रही है। पृथ्वी पर हिम तथा पानी की मात्राएँ तथा उस पर आने वाले सूर्य-प्रकाश की मात्रा को नापा जा रहा है। 66/57

गतिमान पृथ्वी की सभी बड़ी घटनाओं का एक ही समय में 'सारात्मक ढंग से' अध्ययन किया जा रहा है और इस तरह से जो लाखों तथ्य एकत्र किये जा रहे हैं, फिर इनकी तुलना की जाएगी। अब तक तथ्य जानने के लिए जितने प्रयास किये गए हैं, अंभूव उनमें सबसे बड़ा है। मनुष्य ने कभी भी जिन प्रश्नों को पूछा है, यह उनमें से कुछ सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर ढूंढ रहा है।

क्या पृथ्वी की जलवायु बदल रही है? सूर्य की ऊर्जा का वितरण और उसका वायुमण्डल तथा समुद्रों में उपयोग किस तरह होता है? अगर ध्रुवप्रदेशों की बर्फ पिघल जाए, तो क्या हमारे सागर-तटों पर बाढ़ आ जाएगी? संसार के मौसम को द० ध्रुव-क्षेत्र किस तरह प्रभावित करता है? क्या चक्रवातों की भविष्यवाणी करना व्यवहार्य हो सकता है? पृथ्वी पर सभी दिशाओं से सतत बरसने वाली ब्रह्मांड किरणें कहाँ से आती हैं? ऊपरी अयनमण्डल के रहस्य का क्या उत्तर है? क्या अंतरिक्ष-यात्रा सम्भव और कुशलता से हो सकेगी?

सैकड़ों सवालों और कई नये-पुराने सिद्धांतों को अंभूव द्वारा जाँचा जा रहा है। क्या, जैसा कि एक सिद्धांत दावा करता है, महाद्वीप सरक रहे हैं? क्या, जैसा कि एक दूसरा सिद्धांत मानता है, पृथ्वी सूर्य के वायुमण्डल की पकड़ में है? द० ध्रुव-क्षेत्र एक महाद्वीप है या बर्फ़ से ढके द्वीपों की एक श्रृंखला है?

जिन बातों से अंभूव का मुख्य सम्बन्ध है, उनमें से एक सूर्य है,

क्योंकि लगभग सारी ही भू-भौतिकी-क्रियाशीलता किसी-न-किसी रूप में सौर-क्रियाशीलता से ही सम्बद्ध है। सूर्य पवनों, मौसम तथा समुद्रों को 'शक्ति' देता है और वह हमारी जलवायु का स्रोत है।

यह उन चुंबकीय 'तूफानों' का कारण है, जो पृथ्वी को तत्काल ध्रुव-से-ध्रुव तक व्यापकर और घेरकर सुदूर रेडियो-संचार को अवरुद्ध कर देते हैं और जिनके कारण दिक्सूचकों की सूइयाँ पागलों की तरह नाचने लगती हैं।

१९५७-५८ में अंभूव मनाने का सुझाव पहले-पहल अप्रैल, १९५० में अमरीका के मेरीलैंड राज्य के सिल्करस्प्रिंग नामक स्थान पर हुए वैज्ञानिकों के एक अनौपचारिक सम्मेलन में संस.र के एक प्रमुख अयनमण्डल-विशेषज्ञ डॉक्टर लॉयड वी० बर्कनर ने दिया था। विज्ञान संघों की अंतरराष्ट्रीय परिषद् ने इस प्रस्ताव को मंजूर कर लिया और तत्सम्बन्धी कार्यक्रम तथा समस्याओं पर विचार करने के लिए उसने संसार के राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगठनों के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया। नवम्बर, १९५४ में हुई इस बैठक के बाद ही संसार के ६४ राष्ट्रों की सरकारों तथा ग़ैर-सरकारी संस्थाओं को इसमें शामिल होने और सहायता देने के लिए कहा गया।

डॉक्टर बर्कनर अयनमण्डल में होने वाले चुंबकीय 'तूफानों' पर माने हुए विद्वान् हैं। १९५७-५८ में अंभूव के मनाने का सुझाव उन्होंने इसलिए दिया था कि सूर्य उस समय अपने एक सौर-कलंक-चक्र के चरम पर होने वाला था और उसकी बढ़ी हुई क्रियाशीलता के परिणामों का तब बहुत प्रभावी ढंग से अध्ययन किया जा सकता था। सौर-क्रियाशीलता के इन परिणामों को उसके दूसरे चरम के समय देखने का अवसर फिर १९७० तक नहीं मिलने वाला था।

सौर-कलंकों की क्रियाशीलता एक ऐसी घटना है, जिसमें मौसम वैज्ञानिक, हिमनद-वैज्ञानिक, अयनमण्डल-वैज्ञानिक, रेडियो-उद्योग, नौकारोही और संसार की थल तथा जल-सेनाएँ भी दिलचस्पी रखती हैं। यह कृषि तथा कई अन्य मानविक कार्य-व्यापारों के लिए महत्व-

पूर्ण है।

द्वितीय विश्व-युद्ध के समय, जब विश्व-व्यापी सैन्य तथा ना-सैन्य अभियान तथा रडियो तथा राडार के नये उपयोग ऐसे भू-भौतिकीय तथ्यों तथा सौर-पृथ्वी सम्बन्धों की ओर इंगित करने लगे, जो समझ में नहीं आते थे, तो इन अध्ययनों की आवश्यकता स्पष्ट हो गई। आज पृथ्वी को समझने के लिए ये प्रश्न अतीव महत्त्व रखते हैं और युद्ध तथा शांति के लिए भी ये इतने ही महत्वपूर्ण हैं।

अंभूव कार्यक्रमों में सबसे व्यापक—समुद्रों पर, ध्रुव प्रदेशों में तथा आकाश में—कार्यक्रम सम्भवतः अमरीका तथा सोवियत संघ के हैं। और राष्ट्रों के कार्यक्रम भी बड़े-बड़े हैं और वे कुछ बहुत ही अग्रिम प्रकार का वैज्ञानिक कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार ज्ञात वैज्ञानिक परिणामों का सभी सहयोजक राष्ट्रों के मध्य अबाध विनिमय होगा।

इस अठारह मासी 'साल' के हर दिन के भीतर किये जाने वाले कार्यों की एक समय-तालिका बनाली गई है। पृथ्वी के सभी भागों में लगातार वैज्ञानिक प्रेक्षण चल रहे हैं। कई तो दिन में कई-कई बार किये जाते हैं। किन्तु कठिन तथा विशेष प्रेक्षण 'नियमित-विश्व-दिवसों' पर ही किए जाते हैं। ऐसे तीन से पाँच तक दिन हैं तब विशेप प्रयोग किये हैं और अयनमंडल में पृथ्वी से ५० से २०० मील की ऊँचाई तक रॉकेट छोड़े जाते है। अधिक लम्बी प्रेक्षण अवधियाँ, जिन्हें विश्व-मौसम-वैज्ञानिक कालांतर कहा जाता हैं, ऋतु-परिवर्तन के आसपास—मार्च तथा सितम्बर में सूर्य के भूमध्य रेखा को पार करने के दिनों तथा जून व दिसम्बर में सौर-संक्रांतियों के ठीक बाद शुरू होती हैं। मौसमी-परिवर्तनों के समय मौसम, सूर्य तथा वायुमण्डल के सकेन्द्रित प्रकरणों की दस-दिवसीय अवधियाँ होती हैं।

अंभूव प्रशासन की विश्वव्यापी सेवा और समायोजन का केन्द्र बेल्जियम की राजधानी ब्रसेल्स का एक उपनगर ड्क्ले है। इसके अतिरिक्त सूचना-संग्रहण तथा पृथक्करण के लिए अमरीका, पश्चिमी यूरोप, सोवियत संघ, आस्ट्रेलिया तथा एशिया के नगरों में आँकड़ा-केन्द्र स्थापित

किये गए हैं। जो जानकारी एकत्र की जा रही है वह इतनी अधिक है कि उसके संगठन, संगणन तथा स्पष्टीकरण में पाँच, दस या पन्द्रह वर्ष तक लग सकते हैं। तथ्यों के इस विराट संग्रह का उपयोग वैज्ञानिक भावी भू-भौतिकीय 'वर्षों' के दौरान एकत्र आँकड़ों के साथ तुलना करने में करेंगे और यह इन 'वर्षों' के बीच वैज्ञानिक कार्य के प्रभाव का काम करेगा। इसके पहले कि पृथ्वी के रूपों को समुचित रूप से समझा जा सके। इस तरह के दो या अधिक 'वर्ष' और उनके बीच किये बड़े वैज्ञानिक प्रयासों की ज़रूरत पड़ेगी।

इस विराट वैज्ञानिक ज्ञानमंडल की खोज पर पचास करोड़ डॉलर से अधिक खर्च होगा। अमरीका इसमें से ३,९०,००,००० डॉलर देगा। इसके अलावा दस करोड़ डॉलर वह कृत्रिम उपग्रह कार्यक्रम तथा उसके प्रसार के लिए पहले ही अलग लगा चुका है।*

करदाता के नजरिये से क्या यह धन का अच्छा विनियोग होगा? इसका उत्तर 'हाँ' ही है। यह एक बहुत ही लाभदायक अनुसंधान विनियोग हो सकता है। इससे प्राप्त जानकारियों को उपयोग में लाने के कुछ तरीके ये हो सकते हैं—अंतरिक्ष-विजय पहले हो सकेगी।

सूर्य की ऊर्जा और दिन-दिन के जीवन तथा अंतरिक्ष-यात्रा में इसके सम्भव उपयोग को ज़्यादा अच्छी तरह समझा जा सकेगा।

जलवायुविक परिवर्तनों के कारणों का, जिनसे मौसम में अप्रत्याशित परिवर्तन आते हैं, कभी सूखा, तो कभी विनाशक बाढ़ों का प्रकोप होता है, पता लगाया जा सकेगा।

अभी तक खोज से बचे महाद्वीप द० ध्रुव क्षेत्र के खनिज-साधनों की ओर वहाँ मनुष्य के बस सकने की सम्भावनाओं की जाँच की जा रही है।

विराट मत्स्य दलों के आविर्भाव और विलोप को ज़्यादा अच्छी

*उपग्रह-अनुसंधान पर होने वाला सोवियत संघ का व्यय बहुत करके उनके अन्तरमहाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र के सैनिक-विकास-कार्यक्रम का अंग है।

—ते०

तरह समझा जा सकेगा ।

पृथ्वी के आकार और आकृति को ध्यानपूर्वक मापा जा रहा है. इससे नौकायन-प्रविधियों में सुधार आयेगा।

अंभूव से प्राप्त गौण लाभों की तालिका तो अंतहीन होगी तथापि इस महान वैज्ञानिक अध्ययन का मूल प्रयोजन तथ्यों को एकत्र करना है।

अंभूव का सबसे चमत्कारी कार्यक्रम तो पृथ्वी के इर्द-गिर्द भू-उपग्रह का छोड़ा जाना ही है। उपग्रह मूलतः अनुसंधान का साधन है, और उसे सूर्य, अयनमंडल, अंतरिक्ष, ब्रह्मांड-किरणों, अंतरिक्ष की सूक्ष्म उल्काओं के बारे में तथ्य तथा स्वयं पृथ्वी के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए भेजा जा रहा है।

मनुष्य की पृथ्वी-विजय में अंभूव एक बड़ा मोड़ है। पृथ्वी की वैज्ञानिक समझ के एक नये युग में प्रवेश करने के ही साथ-साथ वह उसका भौगोलिक अन्वेषण पूरा कर रहा है और साथ ही वह उसके आखिरी, पृथ्वी से ऊपर और दूर के सीमांत में भी पहले क़दम रख रहा है।

अंभूव १३ 'कार्यक्रमों' में विभाजित है,* प्रत्येक कार्यक्रम का संबंध पृथ्वी की एक विराट घटना या गतिशील परिवर्तन-क्षेत्र से है। ये क्षेत्र तथा घटनाएँ हैं—वायुमण्डल, पानी के समुद्र, ऊपरी अयनमण्डल की चंचल परतें और अंततः गुरुत्वाकर्षण, जो 'शेष सब को साथ बाँधे रखता है।' इनमें ठोस पृथ्वी तथा पृथ्वी पर सूर्य और उसके परे से आने वाले विकिरण के विभिन्न प्रकार तथा पदार्थ-कण भी शामिल हैं।

मूलभूत भू-भौतिकीय घटनाएँ ये ही हैं। हमारी सभ्यता के

*हिमनद-विज्ञान, सागर-विज्ञान, मौसम-विज्ञान, सौर-क्रियाशीलता, मेरु-प्रकाश तथा वायु-उद्दीप्ति, ब्रह्मांड-किरणें, अयनमंडलीय भौतिकी, भू-चुंबकत्व, गुरुत्वाकर्षण, भू-कम्प-विज्ञान, रेडियो सक्रियता-अध्ययन, अक्षांश तथा देशांश और पृथ्वी का मापन तथा ऊपरी वायुमंडल की रॉकेटों तथा उपग्रहों द्वारा खोज।

विकास में इन सबने भाग लिया है।

अंभूव में भाग लेने वाले ६७ राष्ट्र

अर्जेनटाइना
आस्ट्रेलिया
आस्ट्रिया
बेलजियम
बोलीविया
ब्राज़ील
बल्गारिया
बर्मा
श्रीलंका
चिली
चीन (साम्यवादी)
चीन (फ़ारमोसा)
कोलंबिया
क्यूबा
कोरिया (उत्तरी)
चेकोस्लोवाकिया
डेनमार्क
डोमिनियन गणराज्य
पूर्वी अफ़रीका
इक्वेदोर
मिस्र
इथोपिया
फिनलैण्ड

फ्रान्स
जर्मनी (पूर्वी)
जर्मनी (पश्चिमी)
घाना
ब्रिटेन
यूनान
ग्वाटेमाला
हंगरी
आइसलेंड
भारत
इंडोनेशिया
ईरान
आयरलैंड
इसरायल
इटली
जापान
मलाया
मैक्सिको
मोरक्को
नीदरलैंड (हालैंड)
न्यूज़ीलैंड
पुर्तगाल

नार्वे
वाह्य मंगोलिया
पाकिस्तान
पनामा
पेरू
फिलिपीन
पोलैंड
रोडेशिया-न्यासालैंड
रूमानिया
सोवियत संघ
स्पेन
स्वीडन
स्विट्ज़रलड
ट्यूनीशिया
दक्षिण अफ्रीका संघ
अमरीका
उरूगुए
वेनेज़ुएला
वीयत नाम (उत्तर
वीयत नाम(दक्षिण
यूगोस्लाविया
कनाडा

: २ :

प्रारम्भ

गुफ़ाएँ प्राचीन मानव की शरण स्थलियाँ थीं। ये गुफाएँ यूरोप, प० एशिया, यूरेशिया के घास-मैदानों, चीन, भारत, अफ़रीका, उत्तर तथा दक्षिण अमरीका और आस्ट्रेलिया में पायी गई हैं। ये घाटियों, नदियों, झीलों या समुद्रों पर स्थित थीं। इन घाटियों की जलवायु कई-कई बार बदल चुकी है। कुछ झीलें अब सूख चुकी हैं; जहाँ कभी नदी बहा करती थी, वहाँ अब बंजर रेगिस्तान है। और जगहों पर समुद्रों ने बढ़कर गुफ़ाओं को जल-प्लावित कर दिया है।

गुफ़ाओं के फ़र्शों की खुदाई से पता चला है कि आदमी का वहाँ बार-बार आना-जाना हुआ है। प्रारम्भिक मनुष्य को पृथ्वी के बारे में क्या मालूम था ?

कुछ उन घटनाओं पर विचार कीजिए, जिनका आधुनिक भू-भौतिकी-विद अध्ययन और वैज्ञानिक ढंग से उपयोग करता है। प्रारम्भिक मनुष्य इन घटनाओं का उपयोग सहज ज्ञान और बुद्धि से करता था। गुफ़ा-वासी को गुरुत्व की तनिक भी कल्पना न थी, फिर भी वह गुरुत्व का 'उपयोग' कर सकता था। वह गढ़ा खोदकर उसमें गिरने वाले जानवर को फँसा सकता था। वह घोड़ों या हिरनों के झुंडों को डराकर चट्टानों से खड्ड में गिरा सकता था। उसने भाला बनाने की कला और कौशल पर माहिरी हासिल कर ली थी और फिर भाले की मार तथा जोर बढ़ाने के लिए उसे फेंकने का एक लोलक (पेंडुलम) यंत्र बना लिया था। उसने तीर और कमान को विकसित किया और तीर का निशाना ऊँचा,

लक्ष्य से ऊपर, साधना सीख लिया, क्योंकि गुरुत्व उसे चाप में नीचे लाता था। उसने यह भी सीख लिया कि तीर एक तरफ़ छोड़ना चाहिए, क्योंकि हवा उसे ले जाती थी।

उसने अपकेन्द्र-बल को 'उपयोग में लाना' सीख लिया। उसने बूमरैंग फेंकने का कौशल सीख लिया, और चाहे वह हवा में फेंकी वस्तुओं को प्रभावित करने वाले नियम न जानता था, फिर भी उसने यह कुशलता विकसित कर ली कि इस झुकी हुई, चक्कर खाती लकड़ी को इस तरह फ़ेंकना चाहिए कि वह वक्र पथ पर जाए। उसने बोला (दक्षिण अमरीका में प्रयुक्त पशु-फाँस) ईजाद किया जिसमें तीन डोरियों पर तीन पत्थर होते हैं और जो फेंके जाने पर एक केन्द्र के आस-पास चक्कर काटता जाता है और शिकार के पैरों में लिपट जाता है। जिससे वह बँधकर बेबस हो जाता है। उसने गोफण चलाना सीखा —इसमें भी एक छोटे से पत्थर पर चक्कर का ही अपकेन्द्र-बल का उपयोग किया जाता है। उसने फुँकनी बन्दूक बनाने की कला तक सीख ली, जिसमें फेफड़ों से निकाली साँस के जोर से भाला चलाया जाता है।

अनुसंधान-प्रयोगशाला में काम करने वाले अंभूव के प्राक्षेपिकी इन्जीनियर शायद तीर चलाना या बूमरैंग फेंकना न जानते हों, किंतु प्रक्षेपास्त्र को अंतरिक्ष में फेंकते समय वे गुरुत्व, वायु-प्रतिरोध तथा ऊर्जा के व्यय के उन्हीं तथ्यों का उपयोग करते हैं। राकेट या कृत्रिम भू-उपग्रह को ऊपर भेजने में लगने वाले गणित का एक बड़ा भाग इन्हीं तथ्यों पर निर्भर करता है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने गुरुत्व को खोजा नहीं, मगर उन्होंने यह अवश्य सीखा कि इसके प्रभावों का गणित द्वारा मापन तथा संगठन किस तरह किया जाए। अंभूव के उपप्रधान डाक्टर एल० वी० बर्कनर ने कहा है, "भू-भौतिकी का विज्ञान, जैसा कि हम उसे जानते हैं, पृथ्वी की जटिलताओं के अन्वेषण के लिए यथार्थ गणित-साधनों

संसार की घटनाएँ नहीं बदली हैं। जो चीज बदली है, वह है हमारे ज्ञान की अवस्था। यह ज्ञान मानव-जाति के अधिकांश इतिहास और सभ्यता की कुंजी रहा है।

गुफावासी के पास एक बेजोड़ जगह थी, जहाँ से वह सूर्य का कार्य-व्यापार देख सकता था। सरदियों में दक्षिण या पूर्व की तरफ मुँह वाली उसकी गुफाओं में धूप काफी भीतर तक चली आती थी और आकाश पर चाप बनाता, उसे पार करता सूरज गुफा के अन्दर भी देखा जा सकता था। गरमियों में वह गुफा के सीधे ऊपर होता और उसकी धूप गुफा में ज्यादा भीतर तक न जाती थी। गुफ़ा के मुँह पर बैठा आदमी बता सकता था कि सूर्य हर मौसम में अलग-अलग जगहों पर उगता और अस्त होता है।

यही सामान्य तथ्य—दिन और रात, हर मौसम में सूर्य कहाँ उगता और अस्त होता है, धरती के साथ सूर्य के कोण का अन्तर—अंभूव के दौरान किये जाने वाले कई मापों के वैज्ञानिक आधार हैं।

प्रारम्भिक मनुष्य ने इन बातों पर कब दबाव देना शुरू किया, उसकी छोड़ी हड्डियों, चकमक पत्थर के टुकड़ों तथा गुफ़ाचित्रों से इसका पता नहीं चल पाता। लेकिन गुफ़ा सूर्य को देखने की एक अच्छी जगह थी और आदमी के औजारों में आए सभी परिवर्तनों और जलवायु की सारी बदला-बदलियों के दौरान यह पाठ वह एक लाख वर्ष से अधिक तक हर साल सीखता रहा।

सीखा आदमी ने रात्रिकालीन आकाश से भी। जब रात आती थी, तो दुनिया बदल जाती थी और आसमान जैसे जीवित हो जाता था। दिन में सुनाई देने वाली आवाजें शान्त हो जाती थीं और बस भेड़िये या उल्लू-जैसे रात के शिकारियों की गुर्राहट या बोली ही सुनाई देती थी। अनगिनत चीजें आसमान पर छा जातीं—बिखरे हुए तारे, क्षण-भर को चमककर विलुप्त हो जाने वाली उल्काएँ और सदा बदलता चाँद।

सूर्य के धीमे मौसमी परिवर्तनों की अपेक्षा चंद्रमा के परिवर्तनों का अध्ययन कहीं सरल है, क्योंकि चाँद हर रात बदलता रहता है, एकदम लुप्त हो जाने से लेकर पूरे आकार तक घटता-बढ़ता-घटता रहता है। इसलिए प्रारम्भिक शिकारी चाँद के 'परिवर्तन गिनने' के लिए रात की प्रतीक्षा किया करता था। लम्बे शिकार के समय वह समय और दूरी का अनुमान चाँद से करता—एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा तक का समय।

वह तारों को भी पढ़ सकता था। भोर के समय क्षितिज पर हमेशा ही कुछ बड़े तारे रहते हैं और सूरज उगने के साथ वे ग़ायब हो जाते हैं। सूर्य का उगना-छिपना देखते-देखते उसने इस बात पर ध्यान दिया कि कुछ विशेष तारे सूर्य के साथ कुछ विशेष मौसमों में दिखाई देते हैं, कुछ क्षितिज पर वसन्त में दृष्टिगोचर होते हैं, कुछ सरदियों में, कुछ गरमियों में। अफरीका में जब पतझड़ के मौसम में कृत्तिका नक्षत्र पूर्वी क्षितिज पर पहले-पहल नजर आता था, तो वहाँ फ़सल की कटाई का समय होता था।

आज हर आदिम जाति साँझ-सवेरे के इन निशानों को जानती है और इतिहासकारों का खयाल है कि प्रारम्भिक मनुष्य ने लिखना सीखने के कोई २०,००० वर्ष पहले अपना दृश्य 'आकाशी पंचांग' बना लिया होगा।

अंभूव के दौरान पृथ्वी, चन्द्रमा, तारों तथा सूर्य की इन सापेक्ष गतियों का उपयोग कई आधुनिक भू-भौतिकीय प्रश्नों का उत्तर देने के लिए किया जा रहा है। तारों की पृष्ठभूमि पर चन्द्रमा की गति का उपयोग पृथ्वी के आकार तथा आवृत्ति का निर्धारण करने में किया जा रहा है। मौसम, जलवायुओं तथा सूर्य के अन्य प्रभावों की किसी भी समझ के लिए पृथ्वी का घूर्णन तथा उसकी वार्षिक कक्षा का पथ सबसे महत्वपूर्ण तत्व है।

आसमानी आकृतियों की खोज तथा उनके रूपान्तर ज्योतिर्विज्ञान, भौतिकी तथा कदम-ब-कदम करके मनुष्य द्वारा सागर की

विजय, नौकायन और पृथ्वी के अन्वेषण का रास्ता खोला।

सागर-तट पर रहने वाला मनुष्य उसकी आवाज से तूफान या आँधी के आने की बात बता सकता था। भीतरी प्रदेश में रहने वाले शिकारी ने जाना कि हिरन खाने के लिए अलस सवेरे और गोधूलि के समय जंगल के बाहर आता है। तट पर रहने वाले आदमी ने सीखा कि ज्वार चाँद के साथ-साथ आते-जाते हैं और जब ज्वार जाता रहता है, तो वह रेत को खोदकर उसमें से खाने के लिए सीपी मछलियाँ बीन सकता है और चट्टानों पर से मसेल मछली पा सकता है। जब ज्वार चढ़ा होता था, तो वह भीतरी प्रदेश के शिकारी की तरह भाले से मछलियों का शिकार कर सकता था।

पृथ्वी पर, जहाँ कहीं भी आदमी रहते थे, जानने को उसके नाना रूप और लयें थीं। उत्तर में बर्फ़ और शीत के और ग्रीष्म के आगमन के रूप थे, तथापि—हिम युग तक में भी—आधी मानवजाति को बर्फ़ का तनिक भी पता न था। उष्ण दक्षिण में मनुष्य ने सूखे मौसम और वर्षा के मौसम के रूप जाने। दक्षिण में और उत्तर में, सागर-तट पर, जंगल में, मैदानों पर या रेगिस्तानों में मनुष्य ने अलग-अलग रूपों को देखा और जाना।

इन चक्रों और रूपों की जानकारी जीने के लिए जरूरी थी। आदमी का आखेट-चातुर्य यह जानने पर निर्भर करता था कि जानवर पानी पीने कब और कहाँ आता है, जंगली जानवर कब शिकार करता है और खतरनाक होता है. भालू की सरदियों की नींद कब शुरू होती है या जानवरों का झुंड प्रवसन कब करेगा ? आदमी को, उसके औजारों के बराबर ही, इस जानकारी ने सभी शिकारियों में अग्रिम बना दिया।

आदि मानव की सबसे बड़ी उपलब्धि इन रूपों को पहचानना और उनके समय पर होने को जान लेना था। प्रकृति के नाना रूपों को समझने का प्रयास करना—यही विज्ञान—और भू-भौतिकी भी है।

प्रारम्भिक मनुष्य ने इन नाना रूपों को अपने जीवन में समाविष्ट कर लिया। जन्म और मृत्यु लड़के या लड़की की वयः-प्राप्ति, वसंत के पुनरागमन तथा किसी नक्षत्र के फिर आने के उपलक्ष्य में उसके अपने संस्कार और समारोह थे। इन संस्कारों ने उसके आंतरिक तथा जातीय जीवन को बहुत कुछ उसी तरह आकृति दी, जिस तरह कि प्रकृति क रूपों ने उसके द्वारा पृथ्वी के उपयोग को आकृति प्रदान की। उनके बिना उसका जीवन जीने के लिए 'तीर या तुक्का' के अलावा और कुछ न रहता।

इन रूपों की पहचान मानविक चिन्तन में पहला महत्वपूर्ण कदम था। अंभूव पृथ्वी के अधिक जटिल रूपों के लिए आधुनिक मनुष्य की वैज्ञानिक खोज है।

प्रारम्भिक मनुष्य के द्वारा जाने गए सबसे महत्वपूर्ण रूप का सम्बन्ध सूर्य तथा पृथ्वी पर उसके प्रभाव से था। इस जानकारी के फलस्वरूप आठ-दस हजार वर्ष पूर्व कृषि का विकास हुआ।

कृषि के लिए एक नयी समझ चाहिए थी, वह यह कि बीज, सूर्य पृथ्वी तथा मौसम—ये सब परस्पर सम्बन्धित हैं। इससे किसान को मौसमों की जानकारी मिली और उसने यह सीखा कि पौधे और जानवर किस तरह वंश-वृद्धि करते हैं। समय का माप आवश्यक हो गया और पृथ्वी अचानक ही जटिलताओं से परिपूर्ण एक आश्चर्य बन गई।

प्रारम्भिक कृषक की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि उसकी निकाली मौसमों तथा आकाश के रूपों को जोड़ने और अंकित करने की पद्धति थी। यह ज्योतिर्विज्ञान और गणित, और सम्भवतः लिखने के भी प्रारम्भ की सूचक थी।

छः हजार वर्ष पूर्व क मिस्री पंचांग-निर्माता पुजारी साल की लम्बाई इतनी यथार्थता के साथ नापने लगे थे कि उसमें संभवतः एक या दो मिनट की ही गलती रहती थी।

साल का माप किसान भी कर सकता था, चाहे वह इतना शुद्ध

नहीं होता था। इसके लिए उसे जमीन में एक छड़ी गाड़कर उसकी छाया को देखने-भर की जरूरत थी। ज्यादातर गाँवों में समय मापने के लिए एक सूर्य-स्तम्भ होता था। उस पर समय देखना भी आसान था। जब दोपहर के समय छाया सबसे लम्बी होती थी, तो सरदी का मौसम होता; जब वह सबसे छोटी होती, तो मौसम गरमी का होता। जब छाया की लम्बाई बीच की होती, तो मौसम वसंत का या शरद का होता था।

समय की माप के लिए मिस्रवासी सूर्य के साथ तारों के संयोग का भी उपयोग करते थे। जुलाई के महीने में एक दिन प्रकाशवान तारा लुब्धक सूर्योदय से कुछ काल पूर्व पूरी क्षितिज पर दृष्टिगोचर होता है। करीब-करीब तभी नील नदी में बाढ़ भी आती है, इसलिए सूर्योदय के समय लुब्धक का प्रकट होना सिंचाई की तैयारी के समय का और समारोह मनाने के समय का प्रतीक बन गया। इस तरह इस तारे, सूर्य तथा बाढ़ के समय को एक साथ का ही माना जा सकता था।

अधिकतर प्रारंभिक सभ्यताओं में पुजारी और किसान लोग सूर्य तारों तथा चन्द्रमा पर नजर रखते थे। बाबुल में वे ग्रहों की ओर भी बारीकी से देखते थे। सूर्य, चंद्रमा तथा ग्रहों का तारों के एक आसमानी नक्शे की पृष्ठभूमि पर चलना ही उनके धर्म का केन्द्र-बिन्दु था। बाबुलवासी कई तारक-समूहों के क्षितिज पर प्रकट होने के पहले दिन से लगाकर पूरे साल-भर आकाश-पट पर उनकी गति को आश्चर्यजनक सुतथ्यतापूर्वक मापते थे। इन तारों को चलने में जो समय लगता था, उसकी माप वे 'वजन' से करते थे—इसके लिए वे एक सीधी-सादी घड़ी का उपयोग करते थे, जिसमें एक पात्र में टपकते पानी को तोल लिया जाता था।

मान लीजिए कि एक तारा भोर के समय उगता है और उसके प्रातःकालीन प्रकाश में विलुप्त होते-होते आप अपने काम पर चल पड़ते हैं। आपने अपनी घड़ी से तभी पानी का टपकना शुरू कर दिया।

कुछ देर बाद समय बताने के लिए आप कहते हैं, "सवेरे से अब सेर-भर पानी हो गया," या "सवेरे से तीन पाव पानी भरे बाद," तो यह बात यह कहने से किसी भी तरह कम शुद्ध न होगी कि "सुबह के १० ३० बजे," क्योंकि समय न "सेर भर" है, न "तीन पाव" और न ही "१०.३०" है। यह असल में केवल तारों को, या अधिक शुद्धता-पूर्वक कहें, तो पृथ्वी को, एक निश्चित दूरी तक चलने में और पानी की एक निश्चित मात्रा के टपकने में लगा समय-भर है।

सूर्य तथा तारे मौसम निश्चित करने के लिए उपयोगी थे। महीने निश्चित करने के लिए प्राचीनयुगीनों ने चाँद का उपयोग किया किन्तु चंद्र-पंचांग पर आधारित वर्ष और सौर-पंचांग पर आधारित वर्ष आपस में मेल नहीं खाते थे, न सूर्य की छाया पर आधारित पंचांग ही किसी तारे के उदय होने पर आधारित पंचांग से मेल खाता था, क्योंकि चन्द्रमा, सूर्य, तथा तारों के प्रतिभ्रमण की पृथ्वी से दर्शित गतियाँ भिन्न-भिन्न हैं इसलिए कई जातियों में एकाधिक प्रकार के वर्ष प्रचलित थे, और यह कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है। मध्य अमरीका के मय लोगों में एक सौर-वर्ष, एक चन्द्र-वर्ष, एक शुक्र-वर्ष तथा एक नक्षत्र-वर्ष सहित पाँच प्रकार के वर्ष प्रचलित थे और इनमें से प्रत्येक एक भिन्न प्रयोजन के लिए समय बताता था।

इन प्रारंभिक कृषि-सभ्यताओं के सभी पुजारी अभिलेख रखा करते थे, अतः उन्हें यह स्पष्ट हो गया कि विभिन्न आकाशीय पिंडों पर आधारित वर्षों की लम्बाई अलग-अलग है। जब सभी में भेद था, तो साल को कितना लंबा माना जाए ?

उन्हें चाहे पंचांग के मामले में परेशानी थी, पर एक दिन के माप में उन्हें कोई दिक्कत न थी। दिन क्या था— एक दोपहर की छाया से दूसरी दोपहर की छाया तक का अन्तर। यह पृथ्वी के घूर्णन पर आधारित था। आज भी हम इसी दिन का, चौबीस घंटों में इसे विभाजित करके, उपयोग करते हैं।

१९३९-४० में ज्योतिषियों ने एक असामान्य तथ्य की पुष्टि की—

वह यह कि पृथ्वी का भ्रमण एक समान नहीं है। इसके भ्रमण की चाल में अनियमितताएँ हैं और यह बारी-बारी से कम-ज्यादा होती रहती है। इसका निर्धारण तब हुआ, जब ज्योतिषियों ने पृथ्वी के भ्रमण की चाल की चंद्रमा तथा तारों की गतियों से सावधानीपूर्वक तुलना की। उन्होंने देखा कि पृथ्वी की चाल में जो लघुकालिक अंतर हैं, वे मौसमी हैं, दीर्घकालिक अन्तर कई-कई वर्षों की अवधि पर होते हैं और भी ज्यादा बड़े अन्तर हजारों वर्षों के अन्तर से आते हैं।

पृथ्वी की चाल में ये अन्तर इतने सूक्ष्म हैं कि हमारे दैनिक जीवन पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हम फिर भी अपने २४ घंटे के दिन को 'दोपहर की छाया से दोपहर की छाया तक' ही मापते हैं लेकिन वैज्ञानिकों के आगे इससे एक कठिन समस्या आ खड़ी हुई। उनकी घड़ियाँ पृथ्वी के भ्रमण के हिसाब से समय बताती हैं। अगर पृथ्वी का भ्रमण ही समान नहीं है, तो वे समान समय बताने वाली घड़ी, समय का समान प्रमाण कहाँ से लायें ?

यह बात बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि अधिकांश आधुनिक माप का सार ही सुतथ्यतापूर्ण समय है। इसीपर ज्योतिर्विदों, रेडियो इंजीनियरों तथा भौतिकीविदों के सूक्ष्म परिचालन आधारित हैं। भू-भौतिकीविद के लिए भी यह महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसे इन अन्तरों के कारण का निर्धारण करने के लिए पृथ्वी की गति के यथार्थ परिणमन का ज्ञान होना चाहिए।

अगर हम पृथ्वी के भ्रमण की औसत चाल ले लें, और एक 'आदर्श घड़ी' को इस तरह चलादें कि वह इस औसत, २४ घंटे के दिन के अनुरूप चले, तो हमें एक चोंकाने वाली बात का पता चलेगा। दो हजार साल पहले यह घड़ी २·६ घंटे सुस्त होती। १७५० में यह ठीक समय देती होती, १८५० में यह २ सैकंड सुस्त होती, १९०० में यह ३·९ सैकंड तेज होती और १९४० में यह २४·५ सैकंड सुस्त होती। 'आदर्श घड़ी' तो समान समय ही रखती, पर पृथ्वी के भ्रमण की चाल बदल गई होती।

इन परिणमनों के अलावा घर्णन की चाल में एक दीर्घकालिक मंदी भी आती है। यह अनुमान लगाया गया है कि पृथ्वी पर सौ वर्ष में अपनी चाल के एक सैकंड का कुछ अंश स्थायी रूप से खोती जा रही है। यह समझा जाता है कि इसका कारण समुद्री ज्वारों का घर्षण है।

इन सूक्ष्म अनियमितताओं को मापने के लिए ज्योतिर्विदों तथा भू-भौतिकीविदों को समय का, और विशेषकर सैकंड का, एक यथार्थ और शुद्ध प्रमाप चाहिए। १६३६ तक यह सैकंड पृथ्वी के घर्णन पर आधारित था।

अंभूव के दौरान दुनिया-भर में वैज्ञानिक एक एकरूप सैकंड निकालने की कोशिश कर रहे हैं। यह भू-भौतिकीविदों की पृथ्वी के भ्रमण के रहस्य ढूँढने में सहायता करेगा।

इस एकरूप सैकंड के निर्धारण के लिए एक रोचक विधि निकाली गई है। यह तारों के मध्य चंद्रमा की गति के प्रेक्षणों पर आधारित है। तारों की तुलना में चंद्रमा की गति एक 'घड़ी' का काम करती है। तेज़ी से चलता चाँद इस घड़ी की 'घंटे की सुई' है और तारे उस पर अंकित 'घंटों के निशान' हैं। ज्योतिर्विद चंद्रमा की गति की चाल जानता है और यह भी जानता है कि तारे कहाँ होने चाहिएँ, इसलिए वह समय बता सकता है।

तारों की पृष्ठभूमि पर चन्द्रमा का चित्र लेकर उस पर चन्द्रमा से तारों की दूरी माप ली जाती है। यह माप इतनी शुद्ध होती हैं कि चंद्रमा के कोरों पर स्थित पहाड़ों तक को ध्यान में रखा जाता है। योतिर्विद जानता है कि अपनी घड़ी के अनुसार, जो पृथ्वी के घर्णन पर आधारित है, उसने किस समय चित्र लिया था। इसके बाद वह ग्रहों की दैनिक गति की तालिका देखकर यह जान सकता है कि चन्द्रमा जब चित्र में दर्शित तारों के बीच था, तब समय क्या था।

नियमित घड़ी पर के समय तथा चन्द्रमा द्वारा दर्शाए समय में अन्तर नगण्य ही होता है, लेकिन चन्द्र-समय एक रूप होता है, इसलिए

ज्योतिर्विदों ने नया सैकंड इसी पर आधारित करने का फैसला किया है। चूँकि चंद्र-समय को एक सावधानीपूर्वक आकलित पंचांग—एफीमेरिस से जाँचा जाता है, इसलिए इसे पंचांग-काल (एफीमेरिस टाइम) और इस पर आधारित सैकंड को **पंचांग सैकंड** (एफीमेरिस सैकंड) कहते हैं।

नये चन्द्र-कैमरा का विकास डॉक्टर विलियम मार्कोविट्ज ने किया था। डॉक्टर मार्कोविटज अमरीकी नौसैनिक वेधशाला की समय-सेवा के संचालक तथा अमरीकी अंभूव के अक्षांश व देशांश कार्यक्रम के अध्यक्ष हैं। अमरीकी नौसेना ने ऐसे २० द्विगतीय कैमरा बनवाए हैं और अंभूव के दौरान इस्तेमाल के लिए उन्हें उत्तर तथा दक्षिण अमरीका, यूरोप,हवाई, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, जापान, भारत तथा अफरीका की खगोलीय वेधशालाओं को भेज दिया है।

अंभूव के चन्द्र-कार्यक्रम के फलस्वरूप हमें १९५८ में समय का एक असाधारण रूप से शुद्ध तथा यथार्थ माप मिल जाएगा। पृथ्वी के घर्णन के अलावा वैज्ञानिक इस सैकंड का उपयोग अन्य वस्तुओं के समय जाँचने में भी कर सकते हैं।

एफीमेरिस सैकंड की तुलना हाल ही में खोजे **परमाणु-सैकंड** से की जाएगी। परमाणु-सैकंड परमाणु में इलेक्ट्रान के कंपन की नियमितता पर आधारित है। क्या आकाशीय नियमितता और पारमाणविक नियमितता एक-सी और अन्तर परिवर्तनीय हैं? क्या विराट ज्योतिर्विश्व भी उसी मूलभूत समय पर चलता है, जिस पर सूक्ष्म परमाणु चलता है? प्रकृति के महान रहस्यों में से एक का पता इन प्रश्नों के उत्तर से मिलेगा, क्योंकि हर एक नियमितता आकाशीय पिण्डों की अपनी-अपनी कक्षा में अपनी-अपनी गति पर आधारित है और इसलिए वह गुरुत्वाकर्षी है, जबकि दूसरी नियमितता विद्युत-चुंबकीय है।

एफीमेरिस सैकंड की भाँति नयी परमाणु घड़ी का उपयोग भी पृथ्वी के घर्णन की अनियमितताओं की जाँच के लिए और ज्योतिर्वैज्ञानिक घटनाओं के समय रखने के लिए किया जाएगा।

अंभूव के वैज्ञानिक मनुष्य द्वारा उठाये सबसे पहले प्रश्नों में से एक का उत्तर देने की दिशा में एक बड़ा कदम उठाएँगे। यह प्रश्न है—समय तथा प्रकृति के रूपों को यथार्थतापूर्वक कैसे मापा जाए?

चन्द्रमा की स्थिति के यथार्थ माप से एक और प्रयोजन सिद्ध होगा। यह हमें पृथ्वी के आकार तथा आकृति के बारे में बतलाएगा। यह प्रश्न भी हजारों साल पुराना है।

चार हजार साल से सूर्य मिस्र की सूखी और मेघहीन आकाश वाली भूमि पर उदय और अस्त होता आता था और हर मौसम में और हर दिन सूर्य आकाश में जिस जगह होता था, वह छाल-पत्र तथा पत्थर पर लिपिबद्ध कर ली जाती थी।

मिस्री साम्राज्य के पतन के बाद, कोई २५० ई० पू०, नील नदी के मुहाने पर बसा सिकंदरिया का यूनानी नगर भूमध्यसागरीय संसार की सांस्कृतिक राजधानी था और तत्कालीन पुस्तकों तथा अभिलेखों का भंडार था। वहाँ के मुख्य पुस्तकालयाध्यक्ष एरातोस्थेनीज को मालूम था कि सिकंदरिया में सूर्य जब गरमियों में दोपहर के समय अधिकतम ऊँचाई पर होता है (हमारे कलेंडर के हिसाब से २१ जून को), तब वह नगर के स्तंभ से ७/½° का कोण बनाता है। सिकंदरिया के धुर दक्षिण में, बहुत दूर, नील नदी के पहले प्रपात के निकट स्यीने नगर में उस दिन सूर्य दोपहर के समय ठीक सिर पर होता था और एक गहरे कुएँ पर सीधा चमकता था। इस प्रकार २१जून को स्यीने में सूर्य का कोण शून्य होता था। एरातोस्थेनीज ने सोचा कि सिकंदरिया स्यीने से '७½° दूर है।'

इसके बाद एरातोस्थेनीज ने स्यीने से सिकन्दरिया तक की दूरी मापी। कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह लगभग ५०० मील (आधुनिक इकाई से) निकली। यूनानी लोग तब तक इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि पृथ्वी एकदम गोल है। इससे एरातोस्थेनीज ने यह हिसाब लगाया कि सिकन्दरिया तथा स्यीने के बीच ७½° का अन्तर पृथ्वी की गोलाई के चाप के कारण है और चूँकि यह ५०० मील लम्बा था,

उसने सामान्य अंकगणित से हिसाब लगाकर देख लिया कि पृथ्वी की परिधि २४,००० मील होनी चाहिए।

उसकी धारणा ठीक थी। उसका हिसाब शानदार था। पृथ्वी का उसका माप लगभग सही है—हमारे हिसाब से यह लगभग २४,८४७ मील है। फिर भी कई बातों में वह गलत था। स्यीने का ठीक फ़ासला ५०० मील नहीं था। २१ जून को स्यीने में सूर्य का कोण शून्य नहीं था। सिकन्दरिया में ठीक कोण ७½° नहीं था और पृथ्वी भी, जैसा कि हम अब जानते हैं, एकदम गोल नहीं है। फिर भी सभी गलतियों ने मिलकर औसत ठीक कर दिया।

एरातोस्थेनीज़ के २००० साल से ज्यादा बाद अंभूव के वैज्ञानिक पृथ्वी का माप ले रहे हैं, क्योंकि हम अभी भी नहीं जानते कि उसका ठीक आकार तथा आकृति क्या है, महाद्वीप कितनी-कितनी दूरी पर हैं और कुछ द्वीप-विशेष कहाँ हैं? द्वीपों तथा महाद्वीपों की पारस्परिक स्थितियों में हमारे नकशों में २०० फुट से लेकर एक मील तक की संभाव्य त्रुटि है।

इन मापों के लिए ज्योतिर्विद एरातोस्थेनीज़ के तरीके-जैसा ही एक तरीका अपनाएँगे। यह सूर्य पर आधारित न होकर चन्द्रमा के कोण या स्थिति के माप पर आधारित होगा। इस काम के लिए नये चन्द्र-कैमरा का उपयोग किया जाएगा। एरातोस्थेनीज़ ने एक ही बार मोटे-मोटे माप लिए थे। पृथ्वी के आकार तथा आकृति के नये निर्धारण के लिए डॉक्टर मार्कोविट्ज़ के शब्दों में 'हजार प्रेक्षण आवश्यक हैं। इसके लिए विश्व-व्यापी कार्यक्रम का होना जरूरी है।'

अंभूव के दौरान पृथ्वी के आकार तथा आकृति को निर्धारित करने का एक और प्रयास किया जा रहा है। यह पृथ्वी के उपग्रहों द्वारा किया जाएगा। इसकी विधि दूसरी है और यह इस पर निर्भर करती है कि पृथ्वी का गुरुत्व या आकार और घनत्व उपग्रह की कक्षा को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।

इन तथा अन्य मापों द्वारा अक्षांशों तथा देशांशों को कुछ फुट के

भीतर निर्धारित कर लिया जाएगा। संसार के भू-भूमापनविद, भूगोल-शास्त्री तथा मानचित्र-निर्माता सदियों से हजारों मापों को एकबद्ध करने की कोशिश करते रहे हैं। लेकिन यह चित्रों के कटे टुकड़ों को जोड़कर चित्र पूरा करने की ऐसी पहेली की तरह था, जिसमें टुकड़े ठीक बैठते ही नहीं थे। अब वे इन टुकड़ों को एकसाथ जमा और पृथ्वी का एक सही नकशा बना सकेंगे। अधिक यथार्थ मानचित्र से वायुयान चालक को सहायता मिलेगी। क्योंकि जब उसे दो रेडियो प्रसार-केंद्रों के बीच अपनी स्थिति का पता दिया जाएगा, तो उनकी स्थितियों की एकदम सही जानकारी से उसे यह निर्धारित करने में सहायता मिलेगी कि उसका जहाज कहाँ है।

नये मापों से भूभौतिकीविदों को हमारे समय के सबसे दिलचस्प और विवादास्पद सिद्धान्तों में से एक की जाँच का मौका मिलेगा और वह यह है कि क्या महाद्वीप सरक रहे हैं! एक बार यह जानने के बाद कि महाद्वीप तथा द्वीप कितनी-कितनी दूरी पर हैं, वे भविष्य में फिर कभी दूरी मापकर इसका पता चला सकेंगे।

भीतर निर्धारित कर लिया जाएगा। संसार के भू-भूमापनविद, भूगोल-शास्त्री तथा मानचित्र-निर्माता सदियों से हजारों मापों को एकबद्ध करने की कोशिश करते रहे हैं। लेकिन यह चित्रों के कटे टुकड़ों को जोड़कर चित्र पूरा करने की ऐसी पहेली की तरह था, जिसमें टुकड़े ठीक बैठते ही नहीं थे। अब वे इन टुकड़ों को एकसाथ जमा और पृथ्वी का एक सही नकशा बना सकेंगे। अधिक यथार्थ मानचित्र से वायुयान चालक को सहायता मिलेगी। क्योंकि जब उसे दो रेडियो प्रसार-केंद्रों के बीच अपनी स्थिति का पता दिया जाएगा, तो उनकी स्थितियों की एकदम सही जानकारी से उसे यह निर्धारित करने में सहायता मिलेगी कि उसका जहाज कहाँ है।

नये मापों से भूभौतिकीविदों को हमारे समय के सबसे दिलचस्प और विवादास्पद सिद्धान्तों में से एक की जाँच का मौका मिलेगा और वह यह है कि क्या महाद्वीप सरक रहे हैं! एक बार यह जानने के बाद कि महाद्वीप तथा द्वीप कितनी-कितनी दूरी पर हैं, वे भविष्य में फिर कभी दूरी मापकर इसका पता चला सकेंगे।

६०० ई० पू० में मिस्री सम्राट् नेको ने एक फ़ोनीशियाई बेड़ा किराये पर लिया और उसे अफरीका का चक्कर लगाने की आज्ञा दी। यूनानी इतिहासकार हेरोदोतस ने इस बारे में लिखा था, "इस तरह फोनीशियाई लाल सागर से चलकर दक्षिण सागर में घुस पड़े। शरद के आगमन के साथ वे अफरीका में जहाँ कहीं भी होते, वहीं ठहर जाते, जमीन जोतकर फसल बोते, उसके पकने का इंतजार करते और फिर उसे काटकर आगे चल पड़ते। इस तरह से दो साल बीत गए तीसरे साल में जाकर वे हेराक्लीज के स्तंभों (जिब्राल्टर जलडमरू मध्य) को पार कर मिश्र वापस पहुँचे। वहाँ लौटकर उन्होंने बताया कि अफरीका का चक्कर लगाते समय सूर्य उनके दाएं हाथ की तरफ था।"

इस तथ्य ने हेरोदोतस को चौंका दिया और उसने कहा, "कुछ लोग इस बात पर विश्वास कर सकते हैं, पर मैं नहीं करता"। लेकिन उसने यह बात सिद्ध कर दी कि फोनीशियाइयों ने उत्तमाशा अन्तरीप को पार किया होगा, क्योंकि उनके अफरीका की परिक्रमा करते-करते सूर्य की स्थिति बदल ही गई होगी।

फोनीशियाई उत्तर में आइसलैंड तक गये और उन्होंने उपआर्कटिक देशीय हिम तथा मध्य रात्रि के सूर्य को देखा। यह अनुभव करने वाले पहले लोग थे कि संसार के सुदूर प्रदेशों की यात्रा करने पर आकाश या पृथ्वी की घटनाएँ बदल जाती हैं। अंभूव के दूरगामी प्रयासों की यह अनुभूति आधारशिला है।

फोनीशियाइयों ने, और उनके बाद यूनानियों ने, भूमध्यसागरीय देश में पहले खेती-बाड़ी शुरू की और बाद में नगर बसाए। उत्तर अटलांटिक के शानदार नाविक वाईकिंग किसान भी थे। जब 'लाल' एरिक ग्रीनलैंड की तरफ चला, तो वह अपने साथ बीज और खेती के औजार ले गया और वहाँ पहुँचकर उसने खेत कायम किये। कृषि आवश्यक थी, क्योंकि आटे, शराब और गोश्त के बिना कोई आदमी समुद्र पर ज्यादा दिन बिताने की हिम्मत न करता था। यात्रा के अंत पर

खेत और पशुओं का होना आवश्यक ही था, ताकि वापसी यात्री के लिए जहाज की रसद पूरी की जा सके। शिकार से समुद्र पर एकाध सप्ताह का खाना प्राप्त किया जा सकता था, पर ज्यादा का नहीं।

लेकिन यह शिकार के साथ उत्पन्न होने और कृषि के साथ विकसित होने वाली ज्योतिर्विद्या ही थी कि जो नौकायन की कला का आधार बनी और इस प्रकार उसने नाविकों को दूर-दूर जाने की छूट दी।

सबसे अधिक उपक्रमी नाविक वे थे जिन्होंने पृथ्वी के सबसे बड़े महासागर—प्रशान्त (पैसिफ़िक) को पार किया। उनके पास न जहाज घुमाने का पहिया था, न वे लिखना-पढ़ना जानते थे, न उनके पास धातुएँ ही थीं; फिर भी उन्होंने प्रशान्त को तब जीता कि जब अधिकतर यूरोपीय नाविक जमीन को निगाह के बाहर जाने देने की हिम्मत भी न करते थे।

पोलीनीशियाई तथा माइक्रोनीशियाई लोग नीची डोंगियों का उपयोग करते थे। इनमें वे अपने लोग, अपने कृषि-यंत्र, और नारियल केला, तारो (एक प्रकार का कंद) तथा अन्य खाद्य—सूअर, मुर्गे आदि भी भर लेते थे। डोंगियाँ हलकी और कमजोर थीं और यात्रियों को उनमें से लगातार पानी उलीचते रहना पड़ता था। फिर भी इन डोंगियों पर सवार होकर ये आदिम मल्लाह मध्य पैसिफ़िक को, कभी-कभी अज्ञानपूर्ण सागर प्रदेश पर भी हजारों मील तक, बार-बार पार करके ऐसे-ऐसे द्वीपों पर पहुँचे कि जिन्हे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था।

ये लोग किसान थे और सिंचाई के तरीके जानते थे। वे अपने साथ ज्वालामुखीय टापुओं की पत्तियाँ और मिट्टी तक ले जाते ताकि बंजर मूँगे के द्वीपों पर कृषि के लिए मिट्टी बना सकें। फलस्वरूप यूरोपीय लोग जब पहले-पहल दक्षिण प्रशान्त सागर में पहुँचे, उन्हें ये द्वीप बागों-सरीके लगे और उन्होंने इन्हें 'स्वर्ग के द्वीप' नाम दिया।

पोलीनीशियाइयों और माइक्रोनीशियाइयों ने प्रशान्त-सागर को क्योंकर जीता ? समुद्र, वायु, आकाश तथा मौसम के रूपों को जानकर माइक्रोनीशियाई यदि किसी द्वीप से ३० मील की दूरी पर होते, तो वे उसे ढूँढ लेते थे। पोलीनीशियाई यदि किसी टापू से १००० मील की दूरी पर भी होते, तो वे उसकी स्थिति को मोटे तौर पर जान लेते थे।

माइक्रोनीशियाई पवनों, तरंगों तथा तरंग-स्फीतियों से मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। यात्रा आरम्भ करने से पहले वे प्रचलित पवन की दिशा निर्धारित करते थे। ये हवाएँ सप्ताहों से लेकर साल-साल-भर तक उसी दिशा में बहती रह सकती थीं, क्योंकि प्रशान्त के इस क्षेत्र में साल के अधिकांश में नियत व्यापारिक पवनें चलती हैं। पवन की दिशा जान लेने पर वे तरंगों और तरंग-स्फीतियों की दिशा भी जान जाते थे, क्योंकि पवनें ही उन तरंगों और तरंग-स्फीतियों को जन्म देती हैं, जो सागरों पर सैकड़ों-हजारों मील तक दौड़ती चली जाती हैं। ये समुद्र को नाविकीय-तालिका की तरह बाँट देती हैं। इस लहरिये समुद्र के 'तलीय मानचित्र' से माइक्रोनीशियाई अपने जाने की आम दिशा बता सकते थे। द्वीपों का पता चलाने के लिए भी वे तरंगों का ही प्रयोग करते थे। टापू पर आने वाली तरंगें उससे टकराकर वापस लौटती हैं और ऐसा करते समय वे तट की ओर जाती तरंगों को काटती जाती हैं। लौटती तरंगों को देखकर नौका-यात्री यह जान सकता था कि भूमि निकट है।

द्वीपों का पता लगाने के लिए माइक्रोनीशियाई 'तीलियों की बनी तालिकाओं' का उपयोग करते थे। ये ताड़ या नारियल की खपच्चियों से बने नमूने-से होते थे। इनमें से एक नकशे-जैसा होता था, क्योंकि वह उन 'द्वीपों' का, जहाँ नाविक पहले हो आया था, 'चित्र' होता था। दूसरी तालिका उसे यह बताती थी कि जिस द्वीप को कभी देखा नहीं, उसे कैसे पाया जाए। यह तालिका किसी भी टापू के निकट प्रचलित पवन, धाराओं तथा टापू की तरफ जाने की दिशा के अनुरूप

किसी टापू के पास पैदा होने वाले सभी लहरों-नमूनों और भँवरों के मेल दर्शाती थी। इन तालिकाओं की सहायता से माइक्रोनीशियाई मल्लाह किसी द्वीप को देखने के घंटों पहले उसके आस-पास की लहरों को 'पढ़' सकता था।

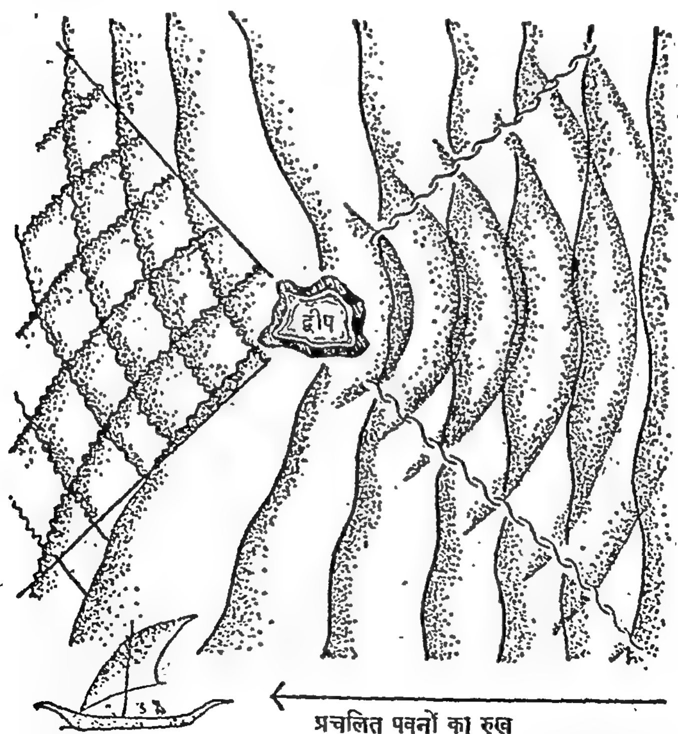
यह मुश्किल भी नहीं था। जब कोई तरंग किसी द्वीप को छोड़कर जाती है, तो वह उससे मीलों दूर समुद्र पर होने पर भी, उसकी तरफ झुक जाती है। तरंगें तीन तरह की होती हैं—आगंतुक तरंगें, प्रतिच्छालित तरंगें और झुकी हुई तरगें। ये तरंगें समुद्र में मिलकर बड़ी-बड़ी भँवरें बनाती हैं, जिनका केन्द्र-बिन्दु सदा टापू ही होता है। यदि माइक्रोनीशियाई मल्लाह किसी टापू को छोड़ आता, तो इन भँवर-पांतों में से किसी के पास पहुँचने पर उसे मुड़ने-भर की जरूरत थी और उसके सहारे वह भूमि पर पहुँच सकता था। वह ऐसा टापू से २०-३० मील की दूरी पर भी, जब वह क्षितिज के नीचे ही होता था, कर सकता था।

पोलीनीशियाई लोग, जो माइक्रोनीशियाइयों से कहीं ज्यादा दूर तक जाते थे, नक्षत्रों का भी उपयोग करते थे। वे जानते थे कि कुछ निश्चित समयों पर कुछ अच्छी तरह से जाने-पहचाने तारे उन द्वीपों के ऊपर होते थे, जो दो हजार मील तक की दूरी पर स्थित हो सकते थे, उस दिन उसी तारे की दिशा में चलकर वे उस टापू की दिशा में जा सकते थे।

वे पक्षियों की तरफ़ भी देखते थे, एलबाट्रॉस और पेट्रेल दो ऐसे पक्षी थे, जो अपना अधिकांश जीवन खुले समुद्रों पर बिताते थे। अन्य सामुद्रिक पक्षियों का अपना समय होता था, जिसमें वे अपनी पसंद के पानी तथा धाराओं पर उड़ते थे और फिर अपने घोंसलों को लौट आते थे। किसी पक्षी को देखकर पोलीनीशियाई मल्लाह बता सकता था कि वह जमीन की तरफ जा रहा है या जमीन से समुद्र की तरफ या खुराक की तलाश में उड़ रहा है।

वह यह जानता था कि क्षितिज के पार भूमि है, क्योंकि सात

दर-साल, प्रवसन-काल में स्थल-पक्षी टापुओं से उड़कर समुद्र का रुख लिया करते थे। जब पक्षी उड़ना शुरू करते, तो पोलीनीशियाई अपनी डोंगियों को खेकर उनके पीछे चल पड़ते। प्रवासक पक्षी एक टापू से दो-दो तीन-तीन सप्ताह के अरसे तक भटकते रहते थे। दिन में ये पक्षी दिखाई देते रहते थे और रात में उनकी बोली सुनी जा सकती थी। पोलीनीशियाई लोग सुनहरे प्लोवर पक्षी के पीछे-पीछे हवाई द्वीप से दो हजार मील दूर टाहिटी तक और लम्बी दुम वाले कुक्कू पक्षी के पीछे-पीछे टाहिटी से न्यूजीलैंड तक चले जाते थे।



आकृति २—एक प्रवाल द्वीप के आस-पास तरंग-स्फीति के रूप

वे लोग आकस्मिकता के समय के लिए, साथ में एक पक्षी को

पिंजरे में भी रखते थे। जब हवा बन्द हो जाती थी, आकाश स्याह हो जाता था और सागर पर नियमित रूप से उड़ने वाले पक्षी चले जाते थे, तब वे उसे छोड़ देते थे। पक्षी उड़कर सबसे पास की जमीन का रुख ले लिया करता था। यह तरकीब तो यूरोपीय मल्लाहों तक को मालूम थी।

भूमि का एक और निशान—बादल थे। हर प्रवाल द्वीप पर आमतौर पर एक छोटा-सा सफेद बादल हुआ करता था। टापू की जलती रेत से विषुववृत्तीय सूर्य की किरणें प्रत्यावर्तित होती थीं। उनकी गरमी से टापू पर गरम हवा ऊपर उठने लगती थी। यह लगातार उठने वाली नम हवा ऊँचाई पर जाकर जमकर बादल बन जाती थी और दिन-भर वहीं टिकी रहती थी।

ज्यादा बड़े, पहाड़ी द्वीपों पर आम तौर पर बड़े-बड़े काले बादल छाये रहते थे, क्योंकि सागर की नम हवाएँ ऊँचे शिखरों पर पहुँचकर अचानक बादलों में बदल जाती थीं। शेष सारा आकाश साफ भी रह सकता था। इसलिए आकाश में खड़े स्थिर बादल को देखकर पोली-नीशियाई यह कह सकते थे कि क्षितिज के पार भूमि होनी चाहिए।

पवनें, तरंगें, बादल और पक्षियों का कार्य-व्यापार—ये सब किसी न-किसी तरह 'सूर्य प्रभावित' ही हैं, अर्थात ये सब सूर्य की ऊष्मा या पृथ्वी की सापेक्षता में सूर्य की गति पर आधारित हैं।

सागर-विज्ञान और मौसम-विज्ञान भी काफी हद तक 'सूर्य-प्रभावित' रूपों पर आधारित हैं। इन रूपों का आधुनिक अध्ययन वैज्ञानिक है और यह सावधानीपूर्वक माप द्वारा किया जाता है। अंभू... के सागर-वैज्ञानिक जिस मुख्य 'सूर्य-प्रभावित' रूप की खोज कर र... हैं, वह समुद्रों का चक्रण है। लेकिन समुद्रों के सर्वाधिक नाटकी... 'सूर्य-प्रभावित' रूप तरंगें हैं और उनके अध्ययन के लिए अंभूव व-... विशेष कार्य-क्रम है।

तरंगों के विज्ञान को कार्यान्वित करने के सबसे पहले-पहले प्रयास द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान किये गए थे। नारमंडी तट पर अपने हमले की तैयारी के समय मित्रराष्ट्रों ने वहाँ की पवनों, मौसम तथा तरंगों का अध्ययन किया। गश्ती हवाई जहाजों से लहरों के रूपों के चित्र लिये गए, ताकि यह जाना जा सके कि तटवर्ती पानी कितना गहरा है और उतरने की परिस्थितियाँ क्या होंगी। मित्रराष्ट्र इस काम को ठीक से न कर सके। तट इतनी जटिलताओं से परिपूर्ण था कि तरंगों के अध्ययन के पहले ही वैज्ञानिक प्रयास में सफलता न पाई जा सकी।

तब से संसार के सागर-वैज्ञानिक तथा नौ-सेनाएँ छोटी-छोटी लहरों से लगाकर ४०-४०, ५०-५० फुट की तूफ़ानी लहरों तक का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर रहे हैं।

युद्ध के बाद से तरंगों का वैज्ञानिक अध्ययन तेजी के साथ बढ़ा है। अमरीकी नौ-सेना के जलमापन कार्यालय के पास आज 'सागरीय तरंगों का प्रेक्षण तथा भविष्यवाणी करने की व्यावहारिक पद्धतियाँ' (प्रेक्टीकल मैथड्स फ़ार ऑब्ज़र्विंग एन्ड फ़ोरकास्टिंग ओशन वेव्ज़) नाम की एक मोटी किताब है। यह पूरी-की-पूरी किताब सतह की तरंगों के बारे में ही है, क्योंकि ऐसी अजीब तरंगों का भी पता चला है, जो पानी की सतह के बहुत नीचे होती हैं और जिन्हें अभी तक पूरी तरह समझा नहीं जा सका है।

हम इस बारे में कुछ जानते हैं कि सतही तरंगें किस प्रकार पोषण प्राप्त करती हैं। वे अपनी ऊर्जा-घर्षण द्वारा पवन से जज़्ब करती हैं और पवन की दिशा में रहती-रहती बड़ी होती जाती हैं। सबसे बड़ी तरंगों को खुले पानी पर १००० मील या उससे भी अधिक के 'उठान' या हवा की दौड़ की ज़रूरत पड़ती है।

कैलीफ़ोर्निया के तट के पास एक आधुनिक तरंग-अभिलेखक ने ऐसी तरंगों को पकड़ा है, जो ६००० मील दूर दक्षिण पैसिफ़िक में पवनों तथा तूफानों से चली थीं। इंगलैंड में सागर-तल पर एक तरंग

अभिलेखक ने आधी दुनिया दूर, दक्षिण अमरीका में हॉर्न अंतरीप के आगे एक तूफ़ान से पैदा हुई तरंगों को दर्ज किया है। इन तरंगों का उपयोग केवल सागर के अध्ययन के लिए ही नहीं, वरन खतरनाक तरंगों या तूफ़ानों के आने की चेतावनी देने के लिए भी किया जाता है।

एक तरंग जो न पवन-जनित है, न पवन-पोषित, अंभूव के दौरान विशेष ध्यान आकृष्ट कर रही है। यह बड़ी भारी ऊर्जा वाली लम्बी तरंग है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण भूकम्पीय तरंग है।

१९४६ में जब तट से टकराने वाली तरंगें अचानक शांत हो गईं और सागर का पानी किनारे से हट गया, तो प्रशान्त सागर के हवाई तथा अन्य टापुओं के निवासी भयातुर हो गए। वे नहीं जानते थे कि वहाँ से २०० मील दूर, एलास्का के निकट एल्यूशियन द्वीपों के सागर-तल में एक भूचाल आया था और उसके आघात ने पानी को पीछे खींच लिया था। जब समुद्र पीछे हटा, तो भूकंप से पैदा हुई लहरें ४९० मील प्रति घंटे की चाल से हवाई की तरफ चल पड़ी थीं। वे दो या तीन फुट से ज्यादा ऊँची नहीं थीं और उनका आपसी फ़ासला कोई सौ-सौ मील का था। खुले समुद्र पर जाता जहाज उनका अनुभव भी मुश्किल से करता। भूकंप के ४ घंटे, ३४ मिनट के बाद तरंगों ने टक्कर मारी। हवाई पहुँचने पर 'तली का स्पर्श करके' वे धीमी हो गईं। उन्होंने अपनी अपार ऊर्जा ५०-५० फुट ऊँची सफेद सिर वाली तरंगों में संचित कर दी। हर तरंग के पीछे भारी जोर के साथ लौटता सागर भूमि पर चढ़ता गया। हर बार जब पानी उतरता, वह अपने साथ दानवी हाथों की तरह जमीन पर से मकानों और लोगों को समेटता जाता—२०० लोग मारे गए, १५ से २० मिनट के अंतर पर तरंगें दक्षिण गोलार्द्ध में आस्ट्रेलिया तथा चिली की तरफ़ बढ़ गईं और रास्ते में अपने-आप को खतम करती चली गईं।

प्रशान्त सागर के द्वीप इन तूफानी समुद्रों से बारम्बार डूबते और झकझोरे जाते हैं। १९५७ में, जिस साल अंभूव का आरम्भ हुआ

साइबेरिया

अलास्का

चार पर्वतों का द्वीप

एल्यूशियन द्वीप-समूह

बोगोस्लोफ़

भूकम्प प्रातः ४'२२ बजे

सानदिएगो प्रातः ११'००

हवाई द्वीप प्रातः ९'०० बजे

आकृति ३—मार्च १९५७ की त्सुनामी

एक विशाल त्सुनामी—या जैसा कि उसे गलती से कहा जाता है, ज्वार-जनित तरंग, क्योंकि ज्वार से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, ने फिर हवाई तथा प्रशान्त के टापुओं पर चोट की। यह भी एल्यूशियन टापुओं के पास सागर-तल पर बड़े भूकंपों से पैदा हुई थी। जब ये तरंगें हवाई से टकराईं, तो ये केवल ४ से ६ फुट तक ऊँची थीं। फिर भी वे अनेक तटवर्ती गाँवों को बहाकर समुद्र में ले गईं, सागर की सतह पर आई एक पनडुब्बी की डेक पर खड़े दो मल्लाहों को धकेलकर गिरा गईं और पानी के भीतर की एक पनडुब्बी को सागर-तट से जा टकरा दिया। इस बार ज्यादा नुकसान नहीं हुआ, क्योंकि प्रशान्त में अमरीकी तटीय तथा भू-मापन सर्वेक्षण ने १९४६ की त्सुनामी के बाद चेतावनी देने की व्यवस्था स्थापित कर दी थी। होनोलूलू बन्दरगाह में लंगर डाल-कर खड़े जहाज भूकंप तथा आती लहरों की चेतावनी पाकर लंगर उठाकर बाहर खुले समुद्र में निकल आए, ताकि तरंग-स्फीतियों तथा तरंग-प्रतिसरणों पर तैरकर उनको यूँ ही निकल जाने दें।

१८८३ में इंडोनेशिया में क्रोकाटोआ का ज्वालामुखीय द्वीप एक विस्फोट के फलस्वरूप उड़ गया। यह विस्फोट अभी तक के ज्ञात सबसे बड़े—हाइड्रोजन बम के विस्फोट से भी अधिक जोरदार—विस्फोटों में था। विस्फोट के फलस्वरूप १३५ फुट ऊँची-ऊँची तरंगें जावा तथा सुमात्रा के तटों से जाकर टकराईं। अपने साथ जहाजों को और बड़ी-बड़ी चट्टानों को लेकर इन्होंने मीलों तक इन टापुओं की भूमि को रौंद डाला। इसके बाद वे हर चल वस्तु को साथ समेटकर वापस समुद्र में चली गईं। तीस हजार इंडोनेशियाइयों की इसमें जान गईं। इसके बाद क्राकाटोआ की ये विशाल तरंगें प्रशान्त महासागर पर फैलकर नीची-नीची तरंगों में परिणत होकर इतनी तेज चाल से बढ़ चलीं कि जब तक वे हवाई, जापान, भारत, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिण पैसिफ़िक के द्वीपों के तटों पर गरज के साथ टूटी नहीं, उन्हें देखा भी मुश्किल से ही जा सकता था।

क्रोकाटोआई विस्फोट से तीन प्रकार की तरंगें पैदा हुईं—समुद्र

का स्थान का और वायु दाब का। विस्फोट की आवाज लगभग ३००० मील की दूरी तक सुनाई दी थी। इस विस्फोट से जनित हवा में दाब-तरंगों ने तीन बार तेजी के साथ दुनिया के चक्कर लगाए और दुनिया के दूसरे भाग में इंगलैंड-सी सुदूर जगहों के तटों पर भी सागर की विशाल तरंग पैदा कर दीं।

बड़ी त्सुनामी कभी-कभास ही आती है। पैसिफ़िक में हर दो साल के बाद कहीं एकाध दर्ज होती है। तथापि छोटी त्सुनामी प्रायः और कभी-कभी तो नित्य, आती रहती हैं। ऐसे भी दिन होते हैं कि जब प्रशान्त की तली पर दिन में २०० से ३०० तक भूकंप दर्ज किये गए हैं, क्योंकि प्रशान्त सागर के तल पर लगभग निरंतर सभी आकार के भूकंप और भू-भ्रंश होते रहते हैं। इनसे पैदा हुई लहरें जब तट से टकराती हैं, तो वे कदाचित् ही ३-४ फुट से ज्यादा ऊँची होती हैं। अटलांटिक में भी इस तरह की त्सुनामी पैदा होती हैं। प्रायः ही आती रहने वाली छोटी-छोटी त्सुनामियों के पैदा होने के सभी कारण ज्ञात नहीं हैं। यह विश्वास किया जाता है। कि भूकंपों से सागरतलीय पर्वतों का भू-भ्रंश होता है और उनके नीचे खिसकने से इनमें से कुछ लहरें पैदा होती हैं। इस समस्या की अभी भी खोजबीन जारी है।

तरंग एक निश्चित पथ पर ऊर्जा की गति तथा स्थानांतरण है, फिर चाहे यह पानी में हो या पृथ्वी पर या वायु में। अंभूव के वैज्ञानिक तीनों ही प्रकार की तरंगों का अध्ययन कर रहे हैं। लेकिन इनमें भी तूफ़ानों और बवंडरों, भूकंपों, सागर-भ्रंश तथा ज्वाला-मुखियों की विराट ऊर्जाओं तथा वायु में दाब-परिवर्तनों से उत्पन्न तरंगें अंभूव के सर्वप्रमुख कार्यक्रमों में से एक की विषय हैं। सभी आकारों की त्सुनामियों का अध्ययन किया जा रहा है। सागर-वैज्ञानिक यह जानना चाहते हैं कि ये तरंगें ठीक कितनी-कितनी बार पैदा होती हैं और इनके पैदा होने का कारण क्या है?

अंभूव के दौरान अटलांटिक तथा प्रशांत में कई तटों तथा टापुओं पर लगे तरंग-अभिलेखक बड़ी ऊर्जाधारी 'दीर्घ तरंगों' को

मापने में लगे हुए हैं। अमरीका ने पैसिफ़िक के हों ७० टपुओं पर, जिनमें टाहिटी तथा फ़िजी के पोलीनीशियाई तथा माइक्रोनीशियाई द्वीप भी सम्मिलित हैं, तरंग-अभिलेखक लगा रखे हैं। सोवियत-संघ ने उत्तर प्रशान्त में तथा आस्ट्रेलिया ने दक्षिण प्रशान्त में तरंग अभिलेखक लगाए हैं। ये तरंगें हमें वायु तथा समुद्र के सम्बन्ध और सागरतल की बड़ी उथल-पुथल के बारे में काफी कुछ बताएँगी।

ये हमें समुद्र की अनेक प्रकट क्रमहीन लगने वाली तथा प्रायः अबोध्य गतियों के रूप प्रकट करेंगी। लेकिन अंभूव सागर के अन्य सभी रूपों का भी अध्ययन कर रहा है।

मनुष्य की सागर-विजय की दिशा में हर प्रगति को उसके रूपों की खोज से जोड़ा गया है। इतिहास बताता है कि सफल अनुसंधान-यात्राएँ ज्ञान पर भी उतनी ही निर्भर करती हैं, जितनी कि साहस पर।

अटलांटिक को पार करते समय कोलम्बस ने कई गलतियाँ कीं। उसने नक्षत्रों का उपयोग नहीं किया—ध्रुव नक्षत्र के कोण का पठन उसने केवल एक ही बार किया था, लेकिन जहाज डगमगाने लगा, उसकी सीस रज्जू हिलने लगी और उसने नक्षत्र-पठन का प्रयोग करना बंद कर दिया। उसे मुश्किलें इसलिए भी हुई कि पृथ्वी की परिधि के आँकड़े उसे गलत मालूम थे—उसने एरातोस्थेनीज़ के लगभग १५०० साल पहले के लगभग सही-हिसाब का उपयोग नहीं किया।

कोलम्बस वास्तव में अपनी पहली यात्रा के समय दो साधारण चीजों के अपने ज्ञान पर ही निर्भर रहा—चुंबकीय दिक्-सूचक और अनुमानित विदीय गणना—इसका मतलब यह है कि वह अपने जहाज के जाने की दिशा तथा दूरी का अंदाजा अपनी चाल का हिसाब लगा कर और दिक्-सूचक पर अपनी दिशा देखकर किया करता था। 'अंदाज और ईश्वर का सहारा' कहते थे और १५ वीं सदी के नाविक की बुद्धि का ९९ प्रतिशत यही होता था।

और किस्मत कोलंबस के साथ थी, क्योंकि वह भटककर पड़ा

तो व्यापार पवनों की निश्चित दिशा में और जो रास्ता भी उसने पकड़ा, वह ऐसा था कि जिसमें दिक्-सूचक ज्यादा गलत नहीं जाता है। फिर योजना-अनुसार जून में चलने के बजाय उसने अपनी यात्रा भी सितम्बर में शुरू की और इसलिए जब वह यात्रा के अंत पर पहुँचा, तो पश्चिमी द्वीप समूहों के पास पैदा होने वाले तूफान भी खातमे पर थे। हम कह सकते हैं कि वह तीन समुद्रों पर—पानी के समुद्र, वायु का समुद्र और चुंबकत्व का समुद्र—पर चला और उसे तीनों ही की सहायता मिली।

१४९२ के बाद नौकायन में भारी प्रगति हुई। कोलम्बस के दो सौ अस्सी साल बाद कप्तान जेम्स कुक ने प्रशान्त को एंटार्कटिक वृत से लेकर बेरिंग जलडमरू मध्य तक पार करके दुनिया का चक्कर लगाया। कोलम्बस की अटलांटिक पार की यात्रा की तुलना में उसकी लम्बी यात्राएँ कहीं आसान रहीं, क्योंकि अंग्रेजों ने एक कामचलाऊ क्रोनोमीटर, अर्थात समुद्र पर समय बताने वाली घड़ी की ईजाद कर ली थी, और सही समय देशांश निकालने बड़ा महत्वपूर्ण है।

जब कुक १७७२ में इंगलैंड से चला, तो उसने अपनी घड़ी ग्रीनविच माध्य अर्थात इंगलैंड के प्रामाणिक समय के अनुसार चला दी और यात्रा-भर उसकी नयी क्रोनोमीटर इसी के हिसाब से समय बताती रही। कुक जहाँ कहीं भी होता, वह सूर्य, चन्द्रमा या किसी नक्षत्र के कोण का पाठ्यांक लेकर उसकी ग्रीनविच के ऊपर के कोण से तुलना कर सकता था। इसके लिए उसे पंचांग में देखने-भर की जरूरत थी, जिससे उसे उस विशेष क्षण पर सूर्य, चन्द्रमा या किसी नक्षत्र के ग्रीनविच के साथ के कोण का पता चल जाता था। जरा से हिसाब से उसे पता चल जाता था कि उसका कोण ग्रीनविच पर के कोण से कितना भिन्न है। इससे उसे पता चल जाता था कि वह कहाँ है, अर्थात उसे अपना देशांश मिल जाता था।

अपना देशांश निकालने में कुक कई मील की गलती करता था, क्योंकि उसकी घड़ी यथार्थ नहीं थी। आधुनिक हवाई जहाज तथा

पानी के जहाज ग्रीनविच-समय ज्यादा अच्छी क्रोनोमीटरों से और रेडियो द्वारा प्राप्त करते हैं। प्रामाणिक समय का नौकायन के लिए महत्व देखते हुए अमरीका में इसका निर्धारण नौ-सैनिक वेधशाला करती है। देशांश का यथार्थ-निर्धारण, जैसा कि हम देख चुके हैं, अंभूव की समस्याओं में से एक है। अमरीका में यह खोज नौ-सैनिक वेधशाला के अधीकारण में हो रही है।

कुक ने नौकायन तथा देशानुसन्धान के एक नये युग का सूत्रपात किया। विज्ञान में नयी रुचि को मान्यता देते हुए अपनी दूसरी यात्रा में वह आकाश के अध्ययन के लिए तथा सभी समुद्रों पर दिक-सूचक के अदभुत आचरण की, जो उन्नत नौकायन-पद्धतियों के साथ-साथ अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा था, जाँच के लिए एक ज्योतिर्विद को जहाज पर साथ ले गया। पैसिफ़िक की वनस्पति का अध्ययन करने के लिए वह एक वनस्पति-वैज्ञानिक को भी साथ ले गया था।

लम्बी यात्राओं के दौरान भोजन की समस्या को हल करके उसने सागर-विजय का एक भाग भी पूरा किया। सागर यात्रा में स्कर्वी (विटामिन 'सी' की न्यूनता से जनित शीतादि रोग) के कारण मृत्यु साधारण बात थी। अपने देश के बन्दरगाहों से महीनों बाहर सागर पर रहने वाले जहाजी बेड़े इस प्रकार हुई मृत्युओं के कारण पंगु हो जाते थे। उत्तमाशा अन्तरीय का चक्कर लगाते समय वास्कोडिगामा के १६० आदमियों में से १०० स्कर्वी से मर गए थे। १७७६ में कुक को 'सम्राट के जहाज·········के नाविकों के स्वरूप को बचाने के लिए' एक पदक दिया गया है। क्योंकि '११८ आदमियों की टुकड़ी के साथ उसने ५२० उत्तर से ७१° दक्षिण तक के रेखांशों में सभी जलवायुओं में से गुजर कर तीन साल अठारह दिन की यात्रा पूरी की जिसमें रोग से केवल एक आदमी की जान गई।' इसका कारण क्या था? कुक लम्बी यात्रा के दौरान हरी सब्जियाँ—गोभी का अचार और जड़ी बूटियाँ—साथ रखना जान गया था।

अमरीकी क्रांति के दौरान बेंजामिन फ्रेंकलिन ने उपनिवेश-वासियों के सभी सशस्त्र जहाजों को यह आदेश दिया था, "सज्जनो, इस युद्ध के शुरू होने के पहले सुख्यात जहाजी तथा अन्वेषक कप्तान कुक के नेतृत्व में अज्ञात समुद्रों में खोज करने के लिए इंगलैंड से एक ज़हाज चला था। यह एक प्रशंसनीय कार्य है, क्योंकि भौगोलिक ज्ञान की वृद्धि से सुदूर राष्ट्रों के मध्य संचार सुविधाजनक हो जाता है···और इससे पूरी मानव-जाति को ही लाभ पहुँचता है। आपको, इसके दृष्टिगत, यह राय दी जाती है कि यदि यह जहाज आपक हाथ में पड़ जाए, तो आप उसे शत्रु न मानें, न उसके किसी सामान को ही लुटने दें और न उसकी इंगलैंड को तुरन्त वापसी में दी बाधा उपस्थित करें।"

ब्रजामिन फ्रेंकलिन, इस प्रकार, समुद्रों तथा पृथ्वी के वैज्ञानिक अध्ययन में अन्तरराष्ट्रीय सहकारिता की बात कहने वाले पहले आदमी थे। उनका आदेश अंभूव का पूर्वगामी था।

समुद्रों के अध्ययन में फ्रेंकलिन ने अपना निजी अनुदान भी दिया। कोई ३०० बरसों से जहाज अटलांटिक के आर-पार आ-जा रहे थे। और पवनों तथा धाराओं के रूप उभरने लगे थे। उपनिवेशों के, जहाजों के, विशेषकर बहामा द्वीपों से ह्वेल पकड़ने के लिए आर्कटिक प्रदेश की ओर जाने वाले जहाजों के कप्तान इन रूपों से परिचित थे। वे जानते थे कि गल्फ स्ट्रीम उत्तरी अमरीकी तट के साथ-साथ हैट्टराज़ अन्तरीप तक जाती है, फिर वह पूर्व की ओर मुड़कर अटलांटिक के पार यूरोप की ओर बह जाती है। उत्तरी जल में उ० ध्रुव से आने वाली एक ठण्डी धारा गरम गल्फ स्ट्रीम से टकराती है, जिससे कुहरा पैदा होता है।

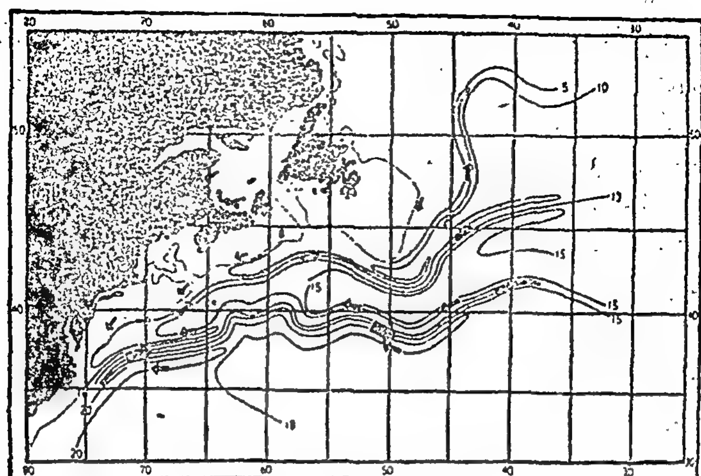
फ्रेंकलिन १७६९ में, जब वह अमरीकी उपनिवेशों के पोस्ट-मास्टर जनरल थे, इस बात से परेशान थे कि इंगलैंड से आने वाले डाक-जहाज़ उपनिवेशवासियों के व्यापारिक जहाजों से दो-तीन हफ्ते देर से पहुँचते थे। उन्होंने इसका कारण जानना चाहा। नैनटुकेट के

क एक ह्वेल पकड़ने वाले जहाज के कप्तान ने उन्हें बताया कि अंग्रेजी जहाज़ गल्फ़ स्ट्रीम में उसके प्रवाह के खिलाफ चलकर आते हैं। फ्रैंकलिन ने अंग्रेजी कप्तानों के लिए गल्फ़ स्ट्रीम का एक चार्ट बनवाया। लेकिन अंग्रेज तो उस समय 'सागर के सर्वोत्तम मल्लाह' थे—उनके पास नयी क्रोनोमीटर थी। आकाश का उन्हें ज्ञान था,—इसलिए अनाड़ी अमरीकियों की राय की उन्होंने उपेक्षा की और वे देर से ही पहुँचते रहे।

फ्रैंकलिन ने कहा, "हम लोग गल्फ़ स्ट्रीम से अच्छी तरह परिचित हैं। क्योंकि ह्वेल मछलियों का पीछा करते समय, जो इसके आजू-बाजू तो रहती हैं, पर इसके भीतर नहीं रहतीं, हम इसके साथ-साथ चलते हैं और इसे अकसर पार करते हैं और इसे पार करते समय हमारी कभी-कभी इन डाक जहाजों से मुलाकात और बात हुई है, जो इसके बीच होकर आ रहे थे। हमने उन्हें बताया है कि वे एक ऐसी धारा में होकर आ रहे थे। जो एक घण्टे में तीन मील के हिसाब से उनके खिलाफ पड़ती थी और उन्हें सलाह दी कि वे उसके बाहर आ जाएँ, लेकिन वे अपनी होशियारी के आगे सामान्य अमरीकी मछियारों की राय उन्हें जँची नहीं। जब पवन हल्की होती है, तो गल्फ़ स्ट्रीम की धार उन्हें हवा जितना आगे धकेलती है, उससे कहीं ज्यादा पीछे ले जाती है।"

आज हम जानते हैं कि ये धाराएँ पृथ्वी के अधिकांश मौसम को पैदा और कायम रखने वाली हैं। महासागरों तथा उष्म गल्फ़ स्ट्रीम से चली हवाएँ उत्तर यूरोप के जलवायु को दूर दक्षिण में स्थित देशों की-सी सुहावने, बनाये रखती हैं। गल्फ स्ट्रीम के बिना जो ताप रहता, उससे इसके कारण ग्रेट ब्रिटेन का औसत वार्षिक ताप १५° अधिक और नार्वे का २०° से २५° अधिक रहता है। अन्य बड़ी महासागरीय धाराएँ पृथ्वी के अन्य भागों को गरम या ठंडा करती हैं।

मिसाल के लिए, १९५७ में जापानी सागर-वैज्ञानिकों ने घोषित किया कि वह गरम धारा, जो चीन तथा फिलीपीन के निकट पैदा



आकृति ४—गल्फ़ स्ट्रीम का एक आधुनिक मानचित्र उसकी जटिलता दरशाता है ।

होती है और प्रशांत को पार करके उत्तर अमरीका की तरफ जाने से पहले जो उत्तर की ओर बहकर जापान को गरमाती है, उसने प्रत्यक्ष अपना रास्ता बदल दिया है । सागर-वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इसके फलस्वरूप उत्तरी ठंडा पानी संभवत: दक्षिण की ओर बढ़ आएगा और १९५८ में जापान में असमान्यरूपेण ठंडी ग्रीष्म ऋतु उत्पन्न करेगा और सम्भवत: पूरे ही उत्तर अमरीकी प्रशांत-तट का मौसम ज्यादा ठंडा रहेगा। अंभूव के सागर-वज्ञानिक इस स्थान-परिवर्तन की जाँच कर रहे हैं। उन्होंने सभी समुद्रों की धाराओं को अपने कार्यक्रम का मुख्य भाग बना दिया है । गल्फ स्ट्रीम का इन सागर-विज्ञानीय अध्ययनों में विशेष स्थान है ।

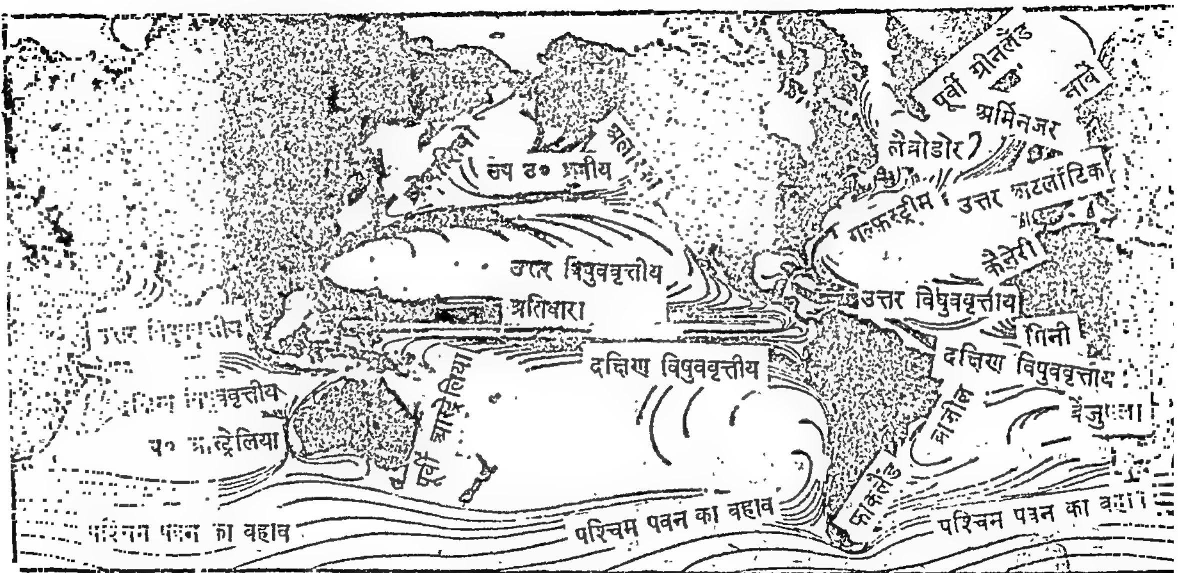
यद्यपि गल्फ स्ट्रीम की जानकारी फ्रैंकलिन के समय से है और १८७० से इसका वैज्ञानिक अध्ययन चल रहा है, तथापि इसका पथ अभी तक पूरी तरह से ज्ञात नहीं है । १९३० से वुड्स होल सागर-विज्ञान संस्था के वैज्ञानिकों द्वारा इसके पथ का गहन अध्ययन किया जा रहा है, लेकिन इसके औसत या माध्य पथ को केवल न्यूफाउण्डलैंड

के आगे, ग्रांड बैंक्स तक ही रेखांकित किया जा सका है।

वुड्स होल के सागर-वैज्ञानिकों ने पता चलाया है कि गल्फ़स्ट्रीम कोई एक अकेली 'धारा' नहीं है। यह कई तेज़, फड़कती पट्टियों या तंतुओं का क्रम है, जो साथ-साथ चलते हैं। इनमें से कोई-कोई पट्टियाँ ५० से १०० मील तक लम्बी हैं और कभी-कभी वे अपने सामान्य पथ से १०० मील तक भटक जाती हैं। १९५० में देखा गया था कि गल्फ स्ट्रीम की एक पट्टी ने बल खाकर अपने को एक २५० मील लम्बे चक्कर में बाँध लिया था। यह चक्कर दो दिन में टूट गया और एक अलग भंवर की तरह भटकने लगा। यह भी पता चला कि पट्टियों के बीच विपरीत दिशा में प्रतिधाराएँ चलती हैं। १९५७ में वुड्स होल के तथा ब्रिटिश सागर-वैज्ञानिकों ने पता चलाया कि आर्कटिक से एक बड़ा और गहरी धारा दक्षिण की ओर गल्फस्ट्रीम के नीचे बहती है, जो खुद उत्तर की ओर जाती है।

इन सतही धाराओं की गतियाँ अभी तक एक रहस्य है। हम जानते हैं कि लहरों की भाँति ये भी पवन तथा ताप में अन्तर से पैदा होती है, भू-खण्डों से पलट जाती हैं और पृथ्वी का अपकेन्द्री परिभ्रमण इन्हें अतिरिक्त मोड़ दे देता है। इसलिए ये धाराएँ समुद्र में बड़े-बड़े चक्र बना देती हैं, (चित्र ५) लेकिन ये कभी-कभी विचलित होकर अपना पथ क्यों बदल देती हैं, यह ज्ञात नहीं है। ये बड़ी धाराएँ मध्य अटलांटिक तथा प्रशांत में पश्चिम की ओर बहती हैं, फिर वे जापान तथा अमरीका के तटों के किनारे-किनारे उत्तर की ओर घूम जाती हैं। उत्तर में ये पूर्व की ओर मुड़ जाती हैं और महासागर के पार वापस बह जाती हैं। हो सकता है कि इसके बाद ये मुड़कर दक्षिण की ओर बहकर चक्र पूरा कर देती हों, पर यह बात निश्चित नहीं है। दक्षिण गोलार्द्ध में पवनें तथा धाराएँ विपरीत दिशा में घूमती हैं।

ये वृत्तीय धाराएँ 'समुद्रों' की विराट सतहों को आवृत करके रखती हैं। ये सतहें स्वयं सापेक्षतः अप्रगामी और इस कारण उष्ण, खारी और सम्भवतः न्यून पादप तथा प्राणी जीवन वाली होती



आकृति ५—महासागरों की सतही धाराएँ। सागर-वैज्ञानिक इन धाराओं का, तथा इनसे कम परिचित सतह से नीची धाराओं का अध्ययन कर रहे हैं।

हैं। ये बहुत ही गहरे साफ़ नील रंग की—महासागर के जीवन-हीन बंजर प्रदेशों के रंग की—होती हैं। इनका सर्वोत्तम उदाहरण गल्फ़स्ट्रीम के वृत्त में स्थित सारगैस्सो सागर (२०°—३५° उत्तर) है। संसार के महासागरों में ऐसे छः और 'मृत' समुद्र हो सकते हैं लेकिन हमारी जानकारी इतनी अपूर्ण है कि उनकी अभी अच्छी तरह खोज होना बाकी ही है।

अंभूव के सागर-वैज्ञानिक पृथ्वी के मुख्य क्षेत्रों पर इन सतही धाराओं का मापन तथा चित्रांकन कर रहे हैं, लेकिन उनकी प्रमुख समस्या सागर के गहनतर जल के चक्रण की है। इसी का सबसे कम अध्ययन भी हुआ है और भी अंभूव के दौरान पहली ही बार सागर-वैज्ञानिक संसार के गहनतर जलों का एक विश्वव्यापी चित्र प्राप्त करने का यत्न कर रहे हैं। गहनतर जलों तथा उनकी गतियों को समझने के लिए हमें अंभव के सागर-वैज्ञानिकों द्वारा प्रयुक्त उपकरणों तथा प्रविधियों की संक्षिप्त जानकारी लेनी चाहिए।

पृथ्वी के रूपों का अन्वेषण करने में काम लाये जाने वाले मूल उपकरण प्रायः बहुत ही सामान्य होते हैं—छाया डालने के लिए एक छड़ी, सीस रज्जू का काम करने के लिए एक सुतली और कोण बनाने के लिए दो लकड़ियाँ।

समुद्र के आधुनिक अनुसंधान का सर्वाति महत्त्वपूर्ण यंत्र ऐसा ही मामूली-सा उपकरण है। अंभूव के दौरान इसे दुनिया के दूर-दूर कोनों तक ले जाया जा रहा है। धरती से २०० से १६०० मील तक की ऊँचाइयों पर उसकी परिक्रमा करने वाले उपग्रहों में यह लगा हुआ है। यह सागर के तल में बैठाया जा रहा है, यह आर्कटिक और द० ध्रुव सागरों में भेजा जा रहा है। इस उपकरण का नाम तापमापी—थर्मामीटर है।

तापमापी की ईजाद सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में, जब कि संसार की एक नयी धारणा यूरोप पर छा रही थी, गैलीलियो ने की थी। यह धारणा बस यह कहती थी कि वास्तविक दुनिया की हर

चीज नापी, जाँची और काम में लगाई जा सकती है।

उष्मा गरमी—का अन्तर जानने के लिए हर चीज को मापा जाने लगा। गायों के रक्त, पक्षियों के शरीर, पानी के क्वथनांक तथा हिमांक के, हवा के, समुद्रों के—सभी के ताप नापे गए।

उष्मा के लिए हर वस्तु को मापने के प्रयास का अभी अन्त नहीं हुआ है। आज के वैज्ञानिक विश्व के लगभग हर बिन्दु और स्थल के ताप-पाठ्यांक, वास्तविक अथवा सैद्धान्तिक, प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। उदाहरण के लिए आज सूर्य के केन्द्र, पृथ्वी के केन्द्र और लाखों प्रकाश वर्ष दूर के तारों तक के तापों के 'पाठ्यांक' उपलब्ध हैं। सूर्य की सभी गैसीय परतों के तथा सूर्य और पृथ्वी के बीच ९,३०,००,००० मील अवकाश के ताप आगणन हैं। इन पाठ्यांकों में से कुछ सैद्धान्तिक हैं, कुछ आधुनिक तापमान-प्रविधियों तथा उपकरणों से प्राप्त किये गए हैं। ये विज्ञान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण आँकड़ों में हैं।

भू-भौतिकीविद् पृथ्वी के वायुमण्डल की सभी परतों के, समुद्रों की सभी परतों के और पृथ्वी के केन्द्र तक उसकी हर एक परत के ताप 'पाठ्यांक' प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं, इसमें उन्हें कितनी कम सफलता मिली है, यह इसी से प्रकट है कि १९५४ में उत्तरी अटलांटिक जल के ताप तथा लवणता के केवल पाँच अभिलेख थे। तब से इनमें कोई ५० और बढ़े हैं।

महासागरों के अध्ययन में ताप-पाठ्यांक सर्वाधिक महत्वपूर्ण माप हैं क्योंकि महासागर केवल पानी ही नहीं, अपितु उष्मा के भी संग्रहालय हैं उनकी उष्मा केवल दुनिया की जलवायुओं को ही स्थिरता प्रदान नहीं करती, वरन उनकी गतियों का रहस्य भी इसी में छिपा हुआ है।

उष्मा समस्त बल का मूल स्रोत है और इसलिए यह आधुनिव विज्ञान तथा उद्योग की समझ की कुंजी है। प्रारम्भिक भाप-इंजन हं या आधुनिक पारमाणविक रिएक्टर, दोनों में मुख्य समस्या उष्मा व और उसके कार्य तथा गति में रूपांतर के मापन की हो रही है। हव में पहली सफल उड़ान—१७८३ में—उष्मा से ही हुई थी और आधु

निक जेट वायुयान तथा राकेट के कार्य-व्यापार भी मुख्यतः ऊर्जा तथा उष्मा की समस्याओं से ही सम्बद्ध हैं । उष्मा-ज्ञान ने विज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण धारणा—ऊर्जा की अविनाशिता के सिद्धान्त—को सम्भव बनाया । उष्मा-गति को प्रथम नियम में अभिव्यक्त करें, तो इसका सीधा कथन यह है कि जब ऊर्जा एक स्वरूप में नष्ट होती है, तो वह उसकी तुल्य मात्रा में दूसरे स्वरूप में प्रकट हो जाती है।

इस नियम का उपयोग करते हुए आज का सागर-वैज्ञानिक समुद्र, पवनों तथा सूर्य को एक बड़ी 'मशीन' के अंग कहता है। वह 'वायु के इंजन' तथा 'पृथ्वी के बजट' की चर्चा उसी तरह से करता है, जैसे कारखाने के मालिक अपने कारखाने के ईंधन के बजट की बात करते हैं। हाँ, सागरों का ईंधन सूर्य की उष्मा है ।

समुद्र की लगभग सभी मूल प्रक्रियाएँ सूर्य के कारण ही हैं। अविराम वाष्पन, सतही धाराओं को चलाने वाली पवनें, तूफ़ान, तद्जनित भू-क्षरण, जो चट्टानों तथा मिट्टी से नमक को सींचकर समुद्र में ले आता है— ये सब 'सूर्य-प्रभावित' हैं।

लेकिन गहन सागर चक्रण भी 'सूर्य-प्रभावित' ही है और तापमापी की सहायता से हम इसके कुछ रहस्य जान सके हैं। प्रथम, लवणता तथा ताप में अंतर दो कारक हैं, जो गहन सागर में गति उत्पन्न करते हैं, और इन दोनों को पैदा करने वाला सूर्य है।

ये प्रक्रियाएँ विश्व-व्यापी हैं। भूमध्यरेखा के पास सूर्योष्णित पानी फैलता है, जिसके फलस्वरूप वह सतह पर ही टिककर ठण्डे प्रदेशों की ओर बहाए जाने की कोशिश करता है, तथापि उ० ध्रुव तथा द० ध्रुव का ठण्डा पानी सिकुड़कर भारी हो जाता है और नीचे बैठ जाता है । नतीजे के तौर पर पेंदी का सपाट पानी अधिक ठण्डा तथा सघन हो जाता है। उ० ध्रुव तथा द० ध्रुव के जल की प्रवृत्ती सागर-तल में बैठने की और धीरे-धीरे भूमध्यरेखा की तरफ़ धकेलने की होती है। अपने साथ-ही-साथ वह अपनी गहरी ठण्ड भी ले जाता है।

इस प्रकार ताप ही वह महत्त्वपूर्ण कारक है, जो समुद्री पानी के

ानत्व में अन्तर और इस प्रकार उसमें गति उत्पन्न करता है। लेकिन महत्वपूर्ण लवणता भी है। भूमध्य सागर-जैसे बन्द सागरों के पानी धूप में अचर पड़े रहते हैं, गरमाकर वे वाष्पित होते रहते हैं और वे अधिकाधिक नमकीन तथा सघन होते जाते हैं और कम नमकीन अटलांटिक में मिलने पर वे उसमें नीचे बैठते जाते हैं।

अटलांटिक, पैसिफ़िक, हिन्द, आर्कटिक तथा एंटार्कटिक महासागरों में ७५ अनुसंधान-पोतों पर वैज्ञानिक हर महासागर की विभिन्न जल-संहतियों के ताप तथा लवणता का निर्धारण कर रहे हैं। उनकी खोजों से हमें यह समझने में सहायता मिलेगी कि जल-संहतियाँ किस प्रकार गतिमान होती हैं और महासागर पृथ्वी की जलवायुओं को किस प्रकार कायम रखते हैं। अभूव के हर अनुसंधान-जहाज पर मूल उपकरण तापमापी ही है। इसके बाद महत्व के उपकरण वे हैं, जो लवणता का निर्धारण करते हैं।

समुद्र के भीतर का सारा जीवन अंततः समुद्री पौधों द्वारा सूर्य के प्रकाश के उपयोग पर निर्भर करता है। यह पवनों तथा धाराओं और ताप में अंतरों, जिनसे सागर-जल में गहरी गतियाँ उत्पन्न होती हैं, जैसे अन्य 'सूर्य-प्रभावित' रूपों पर भी निर्भर करता है। सागर-वैज्ञानिक आज यह जानने का यत्न कर रहे हैं कि ये 'सूर्य-प्रभावित' रूप कैसे और क्यों कुछ क्षेत्रों में विशाल मत्स्य-दलों की संख्या में अचानक वृद्धि कर देते हैं या उन्हें बिलकुल ही गायब कर देते हैं, जिससे मत्स्य-उद्योग इतना अनिश्चित हो जाता है।

ताप इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं कि वे सागरों पर 'राजमार्ग' बनाते है। इन ताप 'राजमार्गों' के बारे में एक रोचक जानकारी द्वितीय विश्वयुद्ध के समय प्राप्त हुई थी और उसे एक सैनिक रहस्य के नाते गुप्त रखा गया था। सभी समुद्रों की सतह के कोई ५००-५००० फुट तक एक अजीब परत है, जिसे 'सोफ़ार' सरणि (साउंड फ़िक्सिंग एंड रेंजिंग चैनल— ध्वनि निर्धारण तथा परास की पट्टी) कहते हैं। 'सोफ़ार' को 'ढूँढ़ा' ताप मापी ही ने, क्योंकि यह पैदा ही इस तथा इसके ऊपर

और नीचे के पानी के ताप तथा दाब में अंतर से होती है। इस परत में किये गए विस्फोट की आवाज़—यदि वह टापुओं या सागर के नीचे के पर्वतों से अवरुद्ध न हो, तो—१०,००० मील की दूरी तक जा सकती है। आवाज़ें इस पड़ी परत के बाहर नहीं जातीं, वे न इसके ऊपर सुनी जा सकती हैं, न नीचे।

'सोफ़ार' का उपयोग हवाई जहाजों तथा पानी के जहाजों की दुर्घटनाओं से ग्रस्त व्यक्तियों के बचाव के लिए किया जाता था। गिरे हुए हवाई जहाज के पायलट या डूबे हुए जहाज के नाविकों को बस समुद्र में एक छोटा-सा चार पौंड का गोला डाल-भर देने की जरूरत थी। ठीक गहराई पर जाकर उपयुक्त दाब पाकर उसका विस्फोट अपने आप हो जाता था। इसकी आवाज को सागर पर कहीं भी 'श्रवण-केन्द्रों' द्वारा सुना जा सकता था और तीन केंद्रों के बीच आवाज़ के आने की दिशा तथा समय को मापकर उसके स्थान को 'निर्धारित' किया जा सकता था। इससे दुर्घटनास्थल को आसानी से निश्चित किया जा सकता था। अब भी 'सोफ़ार' पट्टी को विश्व-व्यापी उद्धार-प्रणाली का आधार बनाया जा सकता है।

'सोफ़ार' एक दिन विश्व-संचार पट्टी का काम भी दे सकती है, जैसे कि उच्च अयनमंडलीय परतें रेडियो-संचरण का काम करती हैं। सागर-वैज्ञानिक सागरतल के पहाड़ों के अध्ययन तथा सागर के नीचे के भूकंपों तथा ज्वालामुखियों क विस्फोटों का पता चलाने के लिए 'सोफ़ार' का उपयोग करने भी लगे हैं।

'सोफ़ार' परत के नीचे लगभग अज्ञात तल के पास का पानी है। इसी पानी की ओर अंभूव के सागर-वैज्ञानिक मुख्य ध्यान दे रहे हैं।

१९५७ के आरम्भ में यह विश्वास किया जाता था कि यह ठण्डा पानी इतनी धीमी चाल से चलता है कि उसे ध्रुवों से भूमध्यरेखा तक आने में लगने वाले समय का अनुमान १०० से १००० बरस तक का था। अंभूव के आरम्भ के केवल चार मास पूर्व ही सागर-वैज्ञानिकों ने

गल्फ़ स्ट्रीम के डेढ़ मील से अधिक नीचे स्ट्रीम की विपरीत दिशा में २ से ८ मील की प्रति दिन की रफ़्तार से चलने वाली एक 'तेज़' धारा की खोज की घोषणा की। अन्य धाराएँ संभवतः अधिक धीमी चाल से चलती हैं। इन मंद गति से चलने वाली जल-धाराओं का मापन ही अंभूव के सागर-वैज्ञानिकों की सबसे कठिन समस्या है।

ये गहनतली जल-धाराएँ इन दूरगामी जल वायुविक परिवर्तनों में महत्वपूर्ण भाग लेने वाली हो सकती हैं, जो हिम-युगों की ओर ले जाते हैं। ये वही शीतल जल की धाराएँ हैं, जो सागर से अधिकतर जीवन को 'अच्छी तरह रखने' की प्रक्रिया द्वारा खाद्य की पूर्ति करती रहती हैं। ऊपरी जलों को पवन अलग बहा ले जाती है और उनकी जगह लेने के लिए तलीय जल सागर-तल के घुले खनिजों को लेकर ऊपर आ जाते हैं। ये खनिज नन्हे डायटम (एक जलज वनस्पति), जो प्लैंकटन (प्लंवग) वर्ग का एक सदस्य है, के मूल खाद्य हैं और अन्य सभी सागरीय जीवन की, जो अंततः इन्हीं सूक्ष्म पादपों पर निर्भर करता है, खाद्य शृंखला की कुंजी है। इसलिए ये अज्ञात तलीय जल भी सतही जलों से ही महत्वपूर्ण है।

१९५० में इन गहन जलों के चक्रण का पता लगाने के लिए एक नयी विधि निकाली गई। इसमें इनके कार्बन १४ को मापा जाता है। अंभूव द्वारा इस विधि का उपयोग किया जा रहा है।

वायु में उपस्थित कार्बन पानी में, उसकी सतह पर, कार्बन डाई आक्साइड के रूप में प्रवेश करता है। एक बार पानी में पहुँचने के साथ कार्बन का रेडियमधर्मी अंश—कार्बन १४—एक निश्चित रफ्तार से विघटित होने लगता है। यह निर्धारित करके कि गहन जलों में कितना कार्बन १४ बाकी है, सागर-वैज्ञानिक उस पानी की 'आयु' बता सकते हैं, अर्थात् यह कि उसे वायु के संसर्ग में आये कितनी देर हो चुकी है।

जिस समय बेंजामिन फ्रेंकलिन गल्फ़ स्ट्रीम का मानचित्रांकन कर रहे थे, तो वह पानी के ताप का माप करने के लिए उसे १०० फुट की गहराई से पीपों में भरकर निकलवाया करते थे। आज के सागर-

वैज्ञानिक कोई १०० फुट की गहराई से एक पीपा-भर पानी नहीं खींचते, बल्कि वे एक-एक मील या उससे भी ज्यादा गहराई से १००-१०० गैलन तक पानी खींचते हैं, क्योंकि उनमें उपस्थित कार्बन १४ की मात्रा अत्यन्त ही सूक्ष्म होती है। इस पानी पर जहाज पर रासायनिक क्रिया करके उसकी कार्बन डाईआक्साइड को मुक्त कराते हैं। फिर इस कार्बन डाईआक्साइड को—जिसमें कार्बन १४ भी मौजूद होता है—फ्लास्कों में मुहरबन्द करके अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण के लिए प्रयोगशाला भेजा जाता है। अंभूव के सागर-वैज्ञानिक उत्तर अटलांटिक तथा एंटार्कटिक के कार्बन १४ आधेय का विशेष अध्ययन कर रहे हैं, यद्यपि अन्य सब महासागरों में भी इसका अध्ययन चल रहा है। सागर-विज्ञान-कार्यक्रम में अन्य रेडियमधर्मी तत्वों का भी उपयोग किया जाएगा और हम उनकी चर्चा आगे चलकर करेंगे।

हम लोग परमाणु-युग में रह रहे हैं। इसके दृष्टिगत महासागरों के गहन-जलों के बारे में एक और सवाल पैदा हो गया है। यदि पारमाणविक पुंजों और रिएक्टरों से निकले रेडियमधर्मी अवशिष्ट पदार्थ सागरतल पर फेंके जाते रहें, तो क्या इनके चक्रण से सागरीय जीवन खतरे में नहीं पड़ जाएगा? अंभूव का सागर-विज्ञान-कार्यक्रम इस प्रश्न का उत्तर देने का यत्न करेगा।

अंभूव के दौरान सागरों की जिस अंतिम समस्या का अध्ययन किया जा रहा है, उसका सम्बन्ध पानी के स्तर में आने वाले विचित्र परिवर्तनों से है।

जब हेनरी हडसन ने अपने छोटे से जहाज को लेकर उस कनाडियाई खाड़ी में प्रवेश किया, जो आज उसी के नाम से जानी जाती है, तो उसने अपने जहाजी रोजनामचे में लिखा था कि वह बर्फ पर खड़ा हुआ था और उसने तट पर की एक चट्टान पर एक निशान तराशा था। आज वह निशान पानी की सतह से ६० फुट ऊपर है और यह इंगित करता है कि उत्तर अमरीकी महाद्वीप का उत्तरी सिरा केवल ३५० वर्षों की अल्प अवधि में ही बर्फ़ के उस भार से, जिसने इसे

१०,०००—१२,००० साल पहले दाब रखा था, धीरे-धीरे उन्मुक्त होता-होता किस तरह ऊपर उठ आया है।

जब बर्फ़ की यह विशाल चादर पिघली, तो समुद्र चढ़ गए। जब बर्फ़ बनी, तो सागर नीचे हो गये। सागर की सतह के इन दीर्घकालीन परिवर्तनों के अध्ययन तथा बर्फ़ के इस आगमन-प्रत्यागमन पर अंभूव के हिमनद-विज्ञान-कार्यक्रम के अन्तर्गत विचार किया जाएगा।

सागर की सतह में अल्प परिवर्तन भी होते हैं। ये भी इतने ही रोचक और इतने ही अबोध्यगम्य हैं। सागर के जिन रूपों को प्रारम्भिक मनुष्य ने पहले-पहल जाना, वे संभवतः ज्वार थे, फिर भी हमने इन 'सामान्य' ज्वारों की जटिलता को अभी समझना शुरू ही किया है।

एक सदी से भी कम ही समय पहले कुछ तटों पर ज्वार माप लगाये गए थे। तब से अभिलेख एकत्र होते गए हैं और सागर-वैज्ञानिक ने जान लिया है कि कुछ समुद्रों में ज्वार दिन में दो बार नहीं, बल्कि एक ही बार आते हैं और इसका कारण सागर-तल की स्थानीय बनावट है। उन्होंने जान लिया है कि सागर की सतह सूर्य तथा चंद्रमा के खिंचाव के कारण केवल हर दिन और घण्टे ही नहीं बदलती, वरन माह-प्रति-माह और दिन-प्रति-दिन भी बदलती रहती है।

उदाहरण के लिए उ० ध्रुव सागर में पानी तीन से चार दिनों के अन्तर से अज्ञात ताल से चढ़ता-उतरता है। यह उत्तरी ध्रुव-क्षेत्र में पानी के आगे-पीछे लुढ़कने के कारण हो सकता है। कभी-कभी पानी १५ से २० मिनटों के लघु अन्तरों पर ही चढ़ता-उतरता है। सागर की सतह में लम्बे मौसमी परिवर्तन भी आते हैं।

यूरोपीय बन्दरगाहों में समुद्र शिशिर तथा शरद में वसंत तथा ग्रीष्म की अपेक्षा ऊँचा होता है। ज्वार-मापियों से पता चलता है कि महासागर हर मौसम में केवल चढ़ते-उतरते ही नहीं, प्रत्युत आकृति में भी बदलते हैं— जब वे दक्षिणी गोलार्ध में उतरते हैं, तो उत्तरी गोलार्ध में चढ़ जाते हैं।

वसंत या ग्रीष्म में आरम्भ करके उत्तरी महासागर धीरे-धीरे

चढ़कर पतझड़ और सरदियों में चरम पर पहुँच जाते हैं। औसत चढ़ान लगभग ८ इंच ही होता है, लेकिन यह ८ इंच भी, अगर दक्षिण से आये, तो इसका मतलब खरबों टन पानी होता है।

सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि सागर की सतह के इस बढ़त के कुछ अंश का कारण यह है कि हर गरमी में पानी गरम होता तथा फैलता है। अगर सभी समुद्र केवल १° सें० ही गरमाते होते, तो दुनिया के महासागर पूरे १६ इञ्च चढ़ जाते। गरमी के कारण समुद्र की सतह में चढ़ान ४५° उत्तर के आस-पास समशीतोष्ण कटिबन्ध में आता है। इसके ऊपर, ठण्डे प्रदेशों में पानी इतना नहीं गरमाता कि इस चढ़ाव को समझाया जा सके। लेकिन समुद्र चढ़ता वहाँ भी है ही। (दक्षिणी गोलार्ध में भी ऐसी ही प्रक्रिया होती नजर आती है, पर हमारी जानकारी पूरी नहीं है।)

ये ऐसे नये सागर के 'ज्वार' हैं कि हमारी पाठ्य-पुस्तकों में अभी उनका उल्लेख तक नहीं है।

क्या समुद्र एक 'सी-साँ' (ढेंकुल-जैसा झूलने का तख्ता) की तरह से, जिसका आलम्ब विषुववृत्तरेखा है, छः मासी अवधियों से उत्तर से दक्षिण की तरफ आगे-पीछे 'ढुलकते' रहते हैं? अगर गरमियों में उत्तरी महासागर दक्षिणी महासागरों से ८ इञ्च ऊँचे होते हैं, तो वह नीचे की ओर बहकर दक्षिण की तरफ क्यों नहीं चले जाते? अगर पानी का यह चढ़ाव खरबों टन पानी के स्थानांतरण के कारण है, तो एक तरफ इतने भार एकत्र हो जाने का धरती के घर्णन पर क्या प्रभाव पड़ता है? इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए अंभूव के सागर-वैज्ञानिक यह निर्धारित करने का यत्न कर रहे हैं कि क्या गोलार्धों के बीच विशाल जलराशियों का विनिमय तो नहीं होता?

लहरों, धाराओं, गहन जल-चक्रण तथा सागर की सतह के परिवर्तनों के अध्ययन में अंभूव के सागर-विज्ञानीय कार्यक्रम में सहयोग करने वाले २६ राष्ट्रों के वैज्ञानिकों को अपने कुछ मछली पकड़ने वाले जहाजी बेड़ों की सहायता प्राप्य है। संसार के कई भागों में

द्वीपों, सागर-तलों तथा तटों पर लहर-अभिलेखक तथा ज्वार-मापक काम कर रहे हैं। ७५ वैज्ञानिक जहाजों पर सागर-वैज्ञानिक पवनों तथा सागरों के ताप और लवणता का मापन कर रहे हैं तथा अन्य अध्ययन कर रहे हैं,-जिन पर हम आगे चलकर विचार करेंगे।

सभी आंकड़ों के संग्रह और तुलना के बाद—१९६० में—हम समुद्र के रूपों के बारे में अधिक जान सकेंगे। फिलहाल हम महासागरों के अध्ययन के एक नये दौर में प्रवेश कर रहे हैं, जिसका सम्बन्ध ज्योतिर्विज्ञान तथा पृथ्वी की उत्पत्ति से है।

प्रशान्त सागर की गहरी तलछट में असामान्यरूपेण ऊँची मात्रा में निकिल मिला है। सागर-वैज्ञानिकों तथा भू-भौतिकीविदों को इसके पाये जाने के कारण का तनिक भी आभास नहीं है। फिलहाल उन्होंने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि यह उल्कीय अथवा ब्रह्मांडीय धूलि के क्रमिक संचय के कारण हो सकता है। इस चौंकाने वाले सिद्धान्त की कल्पना यह है कि हर साल दस लाख टन तक यह धूलि पृथ्वी पर गिरती है। यह इतनी अधिक है कि सागर में घुसने से पहले यह मौसम को भी प्रभावित कर सकती है। अंभूव के भू-उपग्रहों का एक महत्वपूर्ण प्रयोग सूक्ष्म उल्का-पिंडों का मापन है।

दूसरे, सागर-वैज्ञानिक समुद्रतल के नीचे की चट्टानों के विश्लेषण द्वारा तथा पृथ्वी की गहराइयों में होने वाली प्रक्रियाओं के अध्ययन से सागरों की तहों और स्वयं पानी की ही उत्पत्ति का पता चलाने की कोशिश कर रहे हैं।

सागर-वैज्ञानिक आज पृथ्वी की उत्पत्ति, उसके भ्रमण, अन्तरिक्ष की परिस्थितियों, सूर्य के विकिरण तथा वायुमण्डल की रासायनिक संरचना-जैसे मामलों में भी दिलचस्पी लेने लगे हैं।

सागर के जिन रूपों की हम जानकारी हासिल कर रहे हैं, वे जटिल और निस्सीम हैं।

: ४ :

हिम

१७७३ और १७७५ में जब कप्तान कुक द० ध्रुव प्रदेश के छोर पर पहुँचा, तो वह यह नहीं कह सकता था कि इस हिमागार के पार कोई महाद्वीप है। उसने कहा कि अगर भूमि होगी, तो वह इतनी ठंडी और तेज़ हवाओं वाली होगी कि मनुष्य का वहाँ रहना सम्भव न होगा।

आज ११ राष्ट्रों के लोग द० ध्रुव महाद्वीप पर सरदियाँ काट रहे हैं और उनमें से कुछ तो उसके ऊँचे अंतर्प्रदेश पर रह रहे हैं। अंभूव ने द० ध्रुव प्रदेश में जीवन को लगभग एक सामान्य चीज बना दिया है। अन्वेषण का यह नया युग वायुयान, कवचयुक्त हिमतोड़क, बर्फ पर चलने वाली मोटर गाड़ी तथा सैनिक रसद-प्रविधि के कारण सम्भव हुआ है। लेकिन द० ध्रुव प्रदेश को मानव-वास के अयोग्य बनाने वाली चीज वस्तुतः वहाँ की जलवायु नहीं, वरन् वही समस्या—स्कर्वी की बीमारी—थी, जिसका कुक ने अपनी सागर-विजय में सामना किया था।

१९१२ में अंग्रेज अन्वेपक रॉवर्ट स्कॉट ने दक्षिणी ध्रुव के लिए नार्वेजियाई एमंडसेन से 'दौड़' लगाई। नार्वेजियाई कुत्तागाड़ी और ब्रिटिश घोड़ागाड़ी दलों के बीच यह एक आदिम दौड़ थी। टट्टू द० ध्रुव प्रदेश के उपयुक्त नहीं थे। वे मारे गए और अंग्रेजों को अपने हिमयान खुद खींचने पड़े। स्कॉट और उनका दल एमंडसेन के एक

महीने बाद ध्रुव पर पहुँचे और वापसी में खेत रहे। स्कॉट के साथ जाने वाले सर रेमंड प्रीस्टले ने कहा था, "अंग्रेजों ने इसलिए मात खाई कि उनके तरीके सर्वोत्तम नहीं थे···सच यह है कि विटामिन 'सी'-रहित खाद्य-सामग्री के कारण सुरक्षा की सम्भावना बहुत कम थी। चार महीने करीब-करीब उतना ही समय है कि जब तक विटामिन 'सी' के बिना हिमगाड़ियाँ खींचते आदमी जी सकते हैं। एक बार यह अवधि बीती नहीं कि स्नायुविक और शारीरिक हालत बिगड़ने लगी, घाव अच्छे ही न होते और शिथिलता सर्वोपरि हो गई। स्कॉट का दल भूखों नहीं मरा, सरदी ही बहुत अधिक थी। फिर भी, मेरा विश्वास है कि निर्णायक कारक स्कर्वी ही थी।"

उस हिम-मंडित और निर्जन महाद्वीप पर बर्फ़ में थोड़ी-थोड़ी दूर की मंजिलों को आने-जाने का जीवट ही दिखाया जा सकता था। लेकिन आज वायुयानों, रसद-जहाजों तथा साज-सामान से सुसज्जित केन्द्रों ने आर्कटिक और एटार्कटिक--दोनों बर्फीले प्रदेशों को खोल दिया है। फलस्वरूप ध्रुवीय हिमावरण पृथ्वी के अध्ययन में एक दैनिक प्रयोगशाला बन गया है।

बर्फ़ ने पृथ्वी के कोई दसवें भू-प्रदेश को ढक रखा है, तिस पर भी लगभग सारा ही बर्फ़ीला प्रदेश सभ्यता की पहुँच के बाहर है। १८००० वर्ष हुए, अंतिम हिमयुग के चरम पर, अबसे लगभग तीन गुनी बर्फ़ थी और उसने पृथ्वी के एक तिहाई भू-भाग को ढाँक रखा था। हम सम्भवतः इस हिमयुग के अंतिम तृतीयांश में रह रहे हैं। बर्फ़ तथा उसके संकुचन के अध्ययन से लगता है कि पृथ्वी प्रकट ही गरम हो रही है। लेकिन हमें इसका कोई अनुमान नहीं कि बर्फ़ यूँ ही पिघलती रहेगी या नहीं। हिम और हिमयुगों का रहस्य भूभौतिकी की सबसे बड़ी समस्याओं से एक है।

यदि पृथ्वी की सारी ही बर्फ़ पिघल जाए, तो महासागरों की सतह २०० से ३०० फुट तक ऊँची होकर न्यूयार्क, लंदन, बम्बई, टोक्यो तथा कई अन्य बंदरगाहों और सैकड़ों मील तक के अन्तर्प्रदेशों को

जल-प्लावित कर देगी। इसका कोई अविलंब खतरा नहीं है,\ क्योंकि पिघलने की मौजूदा रफ्तार से भी इसमें कई हजार वर्ष लग जाएगे। सागर २५० इंच प्रति शताब्दी की धीमी गति से चढ़ते जा रहे हैं। लेकिन अगर दुनिया की बर्फ़ फैलने लगे, तो सागरों का चढ़ना भी रुक सकता है और वे नीचे होने लगेंगे।

हिमयुग के चरम पर सागर अब से कोई ३०० फुट नीचे थे। तब हमारे तटीय नगरों की स्थलियाँ सुदूर अंतर्प्रदेश में थीं। इस प्रकार समुद्रों, बर्फ़ तथा भूमि का संतुलन बड़ा ही नाजुक है।

अंभूव में भाग लेने वाले एक हिमनद-वैज्ञानिक के शब्दों में बर्फ़ 'युगों का तापमापी' है। यह वार्षिक ताप तथा हिमपात में तनिक-से भी अंतर का अति संवेदनशील सूचक है। इसी कारण एक पीढ़ा से हिमनद-वैज्ञानिक हिमनदों तथा हिमकिरीटों के पास डेरे जमाये बर्फ़ के नमूने ले रहे हैं और उसकी जाँच तथा माप कर रहे हैं।

बर्फ़ की दो सबसे बड़ी राशियाँ ग्रीनलैंड का हिमकिरीट तथा द० ध्रुव-प्रदेश का हिमावरण हैं। ग्रीनलैंड का हिमकिरीट दुनिया की कुल बर्फ़ का लगभग १० प्रतिशत है और द० ध्रुव-प्रदेश का आवरण लगभग ८६ प्रतिशत १५ राष्ट्रों के वैज्ञानिक अंभूव के दौरान इन हिमराशियों के अध्ययन में सहकार कर रहे हैं। सोवियत संघ ने वैज्ञानिकों के साथ काम करने के लिए एक आदमी द० ध्रुव-प्रदेश भेजा है और अमरीका का एक प्रतिनिधि सोवियत शिविर में है। जब एक जापानी जहाज बर्फ़ में फँस गया तो एक सोवियत हिमतोड़क उसे निकालने के लिए गया था। सोवियत संघ अपने ध्रुवीय केन्द्र से दैनिक मौसम-रिपोर्टों के रेडियो-प्रसारण द्वारा भी सहयोग दे रहा है। ध्रुव प्रदेश में अंभूव के अन्तर्गत जितने निकट सहयोग की आशा थी, राजनीतिक शीत युद्ध ने उसमें कुछ बाधा डाली है।

हिमनदों का भी अध्ययन किया जा रहा है। धीमी चाल से चलने वाली ये बर्फ़ की नदियाँ पहाड़ों से और ऊँचाई पर स्थित हिमकिरीटों से आती हैं और आस्ट्रेलिया को छोड़कर ये सभी महाद्वीपों पर मिलती

की घाटियों-जैसे उन्हीं प्रदेशों के लिए ठीक है, जहाँ सूर्य की गरमी जज़्ब करने के लिए खुली भूमि है।

उ० ध्रुव और द० ध्रुव प्रदेश इसलिए ठण्डे हैं कि वहाँ सूर्य की अधिकांश रोशनी तथा ऊर्जा फैलकर नष्ट हो जाती है। इसका एक बड़ा भाग ५०,००,००० वर्ग मील से अधिक द० ध्रुव हिम से तथा लगभग ३०,००,००० वर्ग मील उ० ध्रुव हिम से टकराकर उस तरह लौट आता है, मानो वह किसी विशाल दर्पण पर गिरा हो। सूर्य का ८० प्रतिशत से अधिक प्रकाश तथा उसकी ऊर्जा का बड़ा भाग इस तरह ध्रुव-प्रदेशों में नष्ट हो जाता है। सूर्य के प्रभाव को कम करने वाले अन्य कारण भी हैं—पृथ्वी की गोलाई के कारण सूर्य के प्रकाश को नमी तथा कुहरे-सहित उसके अधिक वायुमण्डल में से होकर गुजरना पड़ता है, जहाँ वह जज़्ब हो जाता है। फिर, ध्रुवीय कोण के कारण भी, बर्फ़ को स्पर्श करने से पहले सूर्य का प्रकाश खुद फैलकर 'पतला' हो जाता है।

इसलिए अंभूव के हिम-अध्ययन कार्यक्रम के अधिकांश महत्वपूर्ण यन्त्र तापमापी से ही विकसित हुए हैं और उनमें 'उष्मा बजट' की माप करने वाले सभी आधुनिक उपकरण सम्मिलित हैं। सूर्य के प्रकाश, उष्मा तथा ऊर्जा का विभाजन, संग्रह तथा उपयोग किस प्रकार होता है? अंभूव के वैज्ञानिक सुदूर उत्तर तथा दक्षिण का और वास्तव में सारी ही पृथ्वी का, यथार्थ तापमापित चित्र या 'उष्मा बजट' जानना चाहते हैं। वे यह तापमापित चित्र केवल आज के लिए ही नहीं चाहते, वरन् हजारों-लाखों साल पहले का भी चाहते हैं।

द० ध्रुव-प्रदेश में हिमनद-वैज्ञानिक २००० फुट नीचे की बरफ़ में सुराख करके हर ३ इन्च पर ताप का माप ले रहे हैं। सतह से कोई २५ फुट नीचे का ताप उ० ध्रुव-प्रदेश के उस भाग का औसत वार्षिक ताप बताता है। इसलिए एक दोपहर तक ही हिमनद-वैज्ञानिक इतना जान जाते हैं, जिसके लिए एक साल के तापांशों की आवश्यकता पड़ती

है और वे इस विशाल बर्फ़ीली चादर पर यहाँ-वहाँ तेजी से ताप ले सकते हैं। हिमनद-वैज्ञानिक यह जानने के लिए भी तापांश ले रहे हैं कि बर्फ़ में कितनी उष्मा कैद है।

द० ध्रुव-प्रदेश की बर्फ़ कहीं-कहीं २ मील तक मोटी है। उसका ताप स्थान-स्थान और विभिन्न परतों पर भिन्न-भिन्न है। इस सारी बर्फ़ को पिघलाने के लिए कितनी गरमी चाहिए? यह इस बात पर निर्भर करता है कि यह बर्फ़ किस तरह की है और उसमें कितनी गरमी पहले से मौजूद है। पिघलना शुरू करने के पहले बर्फ़ गरमी को भारी मात्रा में जज्ब कर सकती है।

जहाँ हिमनद-वैज्ञानिक बर्फ़ का मापन कर रहे हैं, मौसम-वैज्ञानिक सूर्य तथा वायु के माप ले रहे हैं। वे आने वाले सूर्य-प्रकाश बर्फ़ से परावर्तित सूर्य-प्रकाश की मात्रा, वायु में प्रकीर्णित प्रकाश की मात्रा तथा वायु-मण्डल द्वारा अवशोषित मात्रा को मापते हैं। वे बर्फ़ द्वारा जज्ब किए गए प्रकाश की मात्रा और ये बादलों तथा कुहरे द्वारा अवरुद्ध प्रकाश की मात्रा को माप रहे हैं। वे वायु तथा पवनों के ताप मापते हैं ये सारे माप लगातार ले रहे हैं। रोज़ दो बार लगभग १,००,००० फुट की ऊँचाई से ताप, आर्द्रता तथा दाब के बारे में रेडियो द्वारा जानकारी प्राप्त करने के लिए गुब्बारे ऊपर भेजे जाते हैं और वे राडार द्वारा अपने गुब्बारे की गतिविधि देखकर पवन की चाल तथा दिशा का पता चलाते हैं। द० ध्रुव-प्रदेश के मुख्य अमरीकी शिविर से रोज ४० राकून ऊपर भेजे जाते हैं—ये रॉकेटवाही गुब्बारे हैं। कोई १५ मील की ऊँचाई पर ये रॉकेट स्वतः छूट जाते हैं और कोई ३२ मील की ऊँचाई तक जा पहुँचते हैं। राकून वायुमण्डल की मौसम से कहीं ज्यादा ऊँचाइयों से तसवीर पेश करते हैं। इनके फलस्वरूप सम्पूर्ण द० ध्रुव महाद्वीप की दिन-दिन की मौसमी रिपोर्ट और 'उष्म बजट' की प्राप्ति होती रहती है।

पिछले कुछ सौ सालों का चित्र ऊपरी बर्फ़ की परतों में पढ़ा जाएगा। उ० ध्रुव-प्रदेश तथा ग्रीनलैंड में सफ़ेद बर्फ़ की परतें आम

तौर पर गरमी में वर्फ़ के पिघलने से वनी साफ़ नीली वर्फ़ की परतों से विभाजित हैं। यह नीली वर्फ़ चट्टान-सी सख्त हो सकती है। वर्फ़ की परतें सख्त वर्फ़ द्वारा नहीं वँटी हुई हैं, लेकिन वहाँ १००० फुट से ज्यादा की गहराई पर दाव इतना अधिक हो सकता है कि घुली हुई गैस वर्फ़ के रन्ध्रों से फूट निकल सकती है और इसमें उसके भीतरी भाग को फोड़ तक सकती है। लेकिन खुदाई फिर भी फलदायी रहती है, क्योंकि वर्फ़ की हर परत उसके पड़ने के साल की अपनी जटिल कहानी सुनाती है। क्या हिमनद-वैज्ञानिक १८८३ के साल की—जव क्राकाटोआ का विस्फोट हुआ था और उसकी धूल ने दुनिया को ढक लिया था—परत ढूँढ निकाल सकेंगे? क्या वे १९४५ की--जव पहले परमाणु वम गिराये गए थे, जिन्होंने पृथ्वी के चारों ओर रेडियम-धर्मी कण छितरा दिये थे—परत पा सकेंगे?

किसी भी हालत में, हिम केलासों के आकार तथा किस्म, वर्फ़ के ताप तथा उसकी रासायनिक संरचना से भी हिमनद-वैज्ञानिकों को एंटार्कटिक की हवा तथा मौसम का पिछली कुछ सदियों का हाल मिल जाएगा।

हजारों साल पहले एंटार्कटिक की जलवायु कैसी थी? इस प्रश्न का सम्वन्ध सागर-वैज्ञानिकों से है।

सागर-वैज्ञानिक हिमतोड़क जहाज़ को ठहराकर एक लम्वा, पतला 'कोडर' सागर की पेंदी तक पहुँचा देते हैं। कोडर एक पतला पाइप होता है, जिसे विस्फोट की शक्ति से सागर-तल में १०० फुट की गहराई तक घुसा दिया जाता है सागर-तल का कोड़ ऊपर आने पर उस क्षेत्र के डेढ़ लाख साल तक की जलवायु की कहानी वताने लगता है।

सागर-तल से एक अद्भुत कहाना प्राप्त होती है। यह हमें वताता है कि वर्फ़ की वड़ी चादर कहाँ तक फैली हुई थी, क्योंकि वर्फ़ पिघलते समय अपने साथ चट्टानों के टुकड़े ले जाकर उन्हें सागर के पेंदे में डाल देती है। द० ध्रुव महाद्वीप के गिर्द २०० से ७०० मील तक

चौड़ी हिमनद-प्रस्तरों की पट्टी है। ये बड़े-बड़े पत्थर कोडर को मोड़ या तोड़ तक सकते हैं। इसलिए सागर-वैज्ञानिक ऐसे समुद्र या गरम पर्वत की तलाश करते हैं, जहाँ ये पत्थर न हों। वहाँ से उसे ऐसा कोड मिलता है, जो द० ध्रुव-प्रदेशों की जलवायु की कहानी बता सकता है।

लाखों साल पहले उ० ध्रुव-प्रदेश पर सागर में जाकर मिलने वाली नदियाँ थीं। कोडर अगर किसी ऐसी जगह की रेत को भेदे, जहाँ कोई लुप्त नदी कभी अपना कीचड़ गिराया करती थी, तो सागर-वैज्ञानिक यह बता सकते हैं कि उस नदी ने बहना बन्द करके जमना कब शुरू किया, क्योंकि वहाँ से रेत अचानक गायब हो जाती है और उस पर समुद्री कीचड़ या हिमनद-प्रस्तरों की एक नयी परत शुरू हो जाती है। इस कोड से सागर-वैज्ञानिक यह भी बता सकते हैं कि महाद्वीप की मिट्टी किस तरह की थी और—अगर ठीक जगह की कोड मिल जाए तो यह तक भी कि वहाँ किस तरह का वनस्पति-जीवन होता था। कोडों से पता चल जाता है कि हर युग में द० ध्रुव-प्रदेश का ताप क्या था, क्योंकि पानी के सतह के सूक्ष्म प्लैंकटन तथा डाटम—जीवन में पानी के ताप में हर तबदीली से परिवर्तन आता है; समुद्र के पेंदे में पाई जाने वाली नन्हीं ठठरियाँ उनके जीते रहने के समय पानी के ताप के अभिलेख हैं। द० ध्रुव के पेंदे से लुप्त कोडों को मुहरबन्द करके प्रयोगशालाओं में भेजा जाता है, जहाँ उनका विश्लेषण तथा कार्बन-तिथ्यांकन किया जाता है, जिससे वे हर युग और परत की कहानी बता देते हैं।

कदम-ब-कदम द० ध्रुव-प्रदेश का इतिहास खुलता जा रहा है। अंभूव के आरम्भ के पूर्व लिये गए पहले दो दर्जन कोडों से पता चलता है कि कोई १२,००० साल पहले द० ध्रुव-प्रदेश का पानी बर्फ़ से मुक्त रहा होगा। उस समय उत्तर अमरीका, यूरोप तथा एशिया को विशाल बर्फ़ीली चादरों ने ढक रखा था। द० ध्रुव सागर कोई पांच हजार साल पहले तक बर्फ़ से मुक्त रहा। उत्तर की विशाल बर्फ़ीली चादरों के पिघलने के साथ द० ध्रुव-प्रदेश का पानी ठण्डा होने लगा।

क्यों ? क्या यह तब हुआ, जब दक्षिण ध्रुव पर बर्फ़ बनने लगा ? द० ध्रुव-प्रदेश 'उष्मा बजट' के भूत तथा वर्तमान के इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए अंभूव के वैज्ञानिक वर्फ़, सूर्य तथा वायु और सैकड़ों क्रोड़ों के माप ला रहे हैं।

उत्तरी ध्रुव तथा द० ध्रुव-प्रदेश केवल भौगोलिक दृष्टि से ही नहीं, वरन् भौतिक बनावट में भी 'विपरीत ध्रुवों' पर हैं। दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश की वर्फ कहीं-कहीं दो-दो मील तक मोटी है, जिससे यह संसार का सबसे ऊँचा 'महाद्वीप' बन गया है। उत्तरी ध्रुव का हिम बर्फ़ का एक नीचा, सपाट तथा तैरता ढेर है। उत्तरी ध्रुव महासागर भूमि से घिरा है। इसीलिए कहा गया है कि "उत्तरी ध्रुव एक गढ़ा है, जबकि द० ध्रुव-प्रदेश एक गुमड़ा है।"

उत्तरी ध्रुव की तैरती बर्फ़ १२-१५ फुट मोटी है। जोड़ों पर यह ज्यादा मोटी है और पिघलने की जगहों पर कम मोटी। उत्तर की मोटी बर्फ़ उस ज़मीन पर है, जो सागर से मिली हुई है। ग्रीनलैंड की, जिसका सिर उत्तरी ध्रुव महासागर में घुसा हुआ है, बर्फ़ की परत सब से ज्यादा मोटी है—करीब-करीब दक्षिणी ध्रुव-प्रदेश-जैसी ही—१०,००० फुट की। इसलिए उत्तरी-गोलार्ध की अधिकांश बर्फ यहीं है।

पवनें उत्तर ध्रुवीय हिम के ढेर को समुद्र में धीमी चाल से एक वृत्त के भीतर बहाती हैं। इसके विपरीत तेज आँधियों से उत्तर ध्रुवीय पठार की स्थिर बर्फ पर लहरियाँ पड़ती जाती हैं और वहाँ बर्फ़ इस तरह उड़ने लगती है, मानो रेगिस्तान की रेती हो। उत्तर में बर्फ के बहाव को देखकर तत्कालीन पवनों तथा धाराओं की दिशा बताई जा सकती है। दक्षिण में तत्कालीन हवा का रुख बर्फ पर पड़ी लहरियों से बताया जा सकता है। उत्तर ध्रुवीय हिम दक्षिण ध्रुवीय हिम से अधिक गरम और उसकी अपेक्षा अधिक आसानी से गलने और फिर जमने वाली होती है। और क्योंकि यह समुद्री बर्फ है, इसलिए

इसकी बनावट भी शुष्क दक्षिण ध्रुवाय हिम से भिन्न है।

दोनों में भेद और भी हैं। उत्तरी ध्रुव-प्रदेश के ठण्डे, किंतु उवर किनारों पर लोग रहते रहे हैं। इसके विपरीत दक्षिण ध्रुवीय जल के पृथ्वी पर सबसे समृद्ध होने पर भी दक्षिण ध्रुव-प्रदेश की तीव्र पवनों वाली बर्फ पर मनुष्य का आत्म-पोषी जीवन लगभग असम्भव है।

द० ध्रुव प्रदेश ऐसा उजाड़ है कि समुद्र से खुराक हासिल करने वाले कुछ पक्षियों तथा जलचरों के सिवा वहाँ केवल कुछ ही कीट—जिनमें एक पंखहीन मच्छर भी शामिल है—और कुछ आदिम पादप ही मिल पाए हैं। यह अभी तक कोई पता नहीं लगा पाया है कि यह मच्छर खुराक कैसे प्राप्त करता है। जीवन के इन कतरों में एक अजीब शक्ति है, क्योंकि गरमियों में भी यहाँ का ताप कदाचित् ही हिमांक के ऊपर जाता है। फिर भी जहाँ-कहीं भी जमीन का ज़रा-सा चकता भी नज़र आता है, उस पर ६० अलग-अलग तरह की काइयाँ मिली हैं और गरमियों में कुछ हिमरहित तटों पर दो फल वाले पौधे उगते हैं। १०,००० फुट की ऊँचाई पर पर्वतों की चोटियों से चिपके सैकड़ों प्रजातियों के लाइकेन (निम्न वर्ग का एक पादप) हैं।

ये लाइकेन उन खनिजों से पोषण प्राप्त करते हैं, जिन्हें वे चट्टानों से घोल लेते हैं। इन्हें धूप कम ही चाहिए और पानी तो लगभग बिलकुल ही नहीं। वर्षों तक ये निष्क्रिय और शुष्क रह सकते हैं। लाइकेनों के बारे में एक वनस्पति-वैज्ञानिक ने कहा है, "वे मरने से इनकार करते हैं।" इन पौधों में से कुछ तो दक्षिण ध्रुव-प्रदेश की चोटियों पर सैकड़ों साल से चिपके हुए हैं और जैसे-जैसे बर्फ़ नीचे बैठती जाती है, ये अपने प्रदेशों को फैलाकर उसके साथ-साथ नीचे फैलते जाते हैं। इस तरह बर्फ़ में तबदीली का पता चलाने का यह एक और तरीका है। अंभूव के वैज्ञानिक लाइकेनों का विशेष अध्ययन करके बर्फ़ के फैलने और सिकुड़ने की कहानी उनकी जबानी जानने की कोशिश कर रहे हैं।

इसके विपरीत उत्तर ध्रुव-प्रदेश में जीवन का इतना बाहुल्य है

कि भूमि पर पाए जाने वाले पौधों तथा जन्तुओं की प्रजातियों की गणना हजारों में और इन प्रजातियों में से प्रत्येक की संख्या करोड़ों में की जाती है। गरमियों में मच्छर इतने बड़े तथा इतने अधिक होते हैं कि वे वहाँ के निवासी एस्कीमो लोगों को पागल कर देते हैं।

उत्तरी ध्रुव-प्रदेश के तट पर मनुष्य हजारों वर्षों से—हिमयुग के चरम के समय भी—रहता आया है। जैसे-जैसे वर्फ़ कम होती गई, पृथ्वी के चरम हिस्सों में कृषि विकसित होती गई, लेकिन उत्तर ध्रुववासी शिकारी ही रहा।

उत्तर ध्रुव-प्रदेश के तट पर रहने वाला एस्कीमो प्रस्तरयुगीन प्राणी था। उसके औजार प्रस्तर-युग के औजार थे। तथापि उसकी निपुणताएँ और उसका ज्ञान असामान्य थे। वह उत्तर के रूपों को भली भाँति जान गया था। वहाँ का बुनियादी रूप दो मौसमों का है—एक रोशनी का और दूसरा आँधियों वाले 'अंधेरे' का।

इन दो मौसमों का यह मतलब नहीं कि वहाँ छः महीने गरमियों के प्रकाश के और छः महीने सरदियों की रात के होते हैं। उत्तर ध्रुव तक पर, जहाँ रात्रि सबसे लम्बी होती है, लगातार अंधेरे के सिर्फ़ अस्सी दिन ही होते हैं। ज्यादा दक्षिण में, जहाँ एस्कीमो लोग रहते हैं, सूर्य वर्ष में १६ सप्ताह क्षितिज के नीचे रहता है, लेकिन इस अवधि का एक-तिहाई सांध्य-प्रकाश का होता है—पूर्ण अंधकार का नहीं।

सारे परिवार के एक सुखद संयोग से उत्तर ध्रुव-प्रदेश तथा दक्षिण ध्रुव-प्रदेश में चन्द्रमा सरदियों में अधिक देर तक और अधिक तेजी के साथ चमकता है। ऐसा चन्द्रमा की कक्षा तथा पृथ्वी के झुकाव के कारण होता है। पूर्ण चन्द्र सूर्य की अपेक्षा केवल १/५०,००० प्रकाश ही देता है, लेकिन उसकी रोशनी लगभग उतनी ही उपयोगी है, क्योंकि सफेद हिम उसे परावर्तित कर देती है और ध्रुव-प्रदेशों की साफ़ हवा दृश्यता को क्षितिज तक सम्भव बना देती है। अनुभवी वायुयान-चालक आधे चाँद की रोशनी में भी वर्फ़ पर उतनी ही सुरक्षितता से उतर सकते हैं जितनी कि दिन की रोशनी में;

और साथ ही इसमें यह भी अच्छाई रहती है कि दिन की चौंधियाने वाली रोशनी नहीं होती। चन्द्रमा का यह प्रकाश केवल वहीं जज़्ब होता या छाया डालता है जहाँ खुला पानी या पेड़ों के झुंड या पहाड़ हों।

एस्कीमो सूर्य, चन्द्रमा, बर्फ़ तथा उ० ध्रुव-प्रदेश के पशुओं के मौसमी रूपों को जानता था। वह सम्भवतः इन रूपों की पगडण्डी पर कोई २००० साल पहले, साइबेरिया से बेरिंग जलडमरूमध्य को पार करता एलास्का, फिर कनाडा और फिर उ० ध्रुव महासागर की पतली पट्टी को पार करता ग्रीनलैंड तक आया था। एस्कीमो अपने ज्ञान की पगडण्डी पर, जहाँ तक वह उसे ले जा सकती थी, चलता चला गया।

पुरातत्वविदों ने पता लगाया है कि एस्कीमो लोगों से भी पहले मनुष्य साइबेरिया से एलास्का की पतली पगडण्डी पर आते-जाते थे। एक दल कोई ९,००० साल पहले आया था जब बर्फ़ीली चादर पिघल रही थी। अन्य दल ३,५०० और ६,००० साल पहले के बीच आये। लेकिन आश्चर्य की जो बात है, वह यह कि इनमें से कुछ लोगों ने इसे हिमयुग के चरम पर पार किया था—कोई १२,००० साल पहले, जबकि बर्फ़ अधिकांश उत्तर अमरीकी महाद्वीप को ढके हुए थी।

एक सवाल, जिसका अंभूव के वैज्ञानिक उत्तर देना चाहते है, यह है कि क्या तब उ० ध्रुव महासागर अधिक गरम था जो लोग एस्कीमो लोगों से पहले आये थे? वे अपने परिचित पशुओं और जल-वायु के पग-चिह्नों पर चलकर आये थे और इन पशुओं के अवशेष यह इंगित करते हैं कि तब का जलवायु अब से अधिक गरम था। क्या सागर-तट और सागर उस समय अधिक गरम थे जबकि भूमि बर्फ़ से ढकी हुई थी? और क्या जैसे-जैसे ज़मीन गरम होती गई, समुद्र ठण्डे होते गए? क्या जलवायुविक परिवर्तनों से अलास्का होकर

अमरीका में अलग-अलग तरह के लोग आये और क्या बाद में जलवायुविक परिवर्तनों ने आदमी को 'जमाकर' भगा दिया ?

ये सवाल भू-भौतिकीविद के लिए महत्वपूर्ण हैं।

सैकड़ों साल पहले एस्कीमो लोग पूर्वी ग्रीनलैंड पहुँचे और कोई ५० साल पहले तक वे वहाँ अच्छी तरह रहते रहे। तभी पानी में अब तक बहुतायत में पाई जाने वाली मछलियाँ गायब होने लगीं। मछलियाँ गईं, तो सील भी जाती रही और एस्कीमो लोगों के सामने अकाल आ खड़ा हुआ।

पूर्वी ग्रीनलैंड के एस्कीमो मरने लगे। अभी तक समृद्ध पश्चिमी तट पर गन्दी अफ़वाहें पहुँचने लगीं—एक गाँव के १९ आदमियों में से १७ भूख से मर गए। बच रहने वाले दोनों लोग सरदियों-भर अपने रिश्तेदारों को खाकर जिन्दा रहे। पश्चिमी ग्रीनलैंड के एस्कीमो लोगों ने पूर्वी ग्रीनलैंड के लोगों के लिए दशहरा में आकर नया नाम निकाला—**इनूकतामारासात**, अर्थात् मनुष्यभक्षी। कत्ल और परिवारों के बीच खूनी झगड़े आम हो गए। बूढे और बीमार लोग, जो काम न कर सकते थे मरने के लिए छोड़ दिये गए। सूर्य, चन्द्रमा, बर्फ़ तथा पशुओं के रूपों का ज्ञान अब किस काम का था ?

कोई पच्चीस बरस पहले गोरे लोग पूर्वी ग्रीनलैंड के इस इलाके में आये और साथ अपना धर्म, रेडियो और बन्दूकें लाये। उनके पीछे-पीछे पुरातत्वविद, वनस्पतिवैज्ञानिक, भूगर्भशास्त्री, भू-भौतिकीविद और सागर-वैज्ञानिक भी पहुँचे। सागर-वैज्ञानिकों ने यह जानने के लिए पानी की परीक्षा की कि मछलियाँ और सीलें क्यों चली गई थीं। भूगर्भशास्त्रियों ने धरती को खोदा और मालूम किया कि कोई दस लाख या ज़्यादा साल पहले द० ध्रुव-प्रदेश की तरह ग्रीनलैंड भी प्रचुर उष्णकटिबन्धीय वनस्पति से ढका हुआ था। युगों पहले पृथ्वी पर से विलुप्त हो चुके उष्णकटिबन्धीय थल तथा जल-जन्तु वहाँ रहते थे। वनस्पति-वैज्ञानिकों ने ग्रीनलैंड की मिट्टी की जाँच की और यह जानकर वे आश्चर्य में पड़ गए कि कुछ फसलें—मिसाल के तौर पर

आलू—उ० ध्रुव की निरन्तर धूप वाले अल्पकालीन ग्रीष्म में सम-शीतोष्ण प्रदेशों की अपेक्षा तेजी से उगती हैं। भूगर्भशास्त्रियों को पहाड़ों पर धातु-अयस्कों की प्राप्ति हुई और अब डेनमार्क, जिसका ग्रीनलैंड पर अधिकार है, वहाँ खदानें बनाने की योजना बना रहा है।

एक पीढ़ी के भीतर ही एस्कीमो प्रस्तर-युग से विद्युत् युग में आ गया। आज वह वायु-दावमापी और तापमापी का उपयोग करता है और रेडियो पर मौसम की भविष्यवाणी सुनता है। बाहर जाकर वह इनको आकाश के अपने पुराने ज्ञान के साथ कसता है। ग्रीनलैंड के कुछ भागों में उसने खेती-बाड़ी शुरू करके उस भूमि का उपयोग करना शुरू कर दिया है, जिस पर किसी जमाने में प्रारम्भिक वाइकिंग लोगों ने कृषि की थी।

एंगमाग्स्सालिक में, जहाँ पूर्वी ग्रीनलैंड के एस्कीमो लगभग खतम हो गए थे, ध्रुवीय तथा उत्तर ध्रुव-प्रदेश के घटनाक्रम का अध्ययन करने के लिए अंभूव ने अपना एक स्टेशन बना रखा है। इसके अलावा कनाडा तथा अलास्का में उ० ध्रुवीय तट पर रहने वाले एस्कीमो आजकल अति अद्यतन 'ड्यू' (डी-ई-डब्ल्यू—डिसटेंट अरली वार्निंग—हमले की आगाही करने की प्रणाली) का निर्माण देख रहे हैं जो उत्तर अमरीकी महाद्वीप का बीसवीं सदी का फौजी सीमान्त है। उत्तर में रहने की समस्याओं का नये सिरे से सामना किया जा रहा है। आर्कटिक की ओर इस आधुनिक 'निष्क्रमण' से सम्बन्धित बड़ी वैज्ञानिक समस्याओं में से कई पर अंभूव एक बड़ा हमला शुरू कर रहा है।

अंभूव के भू-भौतिकीविद उस सवाल का जवाब ढूँढ रहे हैं, जिसने पूर्वी ग्रीनलैंड के एस्कीमो को परेशान किया था और जो आदमी को शुरू से परेशान करता आया है। मनुष्य के जीवन पर इतना गहरा असर डालने वाली बड़ी-छोटी मौसमी तबदीलियों का क्या कारण है।

बर्फ़ का बनना इन परिवर्तनों में सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण है। मनुष्य को पृथ्वी पर आये जो दस लाख बरस के करीब गुज़रे हैं, उन

में चार हिमयुग आ-जा चुके हैं।

ऐतिहासिक काल के भीतर ही द० ध्रुव-प्रदेश की बरफ़ १००० फुट तक सिकुड़ चुकी है। पिछले ५० साल के भीतर दुनिया के कई छोटे-छोटे हिमनद गायब हो गए हैं। अलास्का में कुछ हिमनदों का हिमतल २०० फुट नीचा हो गया है। आल्प्स पर्वतों में गत १०० वर्षों में बड़े-बड़े हिमनदों में २५ प्रतिशत तक की कमी आई है। यह अनुमान लगाया गया है कि गत एक शताब्दी में संसार के हिमनदों का आयतन १० प्रतिशत कम हो गया है। ग्रीनलैंड के हिममुकुट के छोर तक धीरे-धीरे पीछे हटते रहे हैं। क्यों? अंभूव के वैज्ञानिक इसी सवाल का जवाब देने की कोशिश कर रहे हैं।

बर्फ़ का फैलना-घटना छोटे और बड़े—दोनों ही चक्रों में होता दीखता है। बर्फ़ की बड़ी चादर ने १०-११ हजार साल पहले पीछे हटना शुरू किया था, जबकि पृथ्वी अब की अपेक्षा कुछ गरम थी। फिर, कोई २,५०० साल हुए, बर्फ़ ने फिर फैलना शुरू किया। इसे हिमनद वैज्ञानिकों ने 'लघु हिम युग' का नाम दिया है। १८-१९वीं सदी तक इसकी प्रगति जारी रही। आल्प्स पर्वतों में लोगों ने इस 'लघु हिमयुग' की वृद्धि का अध्ययन किया और इसे मापा।

'लघु हिमयुग' जिस तरह अचानक आया था, उसी तरह वह उतार पर आने लगा और बर्फ़ पीछे हटने लगी। आज इस बात के कुछ असार हैं कि कुछ जगहों पर हिमनद फिर बढ़ रहे हैं। उत्तर-पश्चिमी संयुक्त राज्य अमरीका में हिमनदों ने बढ़ना शुरू कर दिया है। यह घटना स्थानीय ही है या ज़्यादा बड़ी प्रवृत्ति की परिचायक है, इस बात को हम अभी नहीं जानते। एक समन्वयित विश्वव्यापी प्रयास से ही इस तरह की वृद्धि तथा क्षय का रूप निर्धारित किया जा सकता है और इसके कारण जानने की कोशिश की जा सकती है।

बर्फ़ के आने-जाने की व्याख्या करने के लिए इस समय दो दर्जन से ज़्यादा सिद्धान्त हैं। यह भू-भौतिकीविदों को सबसे ज़्यादा उलझन

में डालने वाले सवालों में एक है। एक सिद्धान्त का कहना यह है कि पृथ्वी ने अपनी अक्ष बदल ली होगी, जिससे ग्रीनलैंड तथा एंटार्कटिका ठण्डे प्रदेशों में चले गए हैं। दूसरा सिद्धान्त यह कहता है कि पिछले लाखों वर्षों में पहाड़ों ने ऊँचे होकर उन हवाओं के रूप को रोक तथा बदल दिया है, जो कभी स्वतन्त्रतापूर्वक बहती हुई पृथ्वी को गरमाया करती थीं। तीसरे का कहना यह है कि ज्वालामुखीय विस्फोटों से समय-समय पर उठे सूक्ष्म कणों के बादल सूर्य के प्रकाश का रास्ता रोककर बर्फ़ के पलड़े को भारी कर देते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि सूर्य के प्रकाश को धूल नहीं रोकती, वरन् इसका कारण अधिक बादलों का बनना है। औरों का कहना यह है कि खुद वायुमण्डल की ही संरचना बदल रही है—औद्योगिक कल-कारखाने हवा में ज्यादा कार्बन डाइ आक्साइड छोड़ रहे हैं, जिससे वह ज्यादा गरमी जज़्ब कर लेती है और पृथ्वी तक कम गरमी को पहुँचने देती है। एक और सिद्धान्त का यह कथन है कि सूर्य की शक्ति में तनिक-सा भी परिवर्तन बर्फ़ के होने और न होने के नाजुक संतुलन को बदल देता है। कुछ वैज्ञानिकों का ख़याल है कि पृथ्वी, जो अपनी कक्ष में अनियमितता से परिभ्रमण करती है, के सूर्य से दूर जाने की अपेक्षा कुछ निकट आने से बर्फ़ बनती है। और लोग इसका दोष सूर्य-कलंकों पर, जो समय-समय पर पृथ्वी की तरफ उच्च ऊर्जायुक्त तरंगें तथा कण भेजते हैं, मढ़ते हैं। एक अजीब सिद्धान्त यह मत भी प्रतिपादित करता है कि हिम-युग तब आता है, जब पृथ्वी कुछ अधिक गरम हो जाती है, जिससे अधिक बादल बनते हैं और ठण्डे प्रदेशों में अधिक हिम-पात होता है।

इसी तरह, तरह-तरह के सिद्धान्त आते-जाते हैं। सभी सिद्धान्तों का सम्बन्ध सूर्य की ऊर्जा, और उसके प्रकाश के अवशोषण, वर्धन या अवरोधन से ही है। हजारों माप लेकर भू-भौतिकीविद हर सिद्धान्त की प्रामाणिकता आँकने की कोशिश कर रहे हैं।

सबसे नया सिद्धान्त सबसे रोचक सिद्धान्तों में है। इसका कथन है कि अकेली चीज़ जो बदलती है वह महासागरों का चक्रण है।

जब उ० ध्रुव महासागर पर हिम-राशि तैरती है—जैसा कि आज है—तो पानी ठण्डा रहता है। दक्षिण की ओर, उत्तर अटलांटिक का पानी अपेक्षाकृत गरम होता है और इसके फलस्वरूप महाद्वीपों की जलवायु अधिक उष्ण रहती है और पृथ्वी पर स्थित हिममुकुट तथा हिमनद पिघलते जाते हैं। उनके पिघलने के साथ-साथ समुद्र धीरे-धीरे चढ़ने लगते हैं। मौजूदा स्वरूप यही नजर आता है।

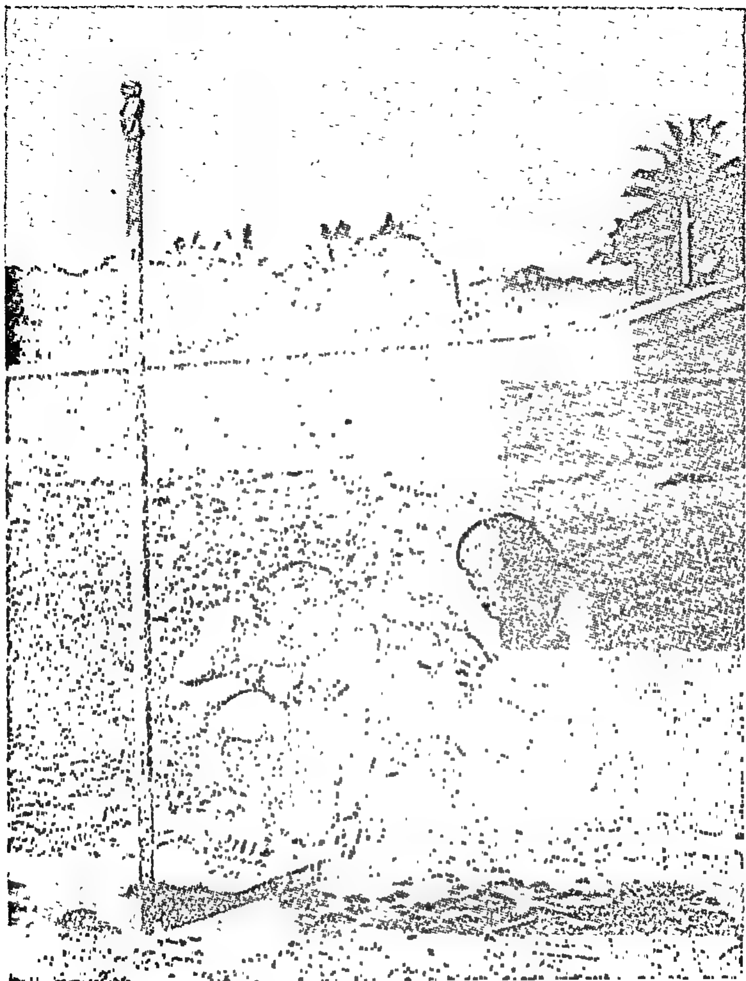
लेकिन पिघलती वर्फ़ के साथ-साथ जैसे-जैसे समुद्र चढ़ते जाते हैं, अटलांटिक का गरम पानी सागरतल की विभाजक कूबड़ को पार कर आर्कटिक सागर में गिरने लगता है और तैरती वर्फ़ को गलाना शुरू कर देता है। यह भी आज होता नजर आता है।

नूतनतम सिद्धान्त का दावा है कि हिमयुग तब आरम्भ होता है कि जब उ० ध्रुव महासागर की वर्फ़ पिघल चुकी होती है, क्योंकि ऐसे वक्तों पर हाल ही में गरम हुआ पानी तेजी से वाष्पित होकर गहरे बादल बनाने लगता है। उत्तर की समस्त भूमियों पर हिमपात भारी हो जाता है। सैकड़ों वर्षों के दौरान वर्फ़ मोटी हो जाती है और इकट्ठी होकर वर्फ़ की चादरें बना देती है।

अब प्रक्रिया अपनी पुनरावृत्ति करना शुरू करती है। पहले का गरम अटलांटिक-जल उ० ध्रुवीय जल के साथ मिलकर ठण्डा हो जाता है। महाद्वीपों पर जैसे-जैसे वर्फ़ जमती जाती है, समुद्रों का पानी कम होता जाता है, जब समुद्र काफी नीचे गिर चुके होते हैं, तो अटलांटिक-जल उ० ध्रुवीय जल से अलग हो जाता है और धीरे-धीरे गरम होने लगता है। अटलांटिक से कटकर उत्तरी ध्रुवीय जल ठण्डा होने और जमने लगता है। उ० ध्रुव सागर पर फिर हिम-राशि जमने लगती है।

और हम फिर वहीं पहुँच जाते हैं, जहाँ से हमने बात शुरू की थी। अटलांटिक गरम है, उ० ध्रुव ठण्डा और महाद्वीपों पर हिम घट रही है।

इसका मतलब यह हुआ कि हिमयुग से उ० ध्रुव अधिक



चित्र १—बोर्नियो के केन्याह आदिम जाति के लोग सूर्य की दोपहर की छाया का अन्य दिनों की छाया से मिलान करने के लिए माप रहे हैं। जब छाया छोटी होने लगती है तो पौदारोपण का समय निकट आ जाता है।

चित्र २—कई हिमनदियाँ मिलकर अलास्का का भव्य बर्नार्ड हिमनद बनाती हैं। काली धारियाँ घाटियों की चट्टानों तथा रेत से बनी हैं।

चित्र ३—बैरो पाइंट, अलास्का के निकट समुद्री बर्फ़ पर रखा ज्वारमापी उ० ध्रुव महासागर के असामान्य ज्वारों को मापता है।

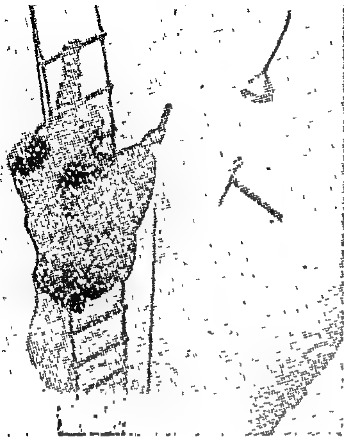
चित्र ४—मार्च, १९५७ का त्सुनामी तरंग ओआहू द्वीप के अन्तःप्रदेश को रौंद रही है





चित्र ५ (नीचे बाईं ओर)—समुद्र की विभिन्न गहराइयों से पानी के नमूने तथा ताप प्राप्त करने के लिए एक नानसेन बोतल तार से बांधी जा रही है।

चित्र ६ (नीचे दाईं ओर)—भू-गर्भ से प्रवाहित होने वाली ऊष्मा को नापने के लिए सागर-तल में धँसाया जाने वाला एक उपकरण तैयार हो रहा है।



चित्र ७—एकहिमनद-वैज्ञानिक अलास्का के टाकू हिमनद से हर छः इंच पर से हिम-क्रोड के नमूने ले रहा है। सीढ़ी के दोनों ओर के साइफन हिम का गलन मापने के लिए पानी एकत्र करते हैं।

चित्र ८—एक हिमनद-वैज्ञानिक निम्न लेमन हिमनद से क्रोड ले रहा है।

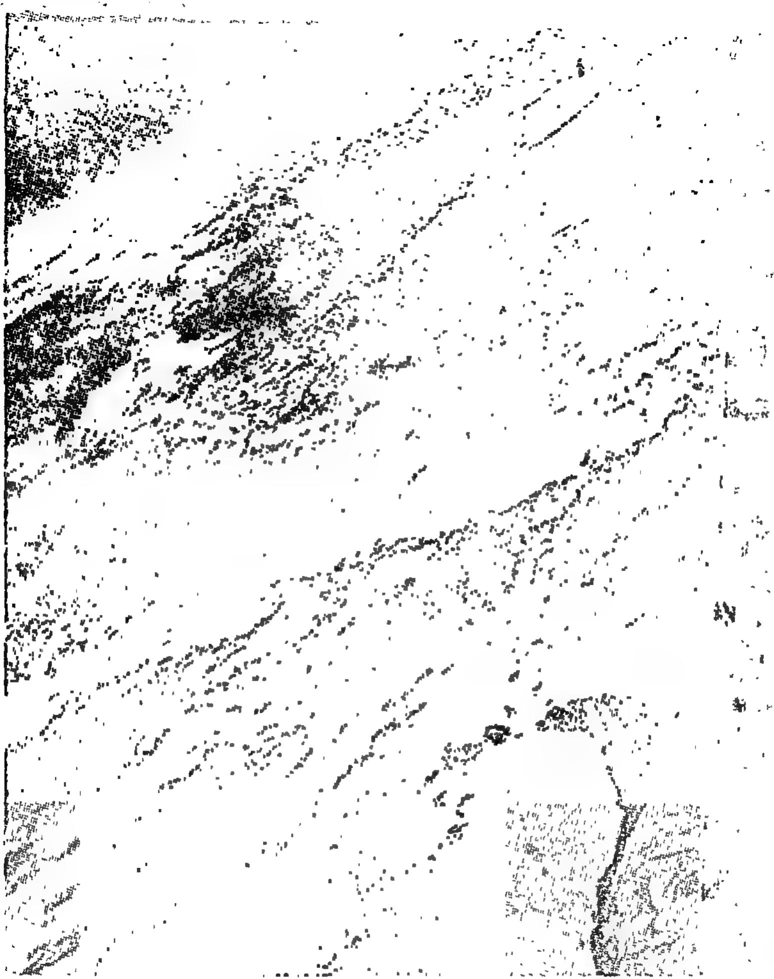
चित्र ९—टाकू हिमनद की पवन की जाँच करने के लिए एक मौसम-वैज्ञानिक पवनमापी का उपयोग कर रहा है।



चित्र १०—अंभूव का एक आस्ट्रियाई हिमनद-वैज्ञानिक विकिरण आवरणों से ढके तापमापियों की जाँच कर रहा है। ये तापमापी द० ध्रुव पर विभिन्न ऊँचाइयों पर ताप लेते हैं।



त्र ११—ऋतुओं का ऊपर से दर्शन। न्यूमेक्सिको पर एक रॉकेट कैमरा द्वारा
न्त में पृथ्वी के मेघावरण का लिया चित्र। क्षितिज लगभग ७५० मील दूर है।



चित्र १२—उसी कोण और ऊँचाई से रॉकेट द्वारा ग्रीष्म में लिया पृथ्वी का चित्र
दाहिनी ओर दिखाई देने वाली काली झील एक प्राचीन लावातल है।

चित्र १३—दक्षिण गोलार्ध में पवनों, ताप, आर्द्रता तथा वायुदाब मापने के लिए एक आस्ट्रेलियाई रेडियोसोंदे गुब्बारा ऊपर भेजा जा रहा है।



चित्र १४—द० ध्रुव प्रदेश में एक मौसम-वैज्ञानिक पवनमापी द्वारा पवन की परीक्षा कर रहा है।

गरम होगा। इस सिद्धान्त का जन्म अटलांटिक तथा उ० ध्रुव महासागरों से निकाले गहन सागर-क्रोडों के विश्लेषण से हुआ था। ये क्रोड हिम-युग के दौरान उष्णतर उ० ध्रुव प्रदेश और शीतलतर अटलांटिक दरशाते नजर आते हैं। हो सकता है कि यह सिद्धान्त इस बात का समाधान कर दे कि हिम-युग के दौरान प्रारम्भिक मनुष्य क्योंकर साइबेरिया से अलास्का होकर उत्तर अमरीकी महाद्वीप में आ सका। एस्कीमो लोगों के पहले आने वाले शिकारी समुद्रों तथा तटों के साथ साथ उष्णता के स्वरूपों के पदचिह्नों पर चलकर आ सकते थे। जब उ० ध्रुव प्रदेश फिर ठण्डा हुआ और वर्फ़ पिघलने लगी, ठंडे समुद्र के स्वरूपों पर चलकर एस्कीमो लोग आ गए।

इस सिद्धान्त की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसके लिए बहुत बड़ी तहस-नहस नहीं चाहिए। गरम होते और ठंडे होते पानी का हल्का आगे-पीछे होना ही काफी है। यह शायद इस बात को समझा सके कि पृथ्वी का वर्तमान 'गरमाना' उत्तर अटलांटिक के आस-पास के प्रदेशों तक ही सीमित क्यों नजर आता है, जब कि उत्तर अमरीका का प्रशांत-सागर-तट पिछले ५० वर्षों के दौरान कुछ ठंडा होता लगता है। सारी बात यही हो या न हो, यह सिद्धान्त जलवायु को समझने की एक नई कुञ्जी अवश्य उपलब्ध करता है। यह इस बात का परिचायक है कि समुद्र, उनका चक्रण तथा उनकी सतहें अंभूव के भू-भौतिकीविदों के लिए कितनी अर्थगर्भित हैं। महत्त्वपूर्ण होने पर भी वर्फ़ पृथ्वी के समुद्रों की एक अल्पांश ही है। हिमयुगों के चरम पर भी तमाम बर्फ़ में कभी दुनिया के कुल पानी के ४ प्रतिशत से अधिक न था।

ग्यारह राष्ट्रों—अर्जेन्टाइन, आस्ट्रेलिया, चिली, फ्रान्स, ग्रेटब्रिटेन, जापान, न्यूज़ीलेंड, नार्वे, सोवियत संघ, दक्षिण अमरीका संघ तथा संयुक्त अमरीका—के वैज्ञानिक द० ध्रुव प्रदेश में काम कर रहे हैं।

दो राष्ट्रों—अमरीका तथा सोवियत संघ—के वैज्ञानिक उ० ध्रुव सागर की हिम-राशि पर हैं। उन्होंने समुद्री वर्फ़ पर एक चपटी या

उनसे भी ऊपर से तैरते केन्द्र कायम कर रखे हैं। वे लोग हिम का परीक्षण तथा मापन कर रहे हैं। मौसम तथा उ० ध्रुव प्रदेश जल के चक्रण का अध्ययन कर रहे हैं, सभी गहराइयों के नमूने ले रहे हैं और उ० ध्रुवीय तल की अधिकतम संभव जगहों से कोड़ें निकाल रहे हैं। १९५७ में एक तैरते हिमद्वीप पर स्थित अमरीका के वैज्ञानिकों ने उ० ध्रुवीय महासागर के तल में एक सागरगर्भित पर्वत-श्रृंखला का पता चलाया।

उ० ध्रुवीय समुद्र के गरम होने में सोवियत संघ की विशेष दिलचस्पी है। उ० ध्रुवीय महासागर सोवियत संघ की मुख्य तटीय रेखा और मुख्य जल संहति है। सदियों से साल के अधिक भाग में यह जमा रहता आया है। अगर यह गरम हो जाए, तो इसमें बारहों मास जहाज़रानी की जा सकेगी। इससे सोवियत संघ को एक हिम-मुक्त उत्तरी जलमार्ग मिल जाएगा। दुनिया को इससे कनाडा के लिए एक सुगम बारहमासी 'उत्तर-पश्चिमी रास्ता' मिल जाएगा।

इसलिए सोवियत संघ ही पहला राष्ट्र था, जिसने उ० ध्रुव की तैरती बर्फ़ पर बारहों मास रहने क लिए अभियान-दल भेजे। इन अनुसंधान दलों ने मालूम किया है कि आर्कटिक महासागर की बर्फ तथा ऊपर के ठंडे पानी के नीचे उष्ण अटलांटिक जल है।

प्रत्यक्षतः उ० ध्रुव सागर गरम होता जा रहा है। यह भूमि पर बर्फ की वापसी का पूर्वाभास है। यह कोई स्थायी प्रवृत्ति है, या अल्पकालिक घटना ही है? भू-भौतिकीविद इस बात को जानना चाहेंगे।

फिलहाल, हमें दुनिया की बर्फ के साथ ही रहना और उसे समझने की कोशिश करनी चाहिए।

जब समुद्री जहाज़ों के कप्तानों ने अपने लकड़ी के बने जहाज़ों को बर्फ में पहले-पहल घुसाया, तो वे यह पाकर हैरान रह गए कि एक मील से भी ज़्यादा फासले से आपस में बातचीत की जा सकती है। द० ध्रुव प्रदेश में जहाँ अंभूव ने भारी ट्रैक्टर तथा यंत्र भेजे हैं,

उनके इंजनों की गरज मीलों दूर से सुनी जा सकती है, मानो वे कुछ फुट की ही दूरी पर हों। जूते के नीचे आई वर्फ की चरमराहट एक मील की दूरी पर सुनी जा सकती है। यह एक अद्भुत अनुभूति है।

ऐसा तभी होता है, जब ताप शून्य से बहुत नीचा होता है और इसका कारण एक ताप 'पथ' या स्तर का बन जाना है। जब बर्फ के निकट हवा की सबसे नीचे की परत बहुत ही ज़्यादा ठंडी हो जाती है, तो उस पर कभी-कभी एक गरम 'प्रतिलोम परत' टिक जाती है। यह ध्वनि को ऊपर नहीं जाने देती। समुद्र की 'सोफार' परत की भाँति ध्वनि अब नीचे की सपाट वर्फ और ऊपर की गरम हवा से टकराती क्षितिज की दिशा में चलती है। यह गरम हवा ऊपर उड़ते हवाई जहाज़ की आवाज का नीचे पहुँचना भी रोक सकती है। ध्रुवीय हिम पर खामोशी और आवाजों की एक निराली ही दुनिया है।

वायु में ताप तथा घनत्व के अन्तरों के कारण मरीचिकाएँ भी होती हैं। सूर्य के कोण के कारण प्रकाश वायु की हर परत में ज़रा अलग रास्ते पर चलता है। इससे दर्शक को कभी-कभी दुहरे प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं, जिससे क्षितिज से नीचे की वस्तुएँ क्षितिज के बहुत ऊपर या पास दिखाई देने लगती हैं। इस शताब्दी के आरम्भ में जब पेरी उत्तर ध्रुव पहुँचने की कोशिश कर रहे थे, तो उन्होंने दूर एक पर्वत-शृंखला के दिखाई देने का उल्लेख किया है। उन्होंने उसकी सही स्थिति भी बताई थी। ये पहाड़ बाद में अन्य अन्वेषकों को भी दिखाई दिए हैं फिर भी किसी को ये कभी मिले नहीं। प्रत्यक्ष है कि ये मरीचिकाएँ ही रहे होंगे।

अंभुव के दौरान उ० ध्रुव तथा द० ध्रुव प्रदेशों में उड़ने वाले चालकों सहित सभी वायुयानचालकों को एक प्रकाशीय घटना से बेहद डर लगता है। यह घटना 'धौलियाए जाने' की है। और यह माना जाता है कि यह तब होती है, जब सूर्य का प्रकाश बर्फ़ से परावर्तित होकर हवा में चला जाता है और बर्फ़, वायु तथा आकाश

को समान उज्ज्वलता प्रदान कर देता है। धरती तथा आकाश में कोई प्रकट अन्तर नहीं रहता -- न छायाएँ होती हैं, न क्षितिज। यान उड़ाते चालक को ऐसा अनुभव होता है, मानो उसका हवाई जहाज़ स्थिर धवलता में लटका हुआ है।• और अगर वह इस डरावने 'शून्य' प्रकाश में जहाज़ उतारने की कोशिश करे, तो उसके टकरा जाने की आशंका रहती है. अंभूव के दौरान-वैज्ञानिक दृश्यता के इस भयावह अभाव को दूर करने के लिए विशेष प्रयास कर रहे हैं।

अकेलापन, ठंड, खामोशी, आवाज़ें, गरमियों का लम्बा उजियाला और लम्बा अँधेरा, जाड़ा - इन सबका आदमियों पर बड़ा भारी असर पड़ता है। मनुष्य क्योंकि अंभूव के दौरान उच्च द० ध्रुव महाद्वीप पर पहली बार सरदियां काट रहे हैं, उनकी विशेष मनो-वैज्ञानिक तथा डॉक्टरी जाँच की जाएगी।

समस्याएँ कभी बड़ी गहन और कभी बड़ी हास्यकर होती हैं। ठंड में अपनी ऊर्जा के वर्धित उपयोग के कारण अंभूव के कर्मचारियों का वज़न गिरता रहा है और शुष्क हवा में सोना वे मुश्किल पा रहे हैं। द० ध्रुव प्रदेश की इस निद्राहीनता को उन्होंने 'बड़ी आँख' का नाम दिया है। पहले अन्वेषकों ने अनुभव किया था कि ध्रुवीय शीत में दन्त-पीड़ा असामान्यरूपेण बार-बार और ज्यादा तकलीफ़ की होती है। साधारण-से-साधारण दन्त-छिद्र भी जान-लेवा हो जाता था। उनमें भरा धात्विक चूर्ण संकुचित होकर निकल आता था, भीतर भरा सोना इतना ठंडा हो जाता था कि आदमी दर्द के मारे चीखने लगता था। इसलिए अंभूव के दौरान ध्रुवीय दन्त-चिकित्सा पर एक विशेष कार्यक्रम हो रहा है।

हिम-मुकुट और बर्फ़ीली चादरों का अस्तित्व पृथ्वी के इतिहास के एक प्रतिशत से भी कम समय से ही है, फिर भी, इस अल्पकालिक अवधि में ही मनुष्य जाति का पूरा अस्तित्व आ जाता है। मनुष्य आरम्भ से ही हिमयुगों के घेरों पर रहता आया है। उसने अब बर्फ़ पर रहना और उसके रूपों तथा रहस्यों का उद्घाटन करना शुरू कर दिया है।

: ५ :

वायुमंडल

रंगहीन, पारदर्शक, हर एक अन्य से भिन्न और अपने निजी 'स्पर्श' और गंधवाली पवनों से मनुष्य प्रारम्भिक काल से ही परिचित रहा है। एस्कीमो लोग, पोलीनीशियाई, अरब, यूनानी, आस्ट्रेलियाई मैदानों के आदिवासी, अमरीकी रेड इंडियन—सभी पवनों से, उनके मौसमों से, और हिमपात, वर्षा, रेत या सूखा के उनके संभाव्य परिणामों से परिचित थे।

प्राचीन 'पवन फूल' अथवा प्रारम्भिक नाविकों द्वारा प्रयुक्त रेखाचित्र सभी स्थानीय पवनों को उनके बहने की दिशा से दरशाता था। समुंद्री पवनों तथा पवन-क्षेत्रों ने अपने निजी नाम प्राप्त कर लिये थे—व्यापार-पवनें, पछवैया और पुरवैया, अलास्काई या एल्यूशियाई बिल्लीवाँ (बवंडर), शांत या निर्वात क्षेत्र, समशीतोष्ण कटिबन्ध के ऊपर के मुश्किलों-भरे अक्षांशों पर चलने वाली हलकी अवरोधी पवनें और दक्षिणी गोलार्ध की गरजती चालीसी, चिल्लाती पचासी और चीखती साठी पवनें।

हर क्षेत्र और हर मौसम की पवनों के सैकड़ों नाम हैं। फिर भी अभी तक पवनों तथा संसार की पवन-प्रणालियों की समझ अपूर्ण ही है। अंभूव की सबसे कठिन समस्याओं में से एक उच्चस्तरीय अस्थिर पवन और निर्बंध अस्थिर पवनों को समझना है।

पृथ्वी के गतिशील वायुमंडल को समझने की आवश्यकता द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जरूरी हो गई। इतिहास में पहली बार जल, वायु और थल-सेनाएँ दुनिया के सुदूर कोनों में एक साथ जूझ रही थीं। मौसम और पवनों ने लड़ाई में निर्णायक भाग अदा किया

मौसम ने सोवियत संघ में जर्मन फौजों को हराने में सहायता दी, इसने जापान को भारत के बाहर रखा। मौसम यूरोप पर मित्रराष्ट्रों के हमले की तिथि निश्चित करने वाली कुञ्जी था और इसने प्रशांत में अमरीकी बेड़े को लगभग नष्ट कर दिया था।

१७ दिसम्बर १९४४ को, जब प्रशांत में युद्ध अपने चरम पर था, अमरीका का विशाल तीसरा बेड़ा, जिसमें १०० से ज्यादा फौलादी जहाज थे, बीच समुद्र में ईंधन भरने के लिए जा रहा था। उसने अभी-अभी तीन दिन सख्त लड़ाई में बिताए थे। लीटो की खाड़ी में जापानियों को मात दे दी गई थी और दो दिन पहले ही अमरीका के जल-सैनिकों ने मिंटानाओ के टापू पर हमला शुरू किया था। जापानियों को बमबारी से पंगु बनाकर काट दिया गया था।

यह निश्चित ही लगता था कि जल्दी ही जल-सेना प्रशांत सागर को काबू में ले लेगी कि तभी सैकड़ों वर्गमील के क्षेत्र में फैला तीसरा बेड़ा जल-सैनिक इतिहास में अंकित सबसे विकट पवनों में से एक में जा फँसा।

बेड़ा तीन महीने से अधिक यात्रा पर रहा था और इसका भी अधिकांश लड़ाई में कटा था। अफसर श्रांत और विजय प्राप्त करने के निकट—और संभवतः किसी हद तक लापरवाह भी थे। किसी भी प्रशांत सीमकारी को जो संकट के चिह्न एकदम स्पष्ट होते, वे उन्हें न पढ़ सके। रविवार का दिन ही अपशकुनी के साथ शुरू हुआ। हवा से उठते-गिरते अशांत सागर पर जहाज बड़ी अस्थिरता से चल रहे थे। सेनाध्यक्ष एडमिरल विलियम हाल्से ने अपनी यात्रा में 'हमारे पूर्व की ओर किसी प्रकार का उष्णकटिबन्धीय उत्पात' दर्ज किया। तीसरे बेड़े ने ईंधन भरना शुरू किया। लड़ाई चल रही थी और पीछे द्वीपों पर सहायता की जरूरत थी।

सुबह बीतने भी न पाई थी कि ईंधन की नलियाँ टूटने लगीं और तूफ़ानी समुद्र पर काला तेल फैलने लगा। पूरा बेड़ा 'रण सचेतता' की स्थिति में आ गया और राडार, सोनार, बत्तियों तथा

रेडियो से तूफ़ान का पता चलाने और जहाज़ों को साथ रखने की कोशिशों में जुट गया। पूरा बेड़ा—२० विराट वायुयानवाहक, ८ बड़े जंगी जहाज और बीसियों युद्धपोत-विध्वंसक तथा ईंधन-पोत—व्यूह बाँधकर आगे चल पड़ा। वे शांत समुद्र की तलाश में थे।

बचने की कोशिश में बेड़ा उत्तर-पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम दिशा में टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर चलता-चलता तूफान के ठेठ बीच में जा धँसा। सोमवार आ गया। जहाज़ ऐसी चोटें खा रहे थे कि कोई मानव-रचित युद्ध उसका क्या मुकाबला करता! करीब-करीब ईंधन-हीन, पर तोपों और हथियारों से बेतरह लदे हुए हलके जहाज़ कार्कों की तरह उछल और बिखर रहे थे। कुछ तो चक्रवात के छोरों पर थे, कुछ उसके घेरे में, और कुछ-कुछ देर के लिए तूफान के अनिष्ट-सूचक शांत केन्द्र में। तीसरे पहर तक वायुयान-वाहकों की डेकों से हवाई जहाज़ बंधन-मुक्त होने लगे, डेकें खुद कागज की तरह मुड़ रही थीं, आदमी जहाज़ों से पानी की समेट में बहे जा रहे थे। जहाज़ों में आग लग रही थी, उनका संचालन काबू के बाहर था। पचास-पचास फुट ऊँची और लगभग इतनी ही चौड़ी लहरें जहाज़ों पर आकर गिरने लगीं। तूफान की गरज जहाज़ों को गुँजाने लगी।

सोमवार को तीसरे पहर तक बेड़ा पूरी तरह पस्त हो गया था—७९० आदमी मारे गए थे, १४६ हवाई जहाज़ डेक से हवा के साथ बह या नष्ट हो गए थे, रणपोतों के बुर्जों की धज्जियाँ उड़ गई थीं। उनकी 'रीढ़' टूट गई थी। कई छोटे जहाज डूब गए थे, कई 'लंगड़ा' रहे थे।

लूज़ों का भावी हमला रद्द कर दिया गया। जल्दी से बिठाई गई अमरीकी नौ-सैनिक जाँच अदालत ने पता लगाया कि "तूफ़ान के स्थल तथा मार्ग की भविष्यवाणी करने में बड़ी गलतियाँ की गई थीं," और प्रशान्त बेड़े के सेनापति ने बहुत ही गुस्से के साथ 'तूफानों का नियम समझने की आवश्यकता' बताई। छः महीने के बाद तीसरे बेड़े पर एक और तूफान ने चोट की। इस बार हानि इतनी अधिक नहीं थी,

लेकिन वाशिंगटन में नाराज़ जल-सेनापति ने अफ़सरों को फटकार दी, और फिर सुधरी हुई मौसमी भविष्यवाणियों की और दक्षतर महासागरव्यापी तूफ़ानी चेतावनी सेवा की व्यवस्था शुरू की।

प्रचण्ड पवनें इतिहास में सदा विनाश लाती रही हैं, १२८१ में प्रशान्त सागर में एक तूफ़ान ने मंगोल सम्राट् कुवला खाँ द्वारा जापान पर भेजे एक विशाल बेड़े को नष्ट कर दिया था। १५८८ में अब तक के जुटाए सबसे बड़े जहाज़ी बेड़ों में एक युद्ध-श्रांत स्पेनी आरमादा का एक गरजते तूफ़ान ने खातमा कर दिया और सागरों का कब्ज़ा स्पेन के हाथ से इंगलैंड के हाथ में चला गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान प्रशांत सागर में पवनों के बारे में एक नई जानकारी मिली। इसने पृथ्वी के वायुमंडलीय चक्रण के बारे में हमारी धारणा को बदल दिया। जापानियों ने मौसमी गुब्बारे भेजते हुए यह जान लिया था कि जापान के पाँच-छः मील ऊपर बहने वाली पवनें-- प्रचलित पछवैया--प्रशान्त के ऊपर बहती हुई ५००० मील दूर अमरीका की तरफ जाती हैं। उन्होंने आग्नेश बमों से लैस बड़े-बड़े गुब्बारे भेजकर, जो ऊँचाई पर बहने वाली पवनों के साथ प्रशान्त के पार बहते चले जाते थे, अमरीका पर 'हमला' करने की कोशिश की। ये हथियार भौंडे, क्रमहीन और बेअसर थे, फिर भी हो सकता है कि अनजान में ही जापानी लोगों को जेट स्ट्रीम मिल गई हो।

लड़ाई में आगे चलकर अमरीकी वायु-सेना ने टोकियो पर अपने बी-२९ बमवर्षक भेजे। २९,०००-३०,००० फुट की ऊँचाई पर से अपनी बम गिराने की दौड़ लेते वक्त जहाज़ अपनी चाल धीमी कर लेते थे। पूर्व से पश्चिम की ओर जाते समय वे प्रायः इन अपरिचित उच्च पवनों के खिलाफ पड़ जाते थे। वायुयान-चालक रिपोर्ट देते थे कि वे हवा में 'ठहरे हुए हैं।' एक चालक ने कहा कि जब उसका जहाज बम गिराने के लिए अपनी कम चाल की दौड़ ले रहा था, तो उसका जहाज़ टोकियो की तरफ बढ़ने के बजाय पीछे हट रहा था। ये उच्च पवनें अक्सर २०० मील प्रति घण्टा से ऊपर की चाल से

'चोट' करती हैं।

ये कोई सामान्य, अस्थिर पवनें न थीं, वरन् उस ऊँचाई पर मिलने वाली कम-ज़्यादा स्थिर पवनें थीं। धीरे-धीरे उनके रूप उभरकर सामने आए। इन उच्च पवनों की केन्द्र जेट स्ट्रीम थी, जो संसार को आवृत्त करने वाली सबसे महत्त्वपूर्ण पवनों में एक है। जब ८ अगस्त १९४५ को जापान पर पहला परमाणु बम गिराया गया, तो उससे उठे विकिरणशील पदार्थों के अम्बार को उच्च पवनों तथा जेट स्ट्रीम ने उठाकर पृथ्वी के इर्द-गिर्द फैला दिया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले २०,००० फुट के ऊपर उड़ने वाला कोई हवाईजहाज़ न था। मौसमी गुब्बारे ही इससे ज़्यादा ऊँचाई पर पहुँचते थे। इस ऊँचाई के ऊपर क्या होता है, यह अधिकतर एक रहस्य ही था। अब सारे-के-सारे वायुमण्डल को समझने की आवश्यकता फौरी हो गई।

अंभूव के दौरान ध्रुव से लेकर ध्रुव तक, और भूतल से लगाकर वायुमण्डल के छोर तक—पृथ्वी से सैकड़ों और शायद हज़ारों मील ऊपर तक—सारे वायुमण्डल का पहला संसारव्यापी अध्ययन किया जा रहा है। वैज्ञानकों को संसार की पवनों तथा वायुमण्डल की पहली बारहमासी और सम्पूर्ण तसवीर मिल रही है और वे भावी विश्वव्यापी मौसमी भविष्यवाणी की दिशा में एक बड़ा पग उठा रहे हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध की प्रविधियों, उपकरणों तथा रस्मों को इस प्रयास के लिए उपयोग में लाया जा रहा है।

यह वायु के एक नये युग के समारम्भ का प्रतीक है।

पिछले दशक में मौसम, पवनों तथा वायुमण्डल-सम्बन्धी कई धारणाएँ बदली हैं। अब से पाँच या दस वर्ष के बाद, जब अंभूव की खोजों का निर्वाचन हो चुकेगा, मौसम-विज्ञान की पुस्तकों को दुहराने की ज़रूरत पड़ सकती है।

वायु के बारे में हमारी जानकारी की शुरुआत कोई तीनसौ-चारसौ

साल पहले उसी तापमापी के साथ शुरू हुई, जिसने सागरों की खोज में तथा उद्योगों के निर्माण में सहायता दी है। अंभूव के वायुमण्डल के अध्ययन की कुञ्जी आधुनिक तापमापक उपकरण हैं।

अमरीकी वायु-सेना ने १९५७ में जेट बम-वर्षकों के एक बेड़े से चार दिन के भीतर दुनिया की परिक्रमा करवाकर विद्यमान विश्व-रेकार्ड को तोड़ा था। ये हवाईजहाज़ इस ऊँची और तेज़ जेट स्ट्रीम में-ही उड़े थे। जिस 'भेद' से इन बमबाज़ों ने जेट स्ट्रीम को पाया और उसमें सफ़र किया, वह प्रकट नहीं किया गया। तिस पर भी सभी वाणिज्यिक वायु परिवहन कम्पनियाँ इसका उपयोग करती हैं। यह रहस्य है सामान्य तापमापी।

अमरीकी वायु-सेना के भू-भौतिकीय अनुसन्धान निर्देशालय तथा वाणिज्यिक वायु परिवहन कम्पनियों ने पता लगाया था कि जेट स्ट्रीम एक 'ताप-राज-मार्ग' है और केन्द्रीय अथवा तीव्रतम पवनें तीस-चालीस हज़ार फुट की ऊँचाई पर—उष्णतर तथा मन्दतर हवा की एक परत के ठीक ऊपर चलती हैं। विश्व-परिक्रमा का रेकार्ड तोड़ने वाले बमवर्षक इतने ऊपर चढ़े कि उष्ण हवा के बिन्दु पर पहुँच गए। फिर वे इससे कुछ ऊपर उठ गए और जेट स्ट्रीम के तीव्र केन्द्र में पहुँचकर उन्होंने तेज़ी से पृथ्वी की परिक्रमा कर डाली। जेट स्ट्रीम की ताप संरचना लगभग उसकी पूरी लंबाई भर सामान्यतः स्पष्ट है। चालकों ने यान-सचालन आधुनिक इलेक्ट्रानी तथा ज्योति वैज्ञानिक उपकरणों और सामान्य तापमापी द्वारा किया। दुनिया के आर-पार जेट स्ट्रीम का उपयोग करने वाले ये पहले हवाईजहाज़ थे।

वायुमण्डल का विश्वव्यापी रूप जानने का मौसम-वैज्ञानिकों का प्रयत्न सागर-वैज्ञानिक के समुद्रों के रूपों को, और ज्योतिर्विद के ग्रहों तथा तारों के रूप और गतियों को जानने के प्रयासों-जैसा ही है, तथापि वायु की गतियाँ कहीं अधिक जटिल हैं।

मनुष्य ने ऊपरी हवा के रूपों को जानना तब शुरू किया कि जब उसने उड़ना शुरू किया। १७८० में आधुनिक विज्ञान का आरम्भ हुए

दो सौ वर्ष हो गए थे। तापमापी, वायुदाबमापी तथा अन्य उपकरणों ने वायु के कुछ रहस्य जान लिये थे और गुरुत्व का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान हो चुका था। यही वह समय था जब दो फ्रान्सीसी भाइयों ने उड़ने के पुराने सपने को साकार करने के प्रयास शुरू किये।

इकारस की यूनानी आख्यायिका से लगाकर लिओनार्दो दा विन्सी और आधुनिक विज्ञान के समारम्भ तक, मनुष्य उड़ने का यत्न करते आए थे। हज़ारों बार उन्हें इसमें असफलता मिली, और कई ने इसकी कोशिश करते जान से भी हाथ धोए। लेकिन जोसेफ और एतिएने मोंतगोल्फिएर ने इसकी कोशिश एक नये तरीके से की, वे उष्मा द्वारा उड़े। उष्मा में ही—यद्यपि मोंतगोल्फिएर बंधुओं को इसका पता नहीं था—पवनों, ऊर्जा और उड्डयन का रहस्य छिपा हुआ था।

अट्ठाईस बरस पहले बेंजामिन फ्रेंकलिन बरसाती तूफान में पतंग उड़ा चुके थे और बिजली का धक्का खाकर यह सिद्ध कर चुके थे कि ऊँचे बादलों में विद्युत् होती है। तब से यूरोप और अमरीका में इस नई 'विद्युत्' के साथ प्रयोग करने की एक धुन ही फैल गई थी। मोंतगोल्फ़िएर बन्धुओं का खयाल था कि यह बादलों को ऊपर तैरता रखती है और सामान्य धुआँ इसलिए ऊपर उठता है कि उसमें बिजली मौजूद है। इसलिए उन्होंने केटली या आग के ऊपर कागज या कपड़े के थैले रखकर उनमें भाप तथा धुएँ को कैद करके इस 'बिजली' के कुछ अंश को पकड़ने की कोशिश की। वे जिस चीज़ को पकड़ पाए, वह गरम हवा ही थी। लेकिन थैले ऊपर उठकर छत से जा टकराने लगे और जब उन्हें बाहर ले जाया गया, तो वे पेड़ों से भी ऊँचे उठ गए। मोंतगोल्फ़िएर बन्धुओं ने ज़्यादा बड़े थैलों के साथ प्रयोग किये और तीन साल बाद, १७८३ में, उन्होंने अपने गाँव में दर्शकों को सौ फुट से ज़्यादा परिधि का एक गुब्बारा हवा में उड़ा दिखाया। दुनिया हैरत में आ गई।

यह जानने के लिए कि 'ऊपरी हवा' में जाना सुरक्षित है या

नहीं, मोंतगोल्फ़िएर बन्धुओं ने गुब्बारे के नीचे लटकी टोकरी में एक बत्तख, एक मुर्गी और एक भेड़ को भी रख दिया था। जब गुब्बारा नीचे उतरा, तो मुर्गी मरी हुई मिली। क्षण-भर के लिए तो आसमान की दहशत फिर छा गई लेकिन तभी किसी ने भेड़ के दाँतों को देखकर उनमें पर पाए। मालूम हुआ कि भीत भेड़ ने मुर्गी को मार डाला था।

पाँच वर्ष के भीतर लोग यूरोप और अमरीका में गुब्बारों पर सवार होकर उड़ने लगे—पर पक्षियों की तरह नहीं, पवन के सहारे उसी के आसरे। फ्रैंकलिन, जो इस समय फ्रांस में अमरीकी राजदूत थे, ने जब १७८३ में एक प्रारंभिक गुब्बारे को चढ़ते देखा, तो उन्हें एक नये युग के आरंभ का विश्वास हो गया। पास खड़े किसी आदमी ने पूछा, "मिस्टर फ्रैंकलिन, गुब्बारा किस काम की चीज़ है?" "महाशयजी," फ्रैंकलिन का उत्तर था, जो आगे चलकर मशहूर हो गया, "नवजात बच्चा किस काम है?"

गुब्बारा मौसम-वैज्ञानिकों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण औज़ारों में है, और अंभूव के दौरान दुनिया के हर हिस्से में हज़ारों गुब्बारे ऊपर भेजे जा रहे हैं। वे उपकरणों को १५ से २० मील तक की ऊँचाइयों पर ले जाकर ताप, दाब तथा आर्द्रता के बारे में रेडियो द्वारा सूचनाएं प्रेषित करते हैं और राडार द्वारा उनका अनुगमन करके पवनों की चाल तथा रुख का पता चलाया जाता है। बहुत ऊँचाइयों पर जाने वाले गुब्बारे बाह्य अन्तरिक्ष की ब्रह्मांड-किरणों के बारे में भी सूचना ला रहे हैं और कैमराओं से लैस गुब्बारे सूर्य के चित्र खींच रहे हैं।

मोंतगेल्फिएर बंधुओं के गुब्बारे ने हमें सिखाया कि गरम हवा फैलती है और गुब्बारे को चढ़ा देती है, तो गुब्बारा उतर और पिचक जाता है।

कोई पचास वर्ष पूर्व एक अंग्रेज़ वैज्ञानिक, जॉर्ज हैडले, ने इस विचार को पवनों पर लागू किया था। एक संक्षिप्त निबन्ध में उसने

वताया था कि पवनें—जहाजियों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली स्थिर व्यापार-पवनें—कैसे बनती हैं। सूर्य से गरमी पाकर विपुवत रेखा पर की हवा ऊपर उठकर उत्तर की तरफ चली जाती है; विपुवत रेखा के उत्तर की तरफ़ की ठण्डी हवा नीचे बैठकर समुद्र की सतह के साथ-साथ दक्षिण की तरफ चली जाती है। दक्षिण की ओर जाती ठण्डी हवा को विपुवत रेखा पर पृथ्वी के भ्रमण का तीव्रतर वेग पृथ्वी के फिरने की दिशा के खिलाफ 'पीछे' भेज देता है। पृथ्वी के तेजी के साथ फिरते समय ठण्डी हवा घिसट व्यापार पवनों को उत्पन्न करती है। हैडले का कहना था कि नतीजा यह होता है कि 'विपुवत' रेखा के इस तरफ एक उत्तर-पूर्वी पवन पैदा होगी और उस तरफ एक दक्षिण-पूर्वी पवन पैदा होगी।"

हैडले का निवन्ध इतना छोटा और अनाटकीय था कि बहुतों ने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया। पवन की भौतिकी में बहुत कम लोगों की ही दिलचस्पी हो सकती है। लेकिन उड़ना एक ऐसी चीज़ थी, जिसकी सभी कोई वाहवाही कर सकते थे। वायुमण्डल का आचरण अब ऐसा लगने लगा, मानो गुब्बारे-जैसा ही हो। यह व्याख्या ज़रूरत से ज्यादा सरल थी।

क्या गरम हवा इसलिए महज़ उठता है कि वह गरम है? नहीं, क्योंकि गरमी वस्तुओं को कोई हलकी नहीं बना देती और मोंतगोल्फ़िएर बंधुओं का यह सिद्धान्त गलत था कि उन्होंने 'बिजली' को बंद कर लिया है।

मोंतगोल्फ़िएर बन्धुओं के 'असम्भव' कारनामे से प्रभावित हुई पेरिस की विद्वत अकादेमी ने अकादेमी के एक भौतिकीशास्त्री जे० पी० सी० चार्ल्स से इसकी जाँच करने के लिए कहा।

प्रोफेसर चार्ल्स ने एक ठण्डी 'गैस'—हाइड्रोजन नामक एक नई हलकी गैस—से भरे एक गुब्बारे को ऊपर भेजा। इसका मतलब यह निकला कि गुब्बारा ऊपर गरमी से या बिजली से नहीं जाता था। फिर उसे चढ़ाने वाली चीज क्या थी? प्रोफ़ेसर चार्ल्स ने सीधे-सादे

यह कहा कि जब कोई गैस गरम की जाती है, तो वह फैलती है और जब वह फैलती है तो अपने इर्द-गिर्द की सघनतर गैस पर उसी तरह तैरती है, जैसे हलकी लकड़ी का टुकड़ा पानी पर तैरता है। गरम हवा और हलकी गैस दोनों सघन हवा में तैरती हैं। चार्ल्स ने गैस के ताप, आयतन तथा दाब के मध्य सम्बन्ध की व्याख्या की, और इससे तापमापी फिर महत्त्वपूर्ण हो गया—यहाँ वायु की गतियों के अध्ययन में।

वायु की कुछ गतियों का कारण अब ज्ञात हो गया। फिर भी संसार की पवनों तथा तूफानों की व्याख्या अभी भी न हो पाई थी। गल्फस्ट्रीम का रूप जान लेने के बाद फ्रैंकलिन ने पवनों के रूप जानने की कोशिश की। वह व्यापार पवनों तथा जहाजियों की पवन-सम्बन्धी सभी गाथाओं से परिचित थे। वह यूरोप और अटलांटिक तट की पवनों की जानकारी रखते थे। उन्होंने निर्धन स्विड्स पंचांग (पूअर रिचर्डस आलमेनेक) प्रकाशित किया, जो अमरीकी उपनिवेशों[1] में प्रकाशित सर्वोत्तम पंचांग था। यह मौसम, ऋतुओं, आकाश तथा ज्वार-भाटे की जानकारी देता था। वह पवनों की भी व्याख्या करके अपने पाठकों को यह बताना चाहते थे कि तूफ़ानों की अपेक्षा कब की जाए। लेकिन फ्रैंकलिन तक के लिए ये अस्थिर पवनें और कभी कदा से तूफान ही रहे।

अपने जीवन के अठारहों महीने-भर पवनों तथा वायु की गतियों का पहला विश्वव्यापी क्रमिक अध्ययन हाथ में लेकर अंभूव मूल वायु-मण्डलीय रूपों की समझ के निकट आ रहा है। यह ज्ञान एक दिन दीर्घ-कालिक मौसमी भविष्यवाणी के लिए एक यथार्थवादी 'पंचांग' संभव बना सकता है।

लेकिन पृथ्वी, सूर्य के साथ सम्बन्ध तथा दुनिया की जलवायु में

---

[1] अमेरिका में अमरीकी क्रांति तक अंग्रेजों का शासन रहा था और ये राज्य उपनिवेश कहलाते थे। —अ०

परिवर्तन-सम्बन्धी गहन रहस्यों के उद्‌घाटन के लिए भूभौतिकीविद भी हवा की ओर देख रहे हैं, समस्याएँ बहुत बड़ी हैं। हमें पता चल रहा है कि वायुमण्डल एक अद्‌भुत रूप से जटिल और गतिशील घटना है।

सूर्य वायु के 'इंजन को शक्ति देता' है। लेकिन इस प्रक्रिया की सभी बातें नहीं समझी गई हैं। हम जानते हैं कि सूर्य पृथ्वी को प्रकाश तथा ऊर्जा तरंग-दैर्घ्यों के एक चौड़े वर्णक्रम में भेजता हैं। पृथ्वी तक पहुँचने वाले प्रकाश का अधिकांश वर्णक्रम के बीच के पट्ट में होता है, जिसे हम 'दृश्य प्रकाश' के रूप में जानते हैं। यह दृश्य प्रकाश वायुमंडल से तेजी के साथ उसे गरम किये विना गुज़र जाता है। यह समुद्रों तथा भूमि द्वारा जज्ब कर लिया जाता है, जो उसे ऊष्मा के रूप में वायु को विकिरणित कर देते हैं।

तथापि सूर्य के दृश्य प्रकाश का लगभग ३५ प्रतिशत भाग परावर्तन द्वारा वाह्य अवकाश को लौटा दिया जाता है। पृथ्वी से टकराकर जाने वाला यह प्रकाश हमारे ग्रह को—यदि उसे बाह्य अन्तरिक्ष से देखा जा सके, तो—चाँद-सरीखा प्रकाशवान् वना देगा। भूमि तक पहुँच पा सकने वाले प्रकाश की मात्रा दिन-दिन, मौसम-मौसम और अक्षांश-अक्षांश के अनुसार बदलती रहती है।

३५° उत्तर अक्षांश के दक्षिण में, मोटे तौर पर जापान, सानफ्रान्सिस्को, वशिंगटन और रोम के बीच से गुज़रती रेखा में सूर्य से प्राप्त विकिरण परावर्तित विकिरण से अधिक होता है। ३५° उत्तर के ऊपर, जहाँ दुनिया की ज्यादातर आवादी रहती है, जितना विकिरण जज्ब होता है, उससे अधिक परावर्तित होकर जाता रहता है।

इससे हम यह सोच सकते हैं कि उष्ण-कटिबन्धीय प्रदेश अधिकाधिक गरम होते जाएँगे और उत्तरी प्रदेश सतत शीतलतर होते जाएँगे। ऐसा वस्तुतः होता नहीं। भटकती हवा और चक्रण करते सागर बड़े अतरों को बराबर कर देते हैं और साल के दौरान विभिन्न अक्षांशों की जलवायु अपेक्षाकृत स्थिर रहती है।

सूर्य द्वारा पृथ्वी के गरम होने में अन्तर ही अधिकांश पवनों का

कारण है। अंभूव के दौरान वैज्ञानिक हर मौसम में पृथ्वी तक पहुँच पाने वाले प्रकाश तथा ऊर्जा की मात्रा, विकिरण द्वारा खोई मात्रा तथा गरम तथा ठंडे प्रदेशों में स्थानांतरित उष्मा की मात्रा के पहले यथार्थ विश्वव्यापी माप प्राप्त करने की कोशिशें कर रहे हैं।

खोए प्रकाश का अधिकांश ध्रुवीय हिम से टकराकर चला जाता है; इससे भी अधिक मात्रा दुनिया के सभी भागों में बादलों की पीठ से टकराकर वापस चली जाती है। अगर लगातार २० या ३० गरमियों और वसन्तों में औसत से ज्यादा बादल छाए रहें, तो हो सकता है कि सरदियों की बरफ पिघले ही नहीं, और एक और हिम युग आरम्भ हो जाए। हम देख चुके हैं कि उत्तरी ध्रुव महासागर के गरमा जाने से किस प्रकार उत्तर यूरेशिया तथा उत्तर अमरीका पर बादलों का बनना और बर्फ़ का गिरना बढ़ जाएगा और इससे दूसरा हिम-युग का रुझान शुरू हो जाएगा।

इसलिए अंभूव के वैज्ञानिक पृथ्वी की औसत मेघ-राशि का अनुमान लगाने का यत्न कर रहे हैं। भू-भौतिकीविद इस मेघावरण को सर्वोपरि महत्त्व का मानते हैं। पूरे साल के दौरान सूर्य के चमकते रहने के समय भी बादल औसतन पृथ्वी के ५२ प्रतिशत भाग को ढके रखते हैं। जब आसमान साफ़ होता है, तो पृथ्वी की ओर आनेवाला सूर्य का ७० प्रतिशत विकिरण जज्ब होकर उष्मा में परिवर्तित हो जाता है। किन्तु औसत मेघाच्छन्न दिनों में सूर्य का केवल ३५ प्रतिशत प्रकाश ही भूमि तक पहुँच पाता है। इसलिए सूर्य की उष्मा का लगभग ५० प्रतिशत भाग ही वास्तव में काम में लगता है। उ० ध्रुव तथा द० ध्रुव प्रदेशों में केवल २२ प्रतिशत के लगभग प्रकाश ही पहुँच पाता है, शेष बादलों और कुहरे द्वारा रोक दिया जाता है, और जितना इनसे गुज़र भी पाता है, उसका भी एक बड़ा भाग बर्फ़ द्वारा परावर्तित कर दिया जाता है।

भू-भौतिकीविदों के लिए ये प्रतिशतें मौसम-विज्ञान के बुनियादी गणित की तरह हैं। ये वर्णक्रम के दृश्य-पट्ट में सूर्य से आने वाले

प्रकाश तथा ऊर्जा के बारे में बताती हैं। लेकिन उस दूसरी—अदृश्य—ऊर्जा के बारे में क्या कहा जाए ?

सूर्य का दृश्य विकिरण लगभग स्थिर—अचर—है। अदृश्य विकिरण में बड़े उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। १९५७-५८ जैसी सूर्य-कलंकों की सक्रियता की अवधियों के दौरान अदृश्य पारबैंगनी तथा अन्य उत्सर्जनों के आस्फोट होते हैं, जो सामान्य पारबैंगनी विकिरण से हजारों गुना ज्यादा शक्तिशाली होते हैं। क्या ये आस्फोट मौसम को प्रभावित करते हैं ? कुछ भू-भौतिकीविदों का खयाल है कि वे ऐसा करते हैं। वस्तुतः सूर्य-कलंकों और ऊर्जा आस्फोटों का आगमन क्योंकि चक्रों में होता है, इसलिए कुछ भू-भौतिकीविदों ने मौसमी गड़बड़ियों का समाधाम इन्हीं चक्रों द्वारा करने का प्रयास किया है।

सूर्य-कलंक मौसम को कैसे प्रभावित करता है, इसके बारे में निश्चित रूप से मालूम नहीं है, पर एक सिद्धान्त यह है कि सूर्य-कलंक अपनी ज्योतिर्शिखाओं, पारबैंगनी प्रकाश के स्फोटों तथा उच्च ऊर्जा-कणों द्वारा ठंडे समशीतोष्ण अक्षांशों के मेघतल से बहुत ऊपर की उच्च विरल वायु को प्रभावित करते हैं। क्या इसका कारण यह है कि ऊर्जा का अवशोषण होता है ? यह उन समस्याओं में से एक है, जिनकी अंभूव के दौरान खोज की जा रही है। ये सौर, आस्फोट कुछ प्रदेशों में मौसम पर विकिरण का प्रभाव रखते और अन्य क्षेत्रों में उसे अधिक तूफानी बनाते दिखते हैं। भू-भौतिकीविद नहीं जानते कि यह पारबैंगनी विकिरण, उच्च ऊर्जा कणों के कारण है, या जो प्रक्रिया होती नजर आती है, उसका वस्तुतः अस्तित्व भी है।

२४ फरवरी, १९५२ को सूर्य की सतह पर एक असाधारणतः तेज स्फोट या ज्वाला देखने में आई। उसी समय पारबैंगनी विकिरण का एक विशाल आस्फोट पृथ्वी की तरफ धकेला गया, जिसके पीछे कणों के बड़े-बड़े प्रवाह थे। बर्लिन में एक भू-भौतिकीविद ने उच्चतम बादलों के स्तर से १८-२० मील की ऊँचाई पर समताप मण्डल में

ताप का अचानक चढ़ना अंकित किया। अगले कुछ दिनों के दौरान यह गरमी नीचे की तरफ विसरित होने और उच्च मेघ-तलों में कहीं समाप्त होने लगी। उसी समय अलास्का, कनाडा, उत्तर अटलांटिक तथा ग्रीनलैंड पर से असामान्य और तेज तूफान होकर गुजर गए। उष्ण कटिबन्ध प्रदेशीय दक्षिण में मौसम अचानक शांत हो गया। १६५२ में इस अकेली ज्योतिर्शिखा के बाद दो हफ़्ते तक तूफानों का तथा शांत मौसम चलता रहा।

१६५५ के अप्रैल मास में सूर्य से कणों का एक स्फोट हुआ और ये ऊपरी वायुमंडल से आ टकराए। अमरीकी वायुसेना के भू-भौतिकीय निर्देशालय के वैज्ञानिकों ने तभी ऐसे आस्फोटों के १० से १४ दिन बाद होने वाले मौसमी परिवर्तनों के एक नये रूप का पता चलाया था। सूखा से पीड़ित कोलोरोडो (अमरीका) में उच्चतुंगता वेधशाला में वेधशाला के संचालक तथा अमरीकी अंभूव समिति के अध्यक्ष डॉक्टर वाल्टर ओर्र रॉबर्ट्स यह देख रहे थे कि अब क्या होता है। तेरहवें दिन पानी बरसना शुरू हो गया और चौदहवें दिन दिन-भर बरसता रहा।

अमरीकी मौसम कार्यालय के मुख्य अनुसंधान वैज्ञानिक डॉक्टर हैरी वेक्सलर का कहना है कि ऐसे आस्फोटों का मौसम के साथ सम्बन्ध "हमारे ध्यान देने और अधिक अध्ययन करने योग्य है।"

अंभूव के वैज्ञानिक सूर्य को निरन्तर निगाह में रख रहे हैं और उसके आस्फोटों को माप रहे हैं। साथ ही वे दुनिया के मौसम की भी जाँच कर रहे हैं। यदि कोई सम्बन्ध सिद्ध हो गया, तो मौसम-वैज्ञानिकों को सूर्य के पर्यवेक्षण से मौसम के तथाकथित 'मन मौजी' परिवर्तनों की भविष्यवाणी करने का एक नया जोरदार तरीका मिल जाएगा।

भू-भौतिकीविद यह जानना चाहते हैं कि सूर्य से नियमित विकिरण, अदृश्य उत्सर्जन तथा कणों के रूप में यथार्थतः कितनी ऊर्जा या 'ईंधन' का आगमन होता है। वे यह जानना चाहते हैं कि

यह ऊर्जा दिन प्रति-दिन, मौसम-प्रतिमौसम और साल-प्रतिसाल कैसे भिन्न-भिन्न होती है। एक बार इस ऊर्जा के वायुमंडल में पहुँच जाने पर क्या होता है? और जिस हवा ने इस ऊर्जा को अवशोषित किया है, वह किस प्रकार चलती और आचरण करती है?

इस सवाल का कि हवा कैसे आचरण करती है एक जवाब तब मिला जब हवाई जहाज आया।

१९१७ में, प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान, नार्वेजियाइयों के लिए यूरोप से मौसमी विवरण पाना, जो उनके मछली पकड़ने के बेड़ों के लिए बहुत ही ज़रूरी थे, असंभव हो गया। विलहेल्म ब्येर्कनेस नाम के एक भौतिकीविद ने अपनी खुद की मौसमी भविष्यवाणी करने की कोशिश की। उसने मामूली तापमापियों तथा दाब उपकरणों से युक्त छोटे-छोटे गुब्बारे ऊपर भेजे और फिर अपने परिवर्तन परिणामों को हवा से भारी नये हवाई जहाजों के विवरणों से मिलाकर देखा, जो हवा के आर-पार और उसके भीतर उड़ रहे थे।

ब्येर्कनेस को मौसम की गहरी अनुभूति थी, क्योंकि वह वहाँ का रहने वाला था जहाँ समुद्र तथा गल्फ स्ट्रीम की गरम हवा आर्कटिक की ठण्डी हवा से मिलती हैं। गरम और साफ मौसम के दौरों के बाद, जिनके साथ सागर की हवाएँ आती हैं, बौछारें, कड़ा और सर्द मौसम आता है, जिसमें उत्तर की बर्फीली हवाएँ चलती हैं। जब गरम मौसम फिर आता है, तो उसका आगमन भारी बादलों और तूफानों के साथ होता है।

धीरे-धीरे ब्येर्कनेस ने सारे रूप को सुस्पष्ट किया। उसने देखा कि वायु आकृतिहीन मनमौजी पवनों में नहीं चलती, वरन् पूर्णतः स्पष्ट संहतियों में चलती है, जिनमें से कुछ गरम हैं, तो कुछ ठण्डी और हर एक-दूसरी का अनुगमन करती है। इन संहतियों की सीमाओं को 'अग्रभाग' कहते हैं। जहाँ गरम और ठण्डी वायु-संहतियों का मिलन

होता है, वहाँ तूफान पैदा हो सकते हैं। संसार की तूफानी पट्टियाँ वहीं हैं, जहाँ गरम तथा ठण्डी हवाएँ मिलती हैं और अपनी संचित ऊर्जाओं की अपार राशियों को पवनों, आँधियों, बादलों, वर्षा तथा बर्फ़ में बदलती हैं।

ये वायु संहतियाँ जहाजियों का परिचित अचर व्यापार-पवनों से, जो पृथ्वी के कुछ क्षेत्रों से होकर नियमित पथों पर चलती हैं, भिन्न हैं। ये संहतियाँ ५०० से ५००० मील तक चौड़ी होती हैं। ये स्थिर खड़ी रह सकती हैं और घूम या मुड़ भी सकती हैं, और जब ये घूमती हैं, तो पृथ्वी के चारों ओर नहीं वरन् अपने ही इर्द-गिर्द घूमती हैं।

ब्येर्कनेस के लिए इन संहतियों की गतियों का रेखांकन करना, यह बताना कि जब ठण्डी संहति गरम संहति से मिलती है तो क्या क्या होता है; और इसकी भविष्यवाणी कर सकना कि वर्षा कहाँ होगी और अग्रभागों के मिलने पर पवनें किन दिशाओं में बढ़ेंगी, सम्भव हो गया। इस ज्ञान से मौसमी भविष्यवाणी ने एक बड़ा पग आगे बढ़ाया।

अग्रभागों के हर संभव प्रयोग या मौसम का अब अध्ययन कर लिया जा चुका है। वायु-संहतियों की गतियों की आमतौर पर भविष्यवाणी की जा सकती है।

विषुववृत्तीय सागरों में उत्पन्न तूफानों और बवण्डरों तक का अध्ययन और अनुसरण किया जा रहा है। पहली तूफानी भविष्यवाणी प्रणाली १९५७ में अमरीकी मौसम कार्यालय द्वारा चालू की गई थी, यद्यपि मौसम शास्त्रियों को अभी तक यह ज्ञात नहीं है कि इन बड़ी पवनों के पैदा होने का कारण क्या है? तथापि जिन परिस्थितियों में ये पैदा होती हैं, उनका पता लगने लगा है। एक बार शुरू होने के बाद ये पवनें सूर्य द्वारा गरमाए सागरों से उठती नम हवा में सन्निहित अपार ऊर्जा को 'यन्त्र' के पोषण और चलते रहने के लिए उपयोग में लाती हैं। १९४४ में तीसरे बेड़े पर ऐसे ही तूफान ने चोट की थी। अंभूव के वैज्ञानिक इन तूफानों तथा बवण्डरों को

जन्म देने वाली विषुववृतीय परिस्थितियों का अध्ययन कर रहे हैं।

अंभूव के दौरान वायु-संहतियों तथा अग्रभागीय स्वरूपों की जो जानकारी हमें है, उसे भी बढ़ाने का यत्न किया जा रहा है। भू-भौतिकीविद यह जानना चाहेंगे कि सूर्य की ऊर्जा विफल वायु-संहतियों में उष्मा, वाष्प तथा पवन-गति के रूप में किस प्रकार बन्द है। वे यह जानना चाहेंगे कि समुद्रों, भूमि तथा पर्वतों के साथ घर्षण में इसके नष्ट हो जाने पर इस विराट् ऊर्जा के साथ क्या होता है।

किन्तु वायु-संहतियाँ और अग्रभाग स्थानीय ही होते हैं और पूरी बात नहीं बताते। अंभूव के मौसम-वैज्ञानिक एक और भी अधिक महत्वपूर्ण स्वरूप के बारे में जानने का यत्न कर रहे हैं। यह स्वरूप है पृथ्वी की वायु का विशालतर विश्वव्यापी चक्रण।

पाँच से सात मील की ऊँचाई पर दुनिया का चक्कर काटने वाली जेट स्ट्रीम अग्रभागों का ही परिणाम है। जेट स्ट्रीम 'पट्टी' वहाँ है, जहाँ ठण्डे तथा गरम अग्रभाग मिलते हैं और जहाँ दुनिया के सम-शीतोष्ण प्रदेशीय तूफान पैदा होते हैं, यद्यपि जेट स्ट्रीम स्वयं इन तूफानों से बहुत ऊँचाई पर है।

ऊँचे उड़ने वाले समतापमंडलीय यानों के इस युग में जेट स्ट्रीम समुद्रों की व्यापार पवनों की भान्ति उन वायुयान-चालकों के लिए, जो इसका उपयोग कर सकते हैं, एक विश्वसनीय पवन है। यह पश्चिम से पूर्व की ओर ठीक उन्हीं वायुमार्गों के साथ-साथ पृथ्वी की परिक्रमा करती है, जिन पर बड़े-बड़े वायुयान सबसे घने बसे इलाकों पर होकर उड़ते हैं। जेट स्ट्रीम का उपयोग करते हुए वायु-यान-चालक अटलांटिक पार करने में २० से ३० मिनट तक और प्रशांत सागर पार करने में एक घण्टा या उससे भी ज्यादा समय बच सकता है। एक वर्ष में, जिसमें हजारों उड़ानें होती हैं, इसका मतलब लाखों डालर की बचत है।

विमान-चालकों के लिए जेट स्ट्रीम अभी भी नयी और उत्साहदायक ही है। भू-भौतिक विदों के लिए भी यह उत्तेजक है, क्योंकि यह वा

ध्रुवीय ट्रोपोपाज

ध्रुवीय अग्रभागीय जेट

शीतल वायु

उष्ण वायु

पृथ्वी के घर्णन की दिशा।

समशीतोष्ण जेट

उष्ण कटिबन्धीय ट्रोपोपाज

६० ४५ ३० 0

विषुववृत्त

आकृति ९—पवन के चक्रण का आर-पार काट। इसमें दोनों जेट स्ट्रीम की स्थिति दिखाई गई है। जेट के पार्श्वों पर ट्रोपोपाज़ के टूटने पर ध्यान दीजिए।

संहतियों तथा अग्रभागों की अपार ऊर्जा के कुछ अंश को सारणित करती नजर आती है। यह १०० से ३०० मील तक चौड़ी एक बड़ी 'नदी' है, जो अग्रभागों की ऊर्जा को दुनिया के इर्द-गिर्द एक ऐसी ऊँचाई और प्रदेश में फैलाती है, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले लगभग अज्ञात थे।

ठण्डी हवा उत्तर से नीचे की तरफ आती है और जेट स्ट्रीम इस शीतल संहति के केन्द्र के २०० से ६०० मील दक्षिण में, और अग्रभाग से कुछ मील दूर पर बनती है। यह ठण्डी हवा तथा निकटतम उष्ण वायु-संहति के बीच में उत्पन्न होती है। इसलिए वायुयान-चालक उस दिन के गरम तथा ठण्डे अग्रभागों का मौसम चार्ट देखकर और उनके बीच—ठण्डी हवा के कुछ अधिक निकट—एक रेखा खींचकर यह अनुमान लगा सकता है कि जेट स्ट्रीम कहाँ होनी चाहिए। यही जेट स्ट्रीम का सर्वाधिक संभव पथ है।

जेट स्ट्रीम में उड़ने वाले वायुयान-चालकों को निश्चित 'तापमापी आदेश' दिए जाते हैं, क्योंकि १०,००० फुट से ज्यादा ऊँचाई पर उष्ण तथा शीतल अग्रभागों में सुस्पष्ट विभाजन रहता है। कम दाब वाली उष्ण हलकी हवा सघनतर शीतल हवा की दीवारों के साथ-साथ एक तेज 'नदी' की तरह बहने लगती है। गरम तथा ठण्डी हवा के सीमांत जितने अधिक सुस्पष्ट होते हैं, जेट स्ट्रीम का प्रवाह भी उतना तेज होता है।

चालक से कहा जाता है कि वह अपने मौसम-चार्ट पर उस दिन के अग्रभाग देखे और फिर अपने वायुयान के तापमापी से देखकर उस बिन्दु का पता चलाए, जो दोनों अग्रभागों को सर्वाधिक सुस्पष्ट तरीके से अलग करता है। यह बिन्दु कोई २०,००० फुट की ऊँचाई पर होता है। और यान-चालकों ने इसे एक नाम दे रखा है—अतासाँ-क्षेत्र (अधिकतम ताप-सान्द्रण का क्षेत्र) * अतासां क्षेत्र के एक तरफ

*ZOMCOT—ZONE of Maximum Concentration of Temperature.

ठण्डा अग्रभाग होता है और दूसरी तरफ गरम चालक अतासाँ क्षेत्र से ऊपर उठकर आते यान के तापमापी से जेट स्ट्रीम के मध्य भाग का पता लगता है। मध्य भाग या तीव्रतम पवन आमतौर पर अतासाँ क्षेत्र विन्दु से लगभग १२,००० फुट ऊपर होता है।

जेट स्ट्रीम का मध्यभाग गरम हवा के ठीक ऊपर होता है। लगभग ३०,००० फुट की ऊँचाई पर ताप में अचानक १०° सें० तक का गिराव आता है और यान जेट स्ट्रीम के हृदस्थल में पहुंच जाता है।

जिस तरह कोई नदी अपने बहने के प्रदेश के बारे में जानकारी दे देती है, उसी तरह जेट स्ट्रीम भी वायुमण्डल के उस 'प्रदेश' की जानकारी देती है, जिससे होकर वह गुज़रती है। उत्तर की तरफ ठंडा अग्रभाग है, यान के नीचे उष्ण वायु-संहति है। वायुयान के ठीक ऊपर ट्रोपोमण्डल—निचला वायुमंडल, जिसके भीतर संसार का मौसम जन्म लेता है—का अन्त होता है और ट्रोपोमंडल की शान्त, पवन-विहीन और स्थिर वायु का आरम्भ होता है। ट्रोपोमंडल के बाद, मौसम से कहीं ज्यादा ऊँचाई पर, समताप मंडल है, जो निचलित वायु और समान ताप का क्षेत्र है।

अंभूव के दौरान जिन महत्वपूर्ण प्रश्नों के हल खोजे जा रहे हैं, उनमें से एक यह है कि समतापमंडल तथा ट्रोपोमंडल के बीच सूर्य की ऊर्जा तथा उष्मा का विनिमय किस प्रकार होता है। १६५६ में, अंभूव के कार्यक्रम के निर्धारित हो जाने के बाद, यह तय किया गया कि इस ऊँचे तल पर वायु की गति का अध्ययन करने के लिए विशेष परीक्षण-क्रम आवश्यक है। इसलिए अंभूव उन नन्हे विकिरणशील कणों की गति का मापन कर रहा है, जो इस ऊँची हवा में वायुमंडल के परमाणुओं के साथ वाह्य अन्तरिक्ष से आई ब्रह्मांड किरणों की टक्कर से पैदा होते हैं।

जेट स्ट्रीम के हर तरफ़ ऊपरी तथा नीचे की हवा की सीमांतक रेखा 'टूटती' दिखती है। सम्भवतः ऊपरी तथा नीचे की हवा का परम्परांतरण इन टूटने की जगहों पर ही होता है। विकिरणशील

कणों के अनुसरण द्वारा अंभूव के वैज्ञानिक इसका पता लगा सकते हैं।

जाड़े में ठण्डी हवा तथा ठण्डे अग्रभाग दक्षिण की ओर फैलते हैं और जेट स्ट्रीम उनके साथ-साथ चलती है। गरमियों में यह अधिक उत्तर की तरफ चली जाती है। जेट स्ट्रीम के इस मौसमी भटकाव का असर वायु-यातायात पर पड़ता है। गरमियों में हवाई से अमरीका की ओर जाने वाले वायुयान जेट स्ट्रीम का उपयोग नहीं कर सकते, क्योंकि तब यह बहुत उत्तर में चली जाती है।

इस 'ध्रुवीय अग्रभागीय' जेट पट्टी का औसत पथ जापान से हवाई होते हुए अमरीका होकर यूरोप का है। इसके बाद यह उत्तर की ओर दुबारा मुड़ने के पहले उत्तर अफ़रीका से हिंदमहासागर की ओर चली जाती है। अपनी रेकार्ड-तोड़ उड़ान पर अमरीका के बम-वार इसी रास्ते पर चले थे। 'उपउष्ण कटिबन्धीय जेट' नाम की एक छोटी जेट स्ट्रीम अशांत अक्षांशों (३०° उत्तर) पर, जहाँ पालदार जहाज़ अक्सर पवन के अभाव में बढ़ नहीं पाते थे, होकर बहती है। यह जेट न 'ध्रुवीय अग्रभागीय' जेट जैसी ऊँची है, न तेज़।

अगर, जैसा कि मौसम-वैज्ञानिकों का ख़याल है, पृथ्वी गरम हो रही है, तो ध्रुवीय जेट पट्टी उत्तर की ओर पीछे हटती ठंडी हवा का अनुगमन करेगी। इसके विपरीत, अग्रोन्मुख हिम-युग में जेट पट्टी युद्धरत उष्ण तथा शीतल अग्रभागों की रण-पाँत के दक्षिण की ओर बढ़ने के साथ-साथ दक्षिण की ओर फैलती जाएगी। गत हिम-युग में जेट स्ट्रीमें अपने वर्तमान मार्गों से कहीं अधिक दक्षिण तक आ गई होंगी और दक्षिण में तूफानी मौसम ज्यादा आम रहा होगा। बड़े जलवायुविक परिवर्तनों के लिए जेट स्ट्रीम पट्टी मौसम-वज्ञानिकों की नई पथप्रदर्शिका है।

लगता है कि जेटें तथा अन्य उच्च पवनें पृथ्वी पर मौसम की खिवैया हैं। यहाँ तक खयाल किया जाता है कि वे तूफानों तथा बंव-डरों की 'चोटी पकड़कर' उन्हें अपने नियमित पथों से खींच लेती हैं। अंभूव के भू-भौतिकीविद इन उच्च पवनों तथा मौसम के अन्तर्सम्बन्ध

के पाने की दिशा में एक लम्बा कदम बढ़ा रहे हैं।

उठती गरम हवा और नीचे उतरती ठंडी हवा के गुब्बारे के उदाहरण पर आधारित पुराने सिद्धान्त की जगह वायुमण्डल का एक गतिशील, जटिल चित्र सामने आ रहा है। गुब्बारे वाला उदाहरण गरम तथा ठंडी हवा के स्थानीय चढ़ाव-उतार पर ही, और जैसा कि हैडले ने सुझाया था, विषुवत्तरेखा के आस-पास ही काम करता नजर आता है। वायु की विश्व-व्यापी गति में इसका उलटा ही होता नजर आता है!

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उत्तरी गोलार्द्ध पर तेजी के साथ मौसम-वैज्ञानिक स्टेशनो का जाल फैल गया। इस जाल के विवरणों से कुछ मौसम-वैज्ञानिकों को ऐसी शंका करने के कारण मिले हैं कि औसत तौर पर पृथ्वी की गरम हवा भूमि के साथ-साथ उत्तर की तरफ जाती है और ठंडी ध्रुवीय वायु बहुत ऊँचाई पर दक्षिण की ओर आती है। यह बात पिछले २०० वर्षों के वैज्ञानिक सिद्धान्तों के खिलाफ जाती है। क्या ऐसा होता है? और अगर हाँ, तो क्यों? अंभूव के मौसम-वैज्ञानिक इसका पता चलाने की कोशिश करेंगे।

गुरुत्व के नियमों के विरुद्ध इस उलट-पुलट चक्रण को जारी रखने के लिए सूर्य की ऊर्जा का विफल उपयोग होता होगा। यह खयाल किया जाता है कि युद्धरत उष्ण तथा शीतल अग्रभाग इस प्रक्रिया में अपनी ऊर्जाएँ खपाकर इससे 'गुरुत्व के विरुद्ध' काम करा लेते हैं, जिस तरह कि युद्धरत अग्रभाग अपनी कुछ ऊर्जा उच्च जेट स्ट्रीम को दे देते हैं।

मौसम-वैज्ञानिक अब यह सोचते हैं कि व्यापार पवनें, जो पृथ्वी के घूमने की दिशा के विपरीत बहती हैं, ऐसा किसी हद तक पश्चिमोन्मुखी जेटों को प्रतिसंतुलित करने के लिए करती हैं। इस प्रकार वे वायु के सामान्य चक्रण को संतुलित करती हैं।

ये सब नये विचार हैं। अंभूव के दौरान दुनिया के हर हिस्से में;

ज़मीन पर और ऊपरी हवा में लिये जाने वाले लाखों माप इनकी संगतता सिद्ध कर सकते हैं।

धीरे-धीरे हमें सभी पवनों की क्यों और किधर की वह तसवीर हासिल होने लगी है, जिसे फ्रेंकलिन ने पाने की कोशिश की थी। फिर भी इसका अधिकांश अभी तक सैद्धान्तिक ही है।

अभी तक हमने जिन मौसम-विज्ञानीय और जलवायुविक परिस्थितियों की चर्चा की है, वे लगभग पूर्णतः उत्तरी गोलार्ध में ही हैं। गल्फ स्ट्रीम, हिम-युग का उ० ध्रुव सागरीय सिद्धान्त, जेट स्ट्रीम, युद्ध-रत गरम तथा ठंडी हवाओं की पट्टी—इन सबका उत्तरी गोलार्द्ध में ही, जहाँ अधिकांश मानव-जाति रहती है, अध्ययन किया गया था। अधिकांश मौसम-केन्द्र यहीं हैं। वायुयान उत्तरी वायु प्रवाहों पर ही उड़ते हैं और अधिकांश जहाज़ भी उत्तरी समुद्रों पर ही चलते हैं।

फलस्वरूप आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, दक्षिण अफ्रीका तथा अर्जेन्टाइना के मौसम-वैज्ञानिकों को बहुत पहले से ही एक शिकायत रही है। लगभग सभी पुस्तकें, सिद्धान्त तथा प्रयोग संसार के आधे भाग का ही उल्लेख करते हैं। जब दक्षिणी गोलार्द्ध का उल्लेख किया जाता है, तो पुस्तकें प्रायः यही कहती हैं। "दक्षिणी गोलार्द्ध में पवनें उलटी दिशा में बहती हैं।"

अ०भूव के दौरान दक्षिण गोलार्द्ध को विश्वव्यापी मौसम-केन्द्रों में सम्मिलित किया जा रहा है। आस्ट्रेलिया, दक्षिण अमरीका तथा प्रमुख प्रशांत दीपों में केन्द्र स्थापित किये गए हैं। द० ध्रुवीय सागरों के ह्वेल मछली पकड़ने वाले बेड़े तक अ०भूव के केन्द्रीय मौसम-कार्यालय को रेडियो द्वारा पवनों तथा मौसम-सम्बन्धी विवरण भेज रहे हैं, इनके फलस्वरूप संसार के भूमि-आवेष्टित उत्तरी अर्धांश से उद्‌भूत अनेक मौसम-विज्ञानीय धाराएँ बदल सकती हैं।

मौसम वैज्ञानिकों का ख़याल है कि उन्होंने दक्षिणी तथा उत्तरी गोलार्द्धों के बीच प्रति छः मास के पीछे होने वाले एक वायु के विनिमय की खोज की है, यह सागर-वैज्ञानिकों द्वारा खोजे पानी के विनिमय-

जैसा ही लगता है। गरमी में सूर्य वायुमडल को गरमा देता है और एक ऋतु छोड़कर फैली हुई हवा उत्तर या दक्षिण को फैलती चली जाती है। हो सकता है कि सारी हवा के प्रतिशत के आधे से ज्यादा हवा न आती हो, लेकिन इतना भी करोड़ों टन होगा। जब यह करोड़ों टन हवा उत्तर या दक्षिण को ढिकलती है, तब क्या होता है? इसमें लगने वाली ऊर्जा का क्या होता है? पवनों और मौसम का क्या होता है? अंभूव के विश्व-मौसमी मध्यांतरों के दौरान, जो अयनों और सायनों के दौरान मौसम के दस दिवसीय गहन अध्ययन की अवधियाँ हैं, इन पवनों का पता चलाने के लिए उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्धों में खूब ऊँचाई पर उड़ने वाले गुब्बारे छोड़े जा रहे हैं। प्रत्यक्षतः इधर-उधर ढुलकती हवा की पहेली को हल करने में ये सहायता दे सकते हैं।

दक्षिणी गोलार्ध में जेट स्ट्रीम कैसी है? इस बात के संकेत हैं कि उसका आचरण लगभग उत्तरी जेट-जैसा ही है। लेकिन क्योंकि दक्षिणी गोलार्ध में पानी अधिक है और भूमि कम, इसलिए ठण्डी तथा गरम हवा के अग्रभाग बिलकुल वही रूप नहीं बनाते। इसलिए क्या जेट स्ट्रीम दक्षिण में कम अनियमित है? अक्सर दक्षिण अफरीका, आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलेंड जाने वाले व्यापारिक वायुयानों के चालक यह बात जानना चाहेंगे। दक्षिणी जेट स्ट्रीम की जानकारी से धन की बहुत बचत होगी और विमान-चालकों को उन वायु 'राजमार्गों' तथा 'नदियों' का आभास मिल जाएगा, जिनसे उनका वास्ता पड़ता है।

उत्तर ध्रुव से दक्षिण ध्रुव तक जाती अंभूव मौसम विज्ञानीय केन्द्रों की तीन पंक्तियाँ स्थापित की गई हैं। एक पंक्ति उत्तर तथा दक्षिण अमरीका (८०° पश्चिमी रेखांश) होकर जाती है, एक पंक्ति यूरोप तथा अफरीका (१०° पूर्वी रेखांश) होकर जाती है और एक पंक्ति सोवियत संघ में होकर साइबेरिया और जापान से (१४०° पूर्वी-रेखांश) गुज़रती है।

भू-स्थित उपकरण और गुब्बारे, रेडियो, राडार, रॉकेट तथा वायुयान हर स्तर पर संसार के वायुमण्डल के हर हिस्से के दैनिक नमूने

प्राप्त कर रहे हैं, मौसम-वैज्ञानिक पवनों, तापों, दावों तथा आर्द्रता का अध्ययन कर रहे हैं। वे ओजोन परत की, जो कोई २० मील की ऊँचाइ से शुरू होती है, भी तहकीकात कर रहे हैं। सूर्य की अधिकांश पारवैंगनी किरणें यहीं अवशोषित होती हैं, जिससे इन मापों द्वारा मौसम के सौर-शिखा सिद्धान्त की भी जाँच की जा रही है।

इस विश्वव्यापी जाल का दक्षिणी केन्द्र है ऊँची, बर्फ़ीली, निर्जन चादर पर दक्षिण ध्रुव पर स्थित अमरीकी मौसम अध्ययन-केन्द्र द० ध्रुव प्रदेशीय केन्द्रीय मौसम कार्यालय। द० ध्रुव हिम प्रदेश का यह ५०,००,००० वर्गमील का प्रदेश पृथ्वी का सबसे ठण्डा स्थल है। इस ऊँचे पठार पर अतीव शीतल, सघन वायु अंभूव के एक प्रमुख भू-भौतिकीविद के शब्दों में 'ढुलकती' जेली के एक विशाल ढेर' की तरह ठहरी हुई है।

इन ऊँचाइयों पर से, बर्फ़ की घाटियों में होकर किसी-किसी दिन १०० मील प्रति घण्टे तक की औसत चाल से पवनें समुद्र की ओर जाती हैं। कुछ स्थलों पर महीने का औसत ६५ मील प्रति घण्टा है, और साल-भर का ४० मील प्रति घण्टा से अधिक, सितम्बर, १९५७ में दक्षिण ध्रुव या अमरीकी केन्द्र में—१०२·१° फा० ताप दर्ज किया गया था। यह ख़याल किया जाता है कि ताप गिरकर—१२०° फा० तक जा सकता है। निम्न ताप का पुराना रेकार्ड साइबेरिया में—९३·७° फा० का था।

द० ध्रुव के तल पर संसार में सबसे ठण्डी कम दाव वाली हवा का एक घेरा है। यहाँ पर सागरतलीय पवनें महाद्वीप के इर्द-गिर्द एक निरन्तर चक्र में चलती हैं। कभी-कभी पठार पर से सघन ठण्डी हवा की भारी राशि आ गिरती है। पानी में गिराई एक विशाल शिला की भाँति वह सारे संसार पर वायु-दाब के वलयों को विकरणित करती भेज देती है।

क्या उ० ध्रुव प्रदेश की ठण्डी हवा शेष संसार की हवा से मिलती है? अगर हाँ, तो कैसे? जैसे दक्षिण गोलार्ध में यह हवा उत्तर की ओर जाती है, अंभूव के मौसम-वैज्ञानिक इसके चक्रण को अंकित करने

की कोशिश कर रहे हैं। अंभूव के इस प्रयास के अंगस्वरूप द० ध्रुवीय केन्द्राय मौसम कार्यालय दुनिया-भर के मौसम केन्द्रों को रेडियो द्वारा रिपोर्टें प्रेपित की जा रही हैं।

चूँकि संसार के मौसम की समझ के लिए द० ध्रुव प्रदेश के मौसम की जानकारी वहुत महत्वपूर्ण है, इसलिए द० ध्रुव प्रदेश में अंभूव के वैज्ञानिक कर्मचारियों में अधिकतर ..ौसम-वैज्ञानिक ही हैं।

उत्तरी गोलार्ध के मौसम का एक बड़ा भाग ग्रीनलैंड के उच्च हिम-प्रदेश पर ही बनता है। इसलिए ग्रीनलैंड में अब एक अलग मौसम-अनुसंधान-कार्यक्रम चल रहा है।

उत्तर और दक्षिण में फैला अंभूव का मौसम-केन्द्रों का जाल पूर्व और पश्चिम में फैली केन्द्रों की पाँत से सम्बद्ध है। वाणिज्यिक वायुयान कम्पनियाँ, जहाँ-जहाँ उनके वायुयान उड़ते हैं, मौसम-सम्बन्धी सूचना एकत्र कर रही हैं और मछली पकड़ने वाले वेड़े सागर-तल पर सूचना एकत्र कर रहे हैं। जो वात सबसे महत्वपूर्ण है, वह यह है कि इस विस्तृत जाल के हजारों केन्द्र एक साथ काम कर रहे हैं। संसार के सभी भागों में एक ही समय गुब्बारे और रॉकेट उठ रहे हैं, मौसम केन्द्र 'आकस्मिकता की खबरदारी' पर फ़ोर्ट बेल्वोइर, वर्जीनिया (अमरीका) से अंभूव के विश्व आगाही अभिकरण से इस खबर को देने वाले रेडियो संकेत की प्रतीक्षा में रहते हैं कि कोई सौर-शिखा देखने में आई है। संकेत मिलते ही विशेप गुब्बारे, रॉकेट तथा वायुयान ऊपर भेजे जाते हैं। इन शिखाओं के साथ-साथ आने वाली पारवैंगनी किरणों तथा कण-प्रवाहों को संसार के हर भाग में मापा जाता है।

इस तरह भू-भौतिकीविदों को परेशान करने वाले मौसम-विज्ञानीय प्रश्नों को पृथ्वी की विशाल प्रयोगशाला में जाँचा जा रहा है। इस प्रयास से निस्संदेह नये सिद्धांत तथा तथ्य प्रकट होंगे।

अंभूव की समाप्ति के वाद मौसम-वैज्ञानिक सम्भवतः एक विश्व-व्यापी प्रणाली के अधिक निकट आ जाएँगे। यह समस्या इतनी जटिल है कि इसके आँकड़े विशालतम इलेक्ट्रानी 'मस्तिष्क' या संगणक द्वारा

ही हल किये जा सकेंगे।

संसार के सभी भागों से प्राप्त पवनों, ताप, आर्द्रता, दाब, मेघावरण, सूर्य शिखा-प्रभाव और उल्का-धूलि की मात्रा तथा सम्बन्धी आँकड़े इस संगणक में डाल दिए जाएँगे। तब शायद शत-प्रतिशत अमूकता के साथ मौसम की भविष्यवाणी करना सम्भव न हो। एक मौसम वैज्ञानिक ने हँसी में कहा है—"दुनिया का मौसम बड़े-से-बड़े इलेक्ट्रानी मस्तिष्क के लिए सर-दर्द हो जाएगा!"

एक यंत्र, जो ऐसी इलेक्ट्रानी भविष्यवाणी को अचूक बना सकता है, भू-उपग्रह है, क्योंकि यह पृथ्वी के मौसम में होने वाले सभी परिवर्तनों पर, और साथ ही सूर्य पर होने वाले सभी परिवर्तनों पर भी निरंतर आँख रख सकता है। हो सकता है कि एक दिन हम एक खरबों डालर लागत की एक अंतर्राष्ट्रीय भविष्यवाणी-प्रणाली स्थापित कर सकें, जो कई दिशाओं में पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले मौसमी उपग्रहों का, और महासागरों, वायु सूर्य तथा अवकाश की नाड़ी को सतत सुनते रहने वाले रेडियो द्वारा जुड़े हजारों मौसम-केन्द्रों का उपयोग करे। तब पृथ्वी के मौसम और जलवायु का भेद हल हो जाएगा। हम पृथ्वी के रूपों में एक कठिनतम रूप को जान जाएँगे।

: ६ :

चुम्बकत्व का क्षेत्र

समुद्रों, सूर्य, चन्द्रमा तथा तारों को देखा जा सकता है। सूर्य की गरमी और पवनों तथा पानी की गति का अनुभव किया जा सकता है। लेकिन हम एक ऐसे 'समुद्र' में रहते हैं, जिसे न देखा जा सकता है, न अनुभव किया जा सकता है। यह चुम्बकत्व का समुद्र है, यह हमारे वायुमण्डल पर छाया हुआ है, अन्तरिक्ष में दूर तक फैला है और ठोस पृथ्वी को इसने उसके क्रोड (छोर) तक भेद रखा है।

चुम्बकीय क्षेत्र सूर्य के प्रति पवनों और महासागरों से भी अधिक संवेदी है। पृथ्वी की समझ के लिए यह बड़े महत्व का है। भू-भौतिकीविदों की कठिनतम समस्याओं में से एक इस अस्थिर, भ्रमणशील, अदृश्य क्षेत्र के रूपों में सन्निहित है, जो हमें सूर्य, पृथ्वी की आंतरिक क्रोड और विराट आकाशगंगा से जोड़ता है।

अंभूव के लिए १९५७-५८ का साल ही इसलिए चुना गया कि यह ग्यारहवर्षीय सूर्य-कलंक-चक्र के एक चरम के साथ पड़ता है, जो पृथ्वी पर बड़े चुम्बकीय तूफानों का काल होता है। पार्थिव चुबम्कीय तूफानों के परिणाम आधुनिक जीवन में व्यवहृत अनेक वैद्युतिक युक्तियों—राडार, रेडियो, टेलीफोन तथा इलेक्ट्रानी नौकायन प्रणालियों—में अनुभव किये जाते हैं।

पृथ्वी का चुम्बकत्व भी भू-भौतिकीय अनुसन्धान के महत्वपूर्ण साधनों में एक बन गया है। इसने मनुष्य की पृथ्वी की सतह, उसकी गहराई, उसके वायुमण्डल तथा उसके आगे के अवकाश की खोज में सहायता की है। आधुनिक विद्युत् की खोज में इसने एक निर्णायक भाग लिया है।

चुम्बकत्व की खोज बहुत ही सामान्य तरीके से—एक पत्थर के

टुकड़े में—हुई थी। ४००० साल से ज्यादा पहले चीनी जादूगर चुम्बक पत्थर के टुकड़ों से करतब दिखाकर देखने वालों को अचम्भे में डुबाया करते थे। कोई २७०० ई० पू० चीनी लोग एक आदिम 'कुतुबनुमा' इस्तेमाल करने लगे थे, यद्यपि यह मालूम नहीं पड़ता कि वे इसका उपयोग एक खिलौने के तौर पर करते थे या दिशा-निर्धारण के लिए।

चुम्बकत्व के क्षेत्र में अभूव की एक बड़ी समस्या का सम्बन्ध दिक्सूचक के उपयोग में पैदा होने वाली नौकायन सम्बन्धी कठिनाइयों से है। सैकड़ों वर्षों से इन कठिनाइयों की जाँच चल रही है, लेकिन वैज्ञानिक अभी दिक्सूचक की सभी घट-बढ़ों और त्रुटियों के सभी कारण नहीं बता सकते। इलेक्ट्रानी मार्गदर्शन, स्वचलित उड़ानों तथा यंत्रों द्वारा 'अन्धी' उड़ाई के इस युग में दिक्सूचक की चुम्बकीय अव्यवस्थाएँ बहुत महत्व रखती हैं।

पृथ्वी की खोज में चुम्बकत्त्व तथा दिक्सूचक द्वारा सदा की भूमिकाओं की समझ अभूव की समझ के लिए परमावश्यक है।

कोलम्बस के बहुत पहले से नाविक दिक्सूचक का उपयोग कर रहे थे। फोनीशियाई लोग १००० ई० पू० में भी इसका उपयोग करते रहे होंगे, लेकिन वे अधिकांशतः तारों को देखकर और तटों का अनुसरण करके ही नौकायन करते थे। यूनानियों ने चुम्बक पत्थर की जानकारी प्रत्यक्षतः फोनीशियाइयों से ही हासिल की थी और उन्होंने इसका नाम उसी जगह—एजियन सागर-तट पर स्थित मैग्नीशिया—पर ही रखा, जहाँ उन्हें यह मिला था। लेकिन यूनानी लोग भी दिक्सूचक के बिना ही नौकायन करते थे।

दिक्सूचक पर निर्भर करने वाले पहले जहाजी बहुत करके वाईकिंग लोग थे। मेघाच्छन्न उत्तरी आकाश में जब सूर्य तथा तारे नज़र नहीं आते थे, तो दिक्सूचक उन्हें मोटा दिशा-ज्ञान देता था।

कोलम्बस ने दिक्सूचक का अच्छा उपयोग किया। उसके समय के कम चालकों को ही ज्योतिर्विज्ञान का ज्ञान था, लेकिन वे यह

अवश्य जानते थे, कि यूरोप के तटों के निकट चलते समय दिक्सूचक मोटे तार पर उत्तर की ओर ही इंगित करेगा। कुछ जहाज़ी इसका कारण चुम्बक पत्थर के पहाड़ बताते थे, जो उनके खयाल से ग्रीनलैंड की दिशा में था। का दावा यह था कि दिक्सूचक की सुई उत्तर की ओर ध्रुव तारे के खिंचाव के कारण रहती है। किसी भी सूरत में, यह यूरोपीय समुद्रों पर नौकायन के लिए अचूक मार्ग-दर्शक शुरू-शुरू में नज़र आता था।

लेकिन धीरे-धीरे जहाज़ियों का ध्यान एक अजीब चीज़ की तरफ जाने लगा। दिक्सूचक की सुई कोई स्थिर मार्गदर्शक नहीं थी। यह उत्तर दिशा से कभी ५° से, तो कभी १०° से हटती रहती थी। अपनी यात्राओं के दौरान कोलम्बस का ध्यान इस ओर गया था। जल्दी ही जहाज़ियों का ध्यान दूसरी विभिन्नताओं की ओर भी गया। जहाज़ के उ० ध्रुव जल में प्रवेश करने के साथ दिक्सूचक की सुई की नोक समुद्र की ओर झुक जाती थी और दूर दक्षिण की ओर—द० ध्रुव प्रदेश की ओर जाते समय उसकी नोक ऊपर की तरफ़ उठ जाती थी और दुम नीचे की तरफ़।

यह अद्भुत चुम्बकीय बल क्या था? यह अचर क्यों नहीं था? अज्ञात सागरों में जहाज़ जितने ही आगे जाते, सुई के 'झुकने' और 'बदलने' की उतनी ही ज्यादा रिपोर्टें मिलतीं। ग्रीनलैंड के आगे तो दिक्सूचक वास्तविक उत्तर के पूरे ४०° पश्चिम की ओर इंगित करता था।

१५५६ में यूरोप के सिरे पर होकर उ० ध्रुव महासागर के नीचे के सागरों में पहले जहाज़ जाने लगे। यहाँ सुई 'सागर की ओर झुक-कर लगभग अपनी नोक पर ही खड़ी हो जाती थी। और उत्तर की अपेक्षा यह पूर्व की ओर अधिक इंगित करती थी।' जहाज़ों के कप्तानों ने नमन तथा विचलन के कोणों के विवरण दिये, क्योंकि यदि इन सागरों में और जहाज़ जाते तो उनकी सुरक्षा, विशेषकर चट्टानी तटों के पास कुहरे में, इस जानकारी पर निर्भर करती कि दिक्सूचक

कैसा आचरण करेगा।

दिक्सूचक को खींचने वाला बल न पहाड़ हो सकता था और न कोई तारा, क्योंकि सुई समुद्र की ओर झुकती थी और बदलती रहती थी। रॉबर्ट नॉर्मन नाम के दिक्सूचक-निर्माता ने देखा कि उसकी सूइयाँ इंगलैंड तक में धरती की तरफ नमती हैं, और इससे उसने निश्चय कर लिया कि चुम्बक या 'बल' पृथ्वी में खूब गहराई पर दबा है।

जहाजी कप्तानों तथा दिक्सूचक-निर्माता ने सबसे पहले आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोग तथा सर्वप्रथम और अपूर्व भू-भौतिकीय प्रयोग की ज़मीन तैयार की।

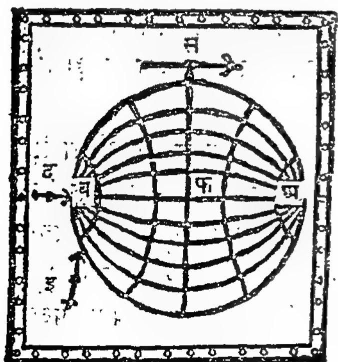
१६०० में विलियम गिल्वर्ट नामक लन्दन के एक डॉक्टर ने 'चुम्बक' (दि मेगनेते) नाम की एक किताब प्रकाशित की, जिसमें उसने इन प्रथम प्रयोगों का वर्णन किया। गिल्वर्ट ने दिक् सूचक के अनियमित आचरण के बारे में सुना था और उसने कई जहाज़ियों से बात की थी। उसने चुबक पत्थर का पृथ्वी का एक छोटा-सा नमूना बनाया और इसे 'छोटी पृथ्वी' या टैरेल्ला का नाम दिया। इस गोले पर उसने अक्षांशों तथा रेखांशों को अंकित किया और फिर उसकी सतह पर एक नाविकीय दिक्सूचक घुमाया। सूई उसी प्रकार नमी, जिस प्रकार वह सागरों पर नमी थी। भूमध्य रेखा के पास कोई नमन न था—यह जहाजियों का ज्ञात तथ्य था—और जैसे-जैसे दिक्-सूचक गोले पर ऊपर उठाया गया, सूई अपने सिर के बल खड़ी होने लगी।

गिलबर्ट ने निष्कर्ष निकाला कि पृथ्वी एक चुम्बकीय गोला है। उसने कुछ चुम्बकीय लोहे (मेग्नेटाइट) को इतना गरम किया कि उस का चुंबकत्व जाता रहा, अब उसने इसे तोला। उसका वज़न पहले जितना ही था। इसलिए उसने निष्कर्ष निकाला कि चुम्बकत्व में कोई भार नहीं है। अब उसने यह सिद्ध करने की तैयारी की कि चुम्बक पत्थर का चुम्बकत्व पृथ्वी से ही आता है।

गिल्बर्ट इंगलैंड की एक नयी लोहा-खदान पर गया। "हमने एक २० पौंड भारी चुम्बक पत्थर खुदवाकर निकलवाया और उसे देख लेने के बाद उसके सिरों पर निशान लगवा दिए। फिर हमने इस पत्थर को एक तख्ते पर रखकर एक लकड़ी के टब में पानी पर रखवा दिया। तुरन्त ही उसका वह सिरा, जो खदान में उत्तर की तरफ था, पानी पर उत्तर की तरफ मुड़ गया।" चुम्बक को अपने चुम्बकत्व की दिशा पृथ्वी से प्राप्त हुई थी।

इसका अर्थ चकित कर देने वाला था—ठोस पृथ्वी एक चुम्बक थी। वह लगातार लोहे को अपनी ओर आकर्षित करती या खींचती थी।

इस प्रथम वैज्ञानिक प्रयोग के पीछे-पीछे तेजी के साथ नये आविष्कार और विचार आये। गैलीलियो और न्यूटन के विचारों को छोड़कर कम ही विचार गिल्बर्ट जितने महत्त्वपूर्ण थे, क्योंकि उसने अपने प्रयोग के लिए 'पृथ्वी' शब्द का उपयोग किया था—उसने पृथ्वी का एक नमूना बनाकर उसकी जाँच की थी और परिणामों की जहाजी कप्तानों के अनुभवों से तुलना की थी। इसलिए विज्ञान के नये युग का तथ्य 'भू-भौतिकीय' था—इस बात का प्रमाण कि घटना—चुम्बकत्व—सारे गोले पर फैली है, मगर फिर भी उसकी सतह पर हर जगह वह भिन्न-भिन्न भी है।



आकृति ८—गिल्बर्ट का बनाया अपनी तेरेल्ला का रेखाचित्र। इसमें दिक्सूचक का नमन दरशाया गया है। उत्तर ध्रुव बाईं ओर है, विषुववृत्त 'स' पर है।

फिर भी गिल्वर्ट गलती पर था, क्योंकि पृथ्वी चुम्बक पत्थर की गेंद नहीं है और दिक्सूचक का आचरण इतना सरल नहीं है—भूमध्य रेखा से उत्तर या दक्षिण ध्रुव जाते समय ऊपर या नीचे नमना ही। चुंबकत्व का समुद्र मौसम-जैसा ही अचर और गतिशील है।

यद्यपि पृथ्वी के चुम्बकीय 'क्षेत्र' में वैभिन्य के बारे में काफी कुछ मालूम है, फिर भी अ भूव के वैज्ञानिक ज्यादा जानने का यत्न कर रहे हैं, क्योंकि इन विभिन्नताओं का जितना ज्यादा अध्ययन किया जाए, वे उतनी ही जटिल होती लगती हैं।

१५८० में जब रावर्ट नार्मन न यह पता लगाया कि सूई पृथ्वी की तरफ कुछ नमती है, तब उसे यह भी मालूम था कि उत्तर की ओर इंगित न करके ध्रुव के १०° पूर्व की ओर इंगति करती है। लेकिन १६६० तक लंदन में दिक्सूचक की सूई ठीक उत्तर की ओर इंगित करने लगी थी। १७७० तक यह ७° पश्चिम की ओर चली गई थी और १८२० तक यह २४° पश्चिम हो गई थी। तब से यह फिर उत्तर की तरफ़ मुड़ने लगी है और १९५२ में यह ९° पश्चिम की ओर इंगित कर रही थी।

यह चुम्बकीय सागर इस तरह स्थान क्यों बदल रहा है और अपने साथ दिक्सूचक की सूई को भी क्यों खींच रहा है, भू-भौतिकीविद अभी भी इसका पता चलाने को कोशिश कर रहे हैं।

जहाजी कप्तानों तथा चालकों के ध्यान में सूई के और भी विचलन आने लगे। १६०८ में जब हेनरी हडसन अपने जहाज को लेकर हडसन की खाड़ी में घुसा, तो उसने गिल्वर्ट के 'नमन' की जाँच की और देखा कि उत्तर ध्रुव से पूरे १५° पर ही सूई अपने सिर पर ऊर्ध्वाधर खड़ी है। गिल्वर्ट के अनुसार ऐसा केवल स्वयं ध्रुव पर ही होना चाहिए था। हडसन को इस बात का पता न था, किन्तु वह चुम्बकीय—या 'नमन'—ध्रुव के बहुत निकट था।

धीरे-धीरे और विचलन भी देखे गए। उत्तर की ओर बढ़ने के

साथ-साथ चुम्बकीय क्षेत्र तीव्रतर होता जाता था, अर्थात् सूई पर उसका खिचाव बढ़ता जाता था। लेकिन अधिक तेज़ जो होता था, वह उत्तर की तरफ़ बढ़ने जाने के साथ सूई का पृथ्वी की ओर नमन था, न कि क्षैतिज दिशासूचक वल, जो दिक्सूचक पर पड़ी हुई लगी सूई को इधर-उधर घुमाता है। अब हम जानते हैं कि वह पृथ्वी के इर्द-गिर्द की 'वल-रेखाओं' के कारण है, जो भू-चुम्बकीय ध्रुव के निकट पहुँचने के साथ-साथ अधिकाधिक ऊर्ध्वाधर होती जाती हैं। जहाज़ी कप्तान केवल यही जानते थे कि जैसे-जैसे वे उत्तर की ओर बढ़ते जाते हैं, उनकी ज़मीन के समतल रखी दिक्सूचक सूइयाँ धीमी और कमज़ोर होती जाती हैं।

गिल्बर्ट के बाद हर कप्तान ने सूई के आचरण को जानना अपना कर्तव्य बना लिया। १६वीं, १७वीं तथा १८वीं सदियों में कई जहाज ऐसे उत्तरी तट से टकराकर डूब गए, जिन्हें दिक्सूचक तथा नक्शों के मुताबिक वहाँ होना ही नहीं चाहिए था। उत्तरी समुद्रों में, जहाँ दिक्सूचक कमज़ोर होता था, लोहे की कीलें और तार तक दिक्सूचक को विचलित करके जहाज़ को टकरवा सकते थे। उ० ध्रुव प्रदेश की खोज करने वाले एक अंग्रेज जहाजी कप्तान ने लिखा था, "सभी चुम्बकीय पर्यवेक्षण ''जहाज़ के मस्तूल के ऊपर से ही किये गए, क्योंकि जहाज़ का यही भाग ऐसा था जहाँ दिक्सूचक के दिशा-निर्देश विश्वसनीय हो सकते थे।"

आज भी उ० ध्रुव तथा द० ध्रुव प्रदेश पर उड़ने वाले वायुयान-चालक अपने दिक्सूचक को बेकार ही पाते हैं, क्योंकि उसकी सुस्त सूई यान की धातु से तथा इलेक्ट्रानी उपकरणों से आकर्षित होने लगती है। इसलिए अंभूव में भाग लेने वाले वायुयान वलय-दिक्सूचकों (जायरो कम्पास) से लैस हैं, जो चुम्बकीय नहीं होते और जो अपकेंद्रीकरण द्वारा स्थिर पथ पर रहते हैं।

गिल्बर्ट के समय से ही वैज्ञानिकों ने चुम्बकीय विभिन्नताओं को एक चुनौती माना है। १८वीं तथा १९वीं सदियों-भर अलास्का, साइबेरिया,

उत्तर कनाडा तथा ग्रीनलैंड की वैज्ञानिक अनुसंधान यात्राओं का मुख्य उद्देश्य चुंबकीय प्रेक्षण ही था। इसमें आदमी और जहाज़ डूबे और इस युग के साहसिक साहित्य का एक बड़ा अंग उ० ध्रुवीय जल में वीरता की गाथाओं का ही था। १८२५ में एक जहाज़ पृथ्वी को घेरने वाले **चुम्बकीय विषुववृत्त** को रेखांकित करने में सफल हो गया। चुम्बकीय विषुववृत्त वह बिंदु है, जहाँ दिक्सूचक की सूई कोई नमन नहीं प्रदर्शित करती। यह लगभग भौगोलिक विषुववृत्त-सा ही है, यद्यपि एकदम उस-जैसा नहीं।

१८३३ में एक दूसरे जहाज़ ने हडसन खाड़ी के ऊपर चुम्बकीय उत्तर ध्रुव का पता चलाया। अब द० ध्रुव के सभी बड़े देशों में स्थापित वेधशालाओं में प्रति घंटे के बाद चुम्बकीय पाठ्यांक लिये जा रहे थे और इससे एक नयी विभिन्नता का पता चला—चुम्बकीय क्षेत्र नित्य बदलता है! दिक्सूचक की सूई की ये अल्पकालिक तथा तीव्र विभिन्नताएँ सूर्य के कारण थीं। इसके अलावा यह भी पता चला कि सूर्य-कलंकों में वृद्धि के साथ ये विभिन्नताएँ भी बढ़ जाती थीं। गिल्बर्ट द्वारा चुम्बक पत्थर के बनाए जाने के दो सौ अस्सी साल बाद यह समस्या इतनी जटिल हो गई कि यह स्पष्ट हो गया कि इसे हल करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास आवश्यक है।

इसलिए १८८२ में अन्तर्राष्ट्रीय ध्रुवीय वर्ष संगठित किया गया। 'चुम्बकीय सागर' का अध्ययन करने के लिए बारह अभियान-दल उ० ध्रुव तथा द० ध्रुव प्रदेशों के सभी भागों को गये। इसमें भाग लेने वाले देश के आस्ट्रेलिया, हंगरी, डेनमार्क, इंगलैंड, फिनलैंड, जर्मनी, नीदरलैंड्स, नारवे, रूस, स्वीडन तथा अमरीका। पृथ्वी की घटना को समझने के प्रयास का यह पहला सहकारी और समसामयिक वैज्ञानिक कार्य था।

ध्रुवीय वर्ष के परिणाम ऐतिहासिक थे। अंभूव की भाँति यह भी अधिकतम सूर्य-कलंक सक्रियता की अवधि में आयोजित हुआ था। चुम्बकीय क्षेत्र की विभिन्नताओं का विश्लेषण करके वैज्ञानिकों ने पता

चलाया कि क्षेत्र का ६८ प्रतिशत पृथ्वी की गहराई के भीतर की प्रक्रिया के कारण हैं और २ प्रतिशत ऊपरी वायुमंडल में रहस्यमय प्रक्रियाओं के कारण है। अन्तर्राष्ट्रीय ध्रुवीय वर्ष के वैज्ञानिकों ने नाटकीय विद्युत्-चुम्बकी प्रक्रियाओं के इस प्रदेश का, उत्तरीय प्रभा-मंडलीय प्रदेश या उत्तरी प्रकाशों की भूमि का पहला 'चुम्बकीय नक्शा' बनाया।

पृथ्वी के चुम्बकत्व के ऊपरी वायुमंडलीय परिवर्तन इतने सूक्ष्म होते हैं कि सामान्य जहाजों के दिक्सूचकों की पकड़ में नहीं आ सकते। फिर भी तेज़ घटाव-बढ़ाव वाला क्षेत्र का यह २ प्रतिशत ही उ० ध्रुव व द० ध्रुव प्रदेशों में और पृथ्वी के आस-पास अंभूव के चुम्बकीय अध्ययनों का मुख्य लक्ष्य है।

अंभूव के दौरान वैज्ञानिक कई अन्तर्राष्ट्रीय ध्रुवीय वर्ष के केन्द्रों पर जाकर गत ७५ वर्षों में आए चुम्बकीय सागर के बहावों और परिवर्तनों की जाँच कर रहे हैं।

लगभग पहले ध्रुवीय वर्ष के समय ही चुंबकत्व के अध्ययन ने आधुनिक विज्ञान के दूसरे चरण के समारंभ में सहायता दी। १६वीं सदी में फ़ैराडे नाम का अंग्रेज़ भौतिकीविद और अन्य वैज्ञानिकों के प्रयोगों ने चुम्बकत्व तथा विद्युत् के संबंध को स्पष्ट कर दिया था। फ़ैराडे ने देखा कि विद्युत्-धारा का प्रभाव एक चुम्बकीय क्षेत्र पैदा कर देता है। विद्युत्धारा से दिक्सूचक उतनी ही आसानी से आकंपित या विचलित होगा, जितना कि गिल्वर्ट की ठोस 'छोटी पृथ्वी' से होता था। इसके विपरीत गतिशील चुम्बक विद्युत्धारा उत्पन्न करता है। इन दो तथ्यों की स्थापना के बाद नगरों के बीच तार द्वारा संदेश भेजे जाने में अधिक देर नहीं लगी। अटलांटिक के आर-पार पहला केबल डाला गया, टेलीफोन का आविष्कार हुआ। इन सभी ईजादों में विद्युत् एक तार के दूसरे छोर पर जाकर नन्हे-नन्हे चुम्बकों को गतिशील कर देती थी, जिनकी गति संकेतों या आवाज़ में रूपांतरित हो जाती थी। जल्दी ही यह पता चला कि पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में परिवर्तन इन

संचार-साधनों को प्रभावित करते हैं। चुम्बकीय 'तूफ़ानों' के दौरान संदेश विकृत हो जाते थे और टेलीफ़ोन पर अजीब आवाजें सुनाई देती थीं।

१८६६ में चुम्बकत्व को पहली वैज्ञानिक व्याख्या मिली। जेम्स क्लार्क मक्सवेल नाम के एक अंग्रेज भौतकीविद ने इसे विद्युत्धारा के स्पंदनों द्वारा प्रेषित ऊर्जा की अदृश्य तरंगें बताया। उसने कहा कि स्वयं प्रकाश भी सूर्य से उत्पन्न एक प्रकार की विद्युत-चुंबकीय तरंग है। मैक्सनेबेल ने यह सिद्धांत रखा कि किसी भी गरम, दीप्त वस्तु से, जिसके नन्हे परिमाणिक कण कंपन करते हैं, प्रकाश-तरंगों का उत्सर्जन होता है।

जल्दी ही प्रयोगशालाओं में सूक्ष्म विद्युत् स्फुलिंगों की दमक द्वारा अदृश्य तरंगें उत्पन्न की जाने लगीं। हर स्फुलिंग इतना तीव्र होता था कि वह एक ही 'तरंग' देता था। वेतार का तार, रेडियो तथा टेलीविजन का वक्त आ गया था। और अब पृथ्वी के चुम्बकत्व में विभिन्नताएँ वेतार के तार, रेडियो और टेलीग्राफ संचार को भंग करने लगीं।

भू-भौतिकीविदों के लिए मैक्सवेल का सिद्धांत गिल्वर्ट के अपनी 'छोटी पृथ्वी' के साथ प्रयोगों के प्रदर्शन के समय से सबसे महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रगति थी। यह स्पष्ट हो गया कि पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र पर नित्य सूर्य के किसी अज्ञात विकिरण का प्रभाव पड़ता है। फलस्वरूप पृथ्वी तथा उसके वायुमंडल के सूर्य के साथ संबंध का अध्ययन करने वाले भू-भौतिकीविदों के लिए भी चुम्बकीय क्षेत्र महत्त्वपूर्ण हो गया। किसी हद तक यह अनुभूति भी प्रथम ध्रुवीय वर्ष आयोजन का कारण थी।

इस अदृश्य तथा परिवर्तनीय सागर के रहस्योद्घाटन की दिशा में अद्यतन पग अभूव उठा रहा है। यह खोज एक विश्वव्यापी अन्तर्राष्ट्रीय, अन्तरसौर पारिवारिक जासूसी कहानी बन गई है। जैसा हम देखेंगे, इसके सुराग नीचे पृथ्वी के केन्द्र तक और बाहर आकाश

गंगा तक ले जाते हैं।

अंगूर के वैज्ञानिकों की बुनियादी दिलचस्पी पृथ्वी के चुम्बकत्व में विभिन्नताओं में है, न कि पृथ्वी के क्षेत्र के उस विशालतर अंग में, जो अपेक्षाकृत अचर है। ये विभिन्नताएँ दो प्रकार की हैं—एक तो वह, जो भूगर्भ में होती है; और दूसरी वह, जो पृथ्वी के बाहर होती हैं। सूर्य के कारण उत्पन्न दो प्रतिशत क्षेत्र में विभिन्नताएँ बहुत तीव्र होती हैं। यहाँ चुम्बकीय 'तूफानों' के दौरान दिक्सूचक की संवेदी सूई पर खिचाव-शक्ति तथा दिशा में कभी-कभी दिनों, घण्टों, मिनटों और सैकंडों तक बदलता रहता है। दूसरी तरह की विभिन्नता क्रमिक है—चुम्बकत्व का क्षेत्र या 'सागर' पृथ्वी की सतह पर धीरे-धीरे पश्चिम की ओर सरकता नजर आता है। इस सरकन की चाल ११ से १५ मील सालाना है, इसलिए क्षेत्र को पृथ्वी की परिक्रमा करने में १६०० वर्ष से अधिक लगेंगे। इस सरकते सागर के अपने भ्रमर और प्रवाह हैं, तथा इसकी शक्ति बदलती रहती है।

चुम्बकत्व के मन्द गति के भ्रमणशील 'सागर' से इस धारणा को बल मिलता है कि भूगर्भ में गहराई पर एक ऐसा क्रोड होना चाहिए, जो इस बहते 'समुद्र' की गति से ही घूमता है। यह एक गरम तथा तरल क्रोड होना चाहिए, जो अपने आस-पास की भू-संहति से भिन्न गति पर चक्कर काटता है। इस सिद्धांत का कथन है कि पिछले लोहे तथा निकिल के इस भारी क्रोड की गति एक डायनमो-जैसा काम करती हुई पृथ्वी का चुम्बकत्व उत्पन्न करती है। चूँकि यह तरल शेष पृथ्वी की अपेक्षा धीमी चाल से घूमता है, इसलिए चुम्बकीय क्षेत्र धीरे-धीरे पीछे सरकता जाता है। लेकिन यह सिद्धांत कई सवालों का समाधान नहीं कर पाता—यह गति विद्युत् धाराएँ तथा चुम्बकीय क्षेत्र होकर उत्पन्न करती है? अगर ऊँचे ताप से चुम्बकत्व नष्ट हो जाता है, तो पृथ्वी के क्रोड में ऐसा क्यों नहीं होता? अभी तक इनके उत्तर नहीं मिल पाए हैं।

चुम्बकीय क्षेत्र की विभिन्नताओं तथा चुम्बकत्व के रहस्य की

ज्यादा अच्छी समझ पैदा हो जाने पर इनके उत्तर मिल सकते हैं। चुम्बकीय विभिन्नताओं के विश्वव्यापी रूप का अभूव के वैज्ञानिक अध्ययन कर रहे हैं। उन द्वारा प्राप्त जानकारी हमें पृथ्वी के भीतर होने वाली घटनाओं की समझ के अधिक निकट ले आएगी।

भू-भौतिकीविदों ने हाल ही में एक नयी बात का पता लगाया है, जो उनके खयाल में भ्रमणशील चुम्बकीय क्षेत्रों का अध्ययन करने का एक नया तरीका है। अनेक चट्टानों में नाविकीय दिक्सूचक जितने ही संवेदी सूक्ष्म चुम्बकीय 'दिक्सूचक' होते हैं। ये चट्टानें ज्वालामुखियों से निकलने वाले गरम लावा से बनी थीं। लावा में चुम्बकीय लोहे के कण होते हैं, जो तैरते दिक्सूचकों का काम करते हैं। जब यह लावा ठण्डा हुआ, तो लोहे के ये कण 'जमकर' लावा निकलने के समय पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की दिशा के अभिलेख बन गए।

संसार के विभिन्न भागों में एक-पर-एक लावा की सैकड़ों परतें हैं। हर परत में नन्हे 'दिक्सूचक' गत ६०,००,००,००० वर्ष तक का पृथ्वी का चुम्बकीय चित्र प्रस्तुत करते हैं।

इन चट्टानों में 'दिक्सूचकों' की दिशा का अध्ययन करके भू-भौतिकीविदों ने कुछ चकित कर देने वाले सिद्धांत निकाले हैं। पृथ्वी के अक्ष का उत्तरी छोर, उत्तर ध्रुव, गत साठ करोड़ वर्षों में शराबियों की तरह भटकता रहा है। किसी समय यह प्रत्यक्षतः उत्तर अमरीका के पश्चिमी भाग में था। फिर यह प्रशांत सागर से चीन और साईबेरिया से होता हुआ अपनी वर्तमान स्थिति पर आया है। यह सिद्धांत अभी नया ही है और चट्टानों के 'पाठों' पर विश्वास करने से पहले अभी भू-भौतिकीविदों को काफ़ी कुछ और जानना बाकी है

भू-भौतिकविद जितना ही ज्यादा मालूम करते जाते हैं, उनक यह विश्वास उतना ही अधिक पुष्ट होता जाता है कि पृथ्वी के कई रहस्यों का उत्तर चुम्बकत्व में निहित है।

हर साल चुम्बकत्व का अध्ययन नये-नये तथ्य प्रकाश में लात जाता है। एक सदी से कुछ पहले जब पहले तार के केबल डाले ग

थे, तब यह मालूम हुआ था कि केवल तारों में ही नहीं, बल्कि स्वयं पृथ्वी में भी विद्युतधाराएं होती हैं। मिसाल के तौर पर, बिजली और बरसाती आँधियाँ भूमि में विद्युतधाराएं भेजती हैं, जो सारी पृथ्वी पर घूम जाती हैं।

हाल ही में यह मालूम हुआ कि पृथ्वी में जो ये धाराएँ चुम्बकीय क्षेत्र के तीव्र अन्तरों की सुग्राही हैं, पृथ्वी की विद्युतधाराएं चुम्बकीय तूफान उत्पन्न करने वाले परिवर्तनों से संबद्ध स्पंदनों में चलती हैं। भूमि में तारों की एक शृंखला लगाकर और इन स्पंदनों को नापकर चुम्बकीय 'सागर' में आए परिवर्तनों का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

सूर्य द्वारा उत्पन्न ये विद्युत्-स्पंदन भू-गर्भ के लिए नए सूराग बन सकते हैं। खनिज-भण्डारों का पता चलाने के लिए भू-गर्भशास्त्री भूमि में हलकी कृत्रिम धाराएं भेजते रहे हैं, क्योंकि हर चट्टान का हर विद्युत्-धारा के लिए अधिक प्रतिरोध होता है, इसलिए वह एक अलग ही कहानी बताती है। पृथ्वी की अधिक शक्तिशाली धाराएं भू-गर्भ की बनावट प्रकट कर सकती हैं।

पृथ्वी के अध्ययन में चुम्बकत्व एक और तरीके से भी उपयोग में आता है। अतीव सुग्राही चुम्बकीय उपकरण भिन्न-भिन्न प्रकार की चट्टानों का अन्तर कर सकते हैं। जहाज़ के पीछे चुम्बकत्वमापी लगाकर सागर-वैज्ञानिक सागरतल की विभिन्न चट्टानों की पहचान कर सकता है। उदाहरण के लिए ज्वालामुखी अपने आस-पास की चट्टानों या मिट्टी से अधिक चुम्बकीय होते हैं और उनका सागर की सतह से पता लगाया जा सकता है। यह विधि नयी ही है और हमें अभी तक पृथ्वी की पपड़ी का सम्पूर्ण 'चुम्बकीय चित्र' नहीं मिल पाया है, लेकिन अंभूव की खोजें कई रिक्त अंगों की पूर्ति कर देंगी।

अंभूव के दौरान समुद्रों, महाद्वीपों और हिमावरणों तक पर पृथ्वी की सभी चुम्बकीय विभिन्नताओं का एक साथ अध्ययन किया जा रहा है। अंभूवों में भाग लेने वाले ६४ राष्ट्रों द्वारा सैकड़ों भू-

चुम्बकीय केन्द्रों का संचालन किया जा रहा है। वैज्ञानिक दिक्-सूचक की सूई के नमन तथा विभिन्नताओं का, चुम्बकीय 'सागर' के सरकने का, पृथ्वी की पपड़ी का, चुम्बकीय क्षेत्र के स्पन्दनों का तथा पृथ्वी की विद्युत-धाराओं का अध्ययन कर रहे हैं।

पृथ्वी के अध्ययन में चुम्बकत्व एक श्रेष्ठ साधन सिद्ध हुआ है, अन्तरिक्ष के बारे में यह हमें जो बता रहा है, वह और भी अधिक रोचक है।

पृथ्वी का चुंबकीय क्षेत्र सैकड़ों मील तक अयनमंडल के भीतर और उसके पार तक फैला हुआ है। अयनमण्डल विरल विद्युदित वायु का वह प्रदेश है, जो कोई ३५ मील की ऊँचाई पर शुरू होता है, अयनमण्डल में चुम्बकीय उत्पात रेडियो तथा आधुनिक इलेक्ट्रानी सैनिक क्रियाओं पर गहरा असर डालते हैं। चुम्बकीय 'सागर' का सुन्दर और रोमांचक दृश्य मेरु प्रकाश या उत्तरी प्रकाश कुछ बड़ी इलेक्ट्रानी परेशानियाँ पैदा करता है। भू-चुम्बकीय ध्रुवों के आस-पास के क्षेत्रों तक ही सीमित होने पर भी मेरु-प्रकाश भू-भौतिकीविदों के लिए सबसे महत्वपूर्ण घटनाओं में है। अंभूव में इसी ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

पूर्वी ग्रानलेंड का एस्कीमो मेरु-प्रकाश-अंचल के पास रहता है। जाड़ों में उसे हर रात को आकाश रंगों से दमकता नज़र आ सकता है, उसके लिए यह चाँद, तारों और सूरज-जैसा ही आसमान का एक हिस्सा है।

भूमध्यसागर के पास मेरु-प्रकाश दस-बीस साल में एक बार देखा जा सकता है। पुराने ज़माने में जब यह दीखता था, तो ज्वाला-मंडित आकाश से लोग दहशत में आ जाते थे। रोमन इतिहासकार लिवी ने लिखा था, "आकाश अदृश्य अग्नि-शिखाओं से दमक रहा था···भय-त्रस्त लोगों की चिंता दूर करने के लिए त्रिदिवसीय प्रार्थना की आज्ञा दी गई।" ईसवी सन् के आरम्भ के आस-पास रोमन सम्राट्

तिबेरियस ने आकाश में मेरु प्रकाश के प्रकाश को देखकर समझा कि शहर में आग लग गई है और उसने जल्दी से अपने अग्नि बुझाने वाले दस्तों को बुलवा भेजा।

यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने कुछ मेरु प्रकाशों को देखकर लिखा था, "...साफ रात में कभी-कभी आकाश में हमें तरह-तरह की आकृतियाँ दिखाई देती हैं—'दरारें और खाइयाँ' और लाल-लाल रंग।"

दूर दक्षिण में, भूमध्य रेखा के पास, मेरु-प्रकाश लगभग अज्ञात है। कुछ ही बसे हुए इलाके मेरु प्रकाश अंचल में आते हैं—अलास्का, उत्तर कनाडा, नारवे, ग्रीनलैंड-तट और उत्तर साइबेरिया, दक्षिणी गोलार्द्ध में मेरु प्रकाश-अंचल निर्जन और ठंडे एंटार्कटिक को पार करके पवन-झँझोरित एंटार्कटिक सागर तक चला जाता है।

दूर होने पर भी मेरु प्रकाश अंभूव के विश्व-व्यापी प्रयास के लिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि किसी भी और घटना की तुलना में यह सूर्य तथा वायुमण्डल और सूर्य पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के सम्बन्ध को अधिक नाटकीयतापूर्वक प्रकट करता है।

प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय ध्रुवीय वर्ष के पहले मेरु प्रकाश का गहन वैज्ञानिक अध्ययन न किया जा सका, लेकिन इस समय भी वैज्ञानिकों ने केवल उत्तरी मेरु प्रकाश का ही अध्ययन किया। अंभूव के वैज्ञानिक आर्कटिक तथा एंटार्कटिक—दोनों ही जगहों के मेरु प्रकाश का अध्ययन कर रहे हैं। अंभूव की पहली वैज्ञानिक जानकारियों में यह तथ्य भी था कि दोनों ही मेरु प्रकाश समक्षणिक होते हैं। मेरु प्रकाश की चुम्बकीय प्रकृति का तो १७४१ में ही आभास मिल गया था, लेकिन प्रथम ध्रुवीय वर्ष और मैक्सवेल द्वारा अपने चुम्बकत्व के सिद्धान्त की घोषणा के कहीं बाद ही जाकर मेरु प्रकाश का वैज्ञानिक अर्थों में समाधान तथा निरूपण करने का यत्न किया गया।

मेरु प्रकाश के कई दृश्य स्वरूप हैं—किरणें, ज्वालाएँ, उद्दीप्तियाँ,

चापें, पट्टियाँ दृश्यावलियाँ तथा कोरोना। कुछ मेरु प्रकाशकीय प्रकाश विस्तृत और आकृतिहीन होते हैं, तो कुछ सजीव और खुदबुदाते नज़र आते हैं, और कुछ सर्चलाइट के प्रकाश-दण्ड से निकट होते हैं। कोई मेरु प्रकाश में क्षण-भर को ही दमककर विलीन हो जाता है, और कोई रात-रात-भर भाँति-भाँति के भव्य और निरन्तर बदलते रूपों का प्रदर्शन करता रहता है। हर रूप सूर्य के प्रभाव की अपनी कहानी बताता है।

बड़े-बड़े प्रदर्शन :प्रायः एक क्रम के अनुसार होते हैं। वे आकाश में पीताभ उद्दीप्ति से शुरू होते हैं, जो धीरे-धीरे हरीतिमा में बदल जाती है। यह उद्दीप्ति एक चाप में बदल जाती है, जो आकाश को चुम्बकीय क्षेत्र के साथ समकोण बनाते हुए पूर्व से पश्चिम तक काट देता है। यह चाप आकाश पर, चुम्बकीय ध्रुव से दूर, चढ़ता जाता है और इसके पीछे-पीछे दूसरे समानांतर चाप होते हैं। सारा आकाश आलोकित हो जाता है और ये चाप खुदबुदाती किरणों और हरे, गुलाबी या बैंगनी पटों में विभक्त हो जाते हैं। किरणें चुम्बकीय शिरोबिंदु की ओर इंगित करती हैं।

क्या ये चाप सारे आकाश पर छाकर पृथ्वी को आवृत्त कर लेते हैं? या ये मेरु प्रकाशीय अंचल पर ही छाते हैं? केवल एक बार ही दो वैज्ञानिकों ने, जिनके बीच सैकड़ों मील का फासला था, एक मेरु-चाप के समसामयिक प्रेक्षण किये थे। कार्ल स्टोर्मर, जिन्होंने सबसे पहले मेरू प्रकाश का निरूपण तथा व्याख्या की थी, ने नावों तथा अमरीका में एक पर्यवेक्षक देखा कि वे एक ही समय एक ही चाप को देख रहे थे, यद्यपि उनके बीच दुनिया की चौथाई परिधि का फासला था, अंभूव के दौरान उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में पर्यवेक्षकों द्वारा चापों का विस्तार निर्धारित किया जाएगा।

मेरु प्रकाश बर्फ-विहीन भूमियों के प्रकाश में थोड़ी ही वृद्धि करते हैं, किन्तु बड़े-बड़े मेरु उ० ध्रुव प्रदेश हिमको दस से सौ गुनी तक अधिक चमकीली बना सकते हैं। उनके रंग बड़े विलक्षण होते हैं—एकदम सफेद,

सुर्ख, पीलापन लिये, हरे, काही, नीले, बैंगनी या भूरे रंग तक के हो सकते हैं। ये विरल अयनमंडल में नाइट्रोजन तथा आक्सीजन के उत्तेजन से पैदा होते हैं। मेरु प्रकाश का हर रंग और रूप एक अलग ऊँचाई पर उत्पन्न होता है। पृथ्वी से ६० मील की ऊँचाई से शुरू होकर ये कभी-कभी ६०० मील ऊपर तक चले जाते हैं। मेरु प्रकाश के ये रंग तथा रूप हर ऊँचाई पर वायुमण्डल की संरचना के संकेत हैं। मेरु प्रकाश चूँकि सूर्य-कलंक-चक्र के समय सबसे ज्यादा आम होते हैं, इसलिए १९५७-५८ में भू-भौतिकीविदों को इस उच्च वायुमंडल के अध्ययन का, तथा सूर्य और मेरुओं के बीच सम्बन्ध तथा मेरुओं और चुम्बकीय तथा अयनमडलीय उत्पातों अध्ययन का भी अपूर्व संयोग है।

वायुयान-चालकों के लिए मेरु प्रकाश एक गम्भीर संकट उत्पन्न कर देता है, मेरु दर्शन के समय उत्तरी वायु-मार्गों पर उड़ने वाला वायुयान-चालक संकट—और मौत तक—का सामना कर सकता है। चुम्बकीय ध्रुव के समाप्य के कारण उसका दिक्सूचक सुस्त पड़ जाता है और मेरु प्रकाश के साथ आने वाला चुम्बकीय तूफान उसके रेडियो-संग्रहण को नष्ट कर सकता है। दिक्सूचक या रेडियो के बिना चालक यथार्थतः 'अंधी उड़ान' ही करता है।

कनाडियाई सीमांत के उत्तर की ओर प्रसार के साथ मेरु प्रकाश ने संचार में नयी समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं। उदाहरण के लिए मेरु प्रकाशकीय अंचल उत्तरी अमरीकी उ० ध्रुव प्रदेशीय प्रतिरक्षा सीमांत--१९५७ में पूरी हुई ड्यू पंक्ति--का संपाती है। मेरु प्रकाश ग्रीन-लैंड से अलास्का तक आने वाली इस प्रतिरक्षा पाँत के साथ-साथ रेडियो, राडार तथा निर्देशित प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम को प्रभावित करता है। इस अंचल में भू-चुम्बकीय तथा मेरु प्रकाशकीय उत्पातों से बचने और उनका लाभ तक उठाने के प्रयासों में नयी रेडियो तथा नौकायन-प्रविधियाँ निकाली जा रही हैं।

इसका कोई स्पष्ट उत्तर नहीं कि मेरु प्रकाश के उत्पन्न होने का

कारण क्या है, किन्तु यह प्रकट है कि यह सूर्य के साथ सम्बन्धित है। तेज मेरु-प्रदर्शन सामान्यतः सूर्य पर किसी 'दमक' के दिखाने के एक-दो दिन बाद ही प्रकट होते हैं। दमक सूर्य के किसी क्षेत्र का अचानक चमकीला हो जाना है, और यह वर्धित सक्रियता तथा विकरण व कणों, दोनों, की बरसात का प्रतीक है। यह विश्वास किया जाता है कि मेरु प्रकाश सूर्य से उत्सर्जित कणों का फल है। ये कण—अतिसूक्ष्म इलेक्ट्रान तथा प्रोटान—२०० से १००० मील प्रति घण्टे तक की चाल से चलते हैं और पथ्वी तक एक-दो दिनों में पहुंच जाते हैं। इनकी तुलना में लगभग प्रकाश की चाल—करीबन १,८६,००० मील प्रति सैकड—से चलने वाली तीव्रतर पार-बैंगनी किरणें पृथ्वी तक ८ मिनट में ही पहुँच जाती हैं।

पृथ्वी से हजारों मील की दूरी पर ही ये कण पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र द्वारा उत्तर तथा दक्षिण चुंबकीय ध्रुवों की तरफ मोड़े तथा प्रवाहित कर दिए जाते हैं। वहाँ वे विरल उच्चतर वायुमण्डल की विरल गैसों से टकराकर दीप्त मेरु-प्रदर्शन उत्तेजित करते हैं।

१६०० के आरम्भ में नार्वेजियाई भौतिकीविद कार्ल स्टोर्मर ने यही व्याख्या की थी। उसने कहा था कि जब ये कण पृथ्वी की तरफ उचित कोण पर आते हैं, तो वे चुंबकीय ध्रुवों की ओर मोड़ दिए जाते हैं; अगर वे गलत कोण पर आते हैं, तो वे वापस अंतरिक्ष में फेंक दिए जाते हैं। पचास वर्ष तक उसके सिद्धान्त की सराहना होती रही, पर इसे सिद्ध करना कठिन था। अंभूव के दौरान मेरु प्रकाशों में जो राकेट भेजे जा रहे हैं, वे सम्भवतः उसके सिद्धान्त की जाँच के लिए अंततः प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित कर दें।

मेरु प्रकाश की उत्पत्ति के स्टोर्मर के सिद्धान्त को एक तरीके से जिसका आरम्भ ३५५ वर्ष पूर्व विलियम गिलबर्ट तथा उसकी चुंबकीय 'छोटी पृथ्वी' तक जाता है, प्रायोगिक 'प्रमाण' भी मिल रहा है। आधुनिक प्रयोग एक सीलबन्द काँच बल्ब में किये जा रहे हैं, जहाँ पृथ्वी की अंतरिक्ष में एक कल्पित वास्तविक अवस्थाएँ फिर से उत्पन्न की

जाती हैं। कणों की एक धारा,दिक्सूचक नहीं,का 'छोटी पृथ्वी' पर उसी तरह उपयोग किया है जैसे सूर्य से कोई धारा निकलकर आती है।

अमरीकी नौ सैनिक अनुसंधान प्रयोगशाला की पारमाणवीय भौतिकी प्रशाखा के अध्यक्ष डॉक्टर विलार्ड एच० बैनेट, कार्ल स्टोर्मर के सम्मान में कांच की बनी सौर-प्रणाली की अपनी 'छोटी पृथ्वी' को 'स्टोर्मरट्रान' कहते हैं। उन्होंने अपनी छोटी पृथ्वी को, अंतरिक्ष की-सी ज़रा गैसीय परिस्थितियां उत्पन्न करने के लिए पारा गैस के ज़रा से पुट के साथ प्रायः शून्य में रखा है। पारा गैस रखने से पारे के उत्तेजित हो जाने पर कणों का पथ भी आलोकित हो जाता है।

ध्रुवों, भूमध्य रेखा अक्षांशों और रेखांशों को प्रकट करने के लिए गिलबर्ट की तरह डॉक्टर बैनट ने भी अपनी 'पृथ्वी' पर निशान लगा रखे हैं। डॉक्टर बैनेट जिन प्रश्नों का उत्तर देना चाहते हैं वे हैं— कणों की धारा पृथ्वी पर कहां चोट करेगी, वह लक्षित किस ओर होती है— ध्रुवों की तरफ, या मेरु-अंचल में ध्रुवों के कुछ नीचे ?

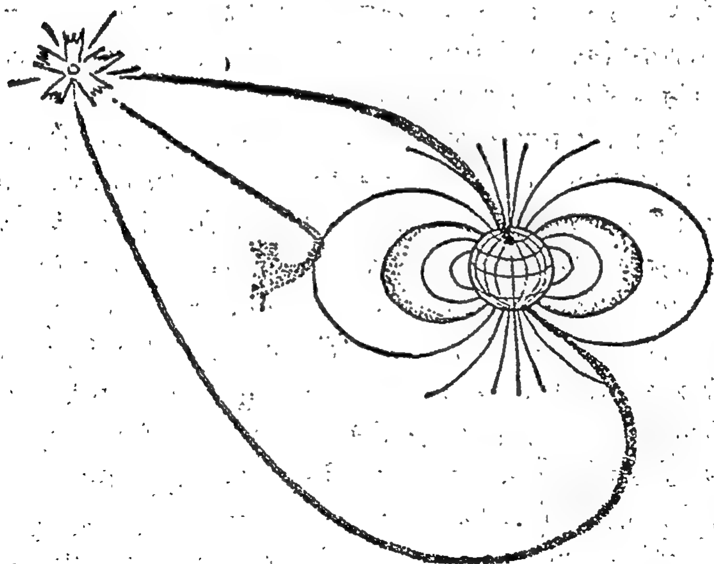
अपने कांच-बल्ब के बने 'सौर परिवार' के एक सिरे पर इलेक्ट्रानों की इलेक्ट्रानी कण बन्दूक लगा रखी है, जो चुंबकीय पृथ्वी पर इलेक्ट्रानों की तीव्र धाराएं छोड़ती है—बहुत कुछ ऐसे ही, जैसे वे सूर्य से ही आई हों। बहुत से भू-भौतिकविदों को इस बात पर हैरानी थी कि सूर्य से उत्सर्जित कणों की धारा सीधे-सीधे पृथक होकर अंतरिक्ष में फैलकर विलीन क्यों नहीं हो जाती। डॉक्टर बैनेट ने तथा डॉक्टर हलबर्ट ने, जो १९५३-५७ में अंभूव कार्यक्रम के वरिष्ठ वैज्ञानिक थे, विद्युत-धारा द्वारा चुंबकीय उत्पन्न किये जाने की पुरानी धारणा का उपयोग करके इसका उत्तर निकाला। उन्होंने कहा कि "कण-प्रवाह एक विद्युत-धारा की तरह है। अन्तरिक्ष की आयानित या विद्युदित गैस से होकर गुजरते समय यह अपना खुद का चुंबकीय क्षेत्र बनाती है। इसलिए यह एक साथ बँधी रहती है और सिकुड़कर अपने को केन्द्रित तक कर लेती है।

यह एक नया और महत्वपूर्ण विचार है। सिद्धान्ततः इसका मत-

लब है कि सूर्य पृथ्वी की ओर एक सुलक्षित 'प्रधारा' या कण-प्रवाह भेज सकता है। बैनेट की कण बन्दूक उनकी 'छोटी पृथ्वी' की ओर इसी प्रकार के फोकसित प्रवाह का उत्सर्जन करती है।

प्रवाह का आचरण कैसा रहा ? जब उसे सही कोण पर पृथ्वी की ओर लक्षित किया गया, तो वह घूमकर ठीक मेरु-अंचल पर मुड़कर पथ्वी में घुस गया। उसने मेरु-प्रकाश के समान प्रभाव ही उत्पन्न किया। लक्षित चाहे कैसे भी किया गया, उसे ध्रुवों पर या विषुववृत्त पर न डाला जा सका। जब प्रवाह को किसी 'गलत' कोण पर लक्षित किया जाता है, तो वह उस पृथ्वी से वापस घूमकर अन्तरिक्ष में चला जाता है।

बैनेट के प्रयोगों ने वास्तविक मेरु प्रकाश के आचरण को फिर से उत्पन्न कर दिया। कण-प्रवाह मेरु-अंचल पर वहीं आकर टकराता



आकृति ९—स्टोमर तथा बैनेट के अनुसार सूर्य से आती कण-धाराओं के पथ।

है, जहाँ वह वास्तविक पृथ्वी पर दृष्टिगोचर होता है। इन प्रयोगों ने इस बात का समाधान करने में सहायता दी की मार्च तथा सितम्बर में, जब पृथ्वी का अक्ष सूर्य के साथ उचित कोण पर होता है, तब मेरु अधिक क्यों होते हैं। दूसरे अवसरों पर प्रवाहों के अन्तरिक्ष में लौट जाने की अधिक संभावना रहती है।

इन प्रयोगों ने यह दिखा दिया कि ये सुन्दर चाप पूर्व से पश्चिम को ही क्यों जाते हैं और किरणें उत्तर तथा दक्षिण की ओर ही क्यो इंगित करती हैं। उन्होंने इस तथ्य की भी व्याख्या की कि मेरु प्रकाश रात को ही क्यों आता है, क्योंकि तब कण पृथ्वी के अँधेरे भाग की तरफ मुड़ सकते हैं। उन्होंने मेरु प्रकाश के विकास के साथ उसके रूपों की व्याख्या की। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन प्रयोगों ने यह इंगित किया कि मेरु सारी ही पृथ्वी पर एक ही साथ होने और उ० तथा द० ध्रुव प्रदेशों में दर्शित होने चाहिए और इनमें अधिक-से-अधिक कुछ सैकड़ों का ही अन्तर होना चाहिए, यद्यपि आकृति में वे बिलकुल एक से नहीं होंगे।

बैनेट के प्रयोगों ने इन कणों के पृथ्वी के निकट आने के साथ उसके आस-पास बनने वाला एक विशाल 'विद्युत-धारा-वलय' भी दरशाया (चित्र १५ उ तथा ऊ)। चुंबकीय क्षेत्र की बल-रेखाओं का अनुसरण करता हुआ यह वलय विषुववृत्त पर सबसे ऊँचा होता है और मेरु-अंचलों के पास पृथ्वी पर आ जाता है।

अंभूव के दौरान बैनेट के प्रयोगों तथा सिद्धान्त के सभी पहलुओं की जाँच की जा रही है। बैनेट का यह सुझाव कि उत्तरी तथा दक्षिणी मेरु प्रकाश समक्षणिक होते हैं, सिद्ध हो भी चुका है। जुलाई, १९५७ एक विराट सौर-दमक द्वारा मेरु प्रकाश के उत्पन्न होने के बाद मिन्नेसोता (अमरीका) पर भेजे गए अंभूव के एक गुब्बारे के उपकरणों ने सूर्य से आए विद्युत-आवेशित किरणों को पृथ्वी की सतह से केवल २० मील की ऊँचाई पर पाया। ये वही कण हो सकते हैं, जो बैनेट के अनुसार पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र से प्रभावित

होते हैं। अंभूव के रॉकेटों ने पता चलाया है कि उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवीय प्रदेशों को विद्युत-धारा की चादरें आवृत्त किये हुए हैं। यह भी वैनेट के सिद्धान्त का समर्थन करने लगता है।

मेरु प्रकाश सूर्य, सूर्य से आने वाले कणों तथा पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र की विभिन्नताओं के सारी दुनिया में लिए लाखों मापों से ही यह सिद्ध किया जा सकता है कि डॉक्टर वैनेट की बात ठीक है या नहीं।

अंभूव में मेरु प्रकाश का कितना महत्व है, यह अंभूव के नेतृत्व से ही प्रकट हो जाता है। अंभूव की अमरीकी राष्टीय समिति के अध्यक्ष प्रोफेसर जोसेफ कैपलन हैं, जो मेरु प्रकाश के विशेषज्ञ हैं। अंभूव के अन्तरराष्ट्रीय सभापति इंगलैंड के प्रोफेसर सिडनी चैपमेन हैं, जो संसार के एक सर्वप्रमुख भू-भौतिकीविद और भू-चुंबकीय घटना के विशेषज्ञ हैं। अंभूव के महासचिव बेल्जियम के भौतिकीविद् मासल निकोलते हैं, जो वायुमण्डल पर सूर्य के प्रभाव के विशेषज्ञ हैं। डॉक्टर बर्कनेर अयनमण्डल-विशेषज्ञ हैं।

मेरु प्रकाश का महत्व अमरीकी अंभूव रॉकेट कार्यक्रम से भी स्पष्ट हो जाता है। दुनिया के सभी भागों से लगभग २०० मील की ऊँचाइयों पर उच्चतर वायुमण्डल के अध्ययन के लिए दो सौ अमरीकी रॉकेट भेजे जा रहे हैं। इन २०० अमरीकी रॉकेटों में से ११५ मेरु-अंचल पर प्रयोगों तथा उसके माप के लिए भेजे जाएँगे। इसका मतलब यह है कि उच्चतर वायुमण्डल की किसी भी अन्य घटना की अपेक्षा मेरु प्रकाश के अध्ययन के लिए ज्यादा रॉकेट भेजे जाएँगे।

ये रॉकेट मेरु प्रकाश के दौरान, और उस समय जब कि मेरु प्रकाश नहीं रहता, सूर्य से आने वाले कणों की मात्रा मापेंगे। रॉकेट इन कणों द्वारा पृथ्वी के वायुमण्डल में उत्पन्न विद्युत-चुंबकीय उत्तेजन को मापेंगे। रॉकेटों के उपकरण प्रकाशमण्डल के सूक्ष्म रंग-परिवर्तनों का विश्लेषण करेंगे, क्योंकि वे परिवर्तन यह जानकारी देते हैं कि कौनसी प्रतिक्रिया हो रही है और उसमें कौनसी गैस या कण

सम्मिलित हैं।

अमरीकी-अंभूव रॉकेटों द्वारा किये जाने वाले प्रयोगों में दूसरी बड़ी संख्या का सम्बन्ध पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के मापन से है। छोड़े जाने वाले २०० रॉकेटों में से ६५ इसकी शक्ति तथा विभिन्नताओं को मापने के उपकरणों से लैस हैं। यह आशा की जाती है कि अंभूव के भू-उपग्रह २०० से १००० मील से ऊपर तक की ऊँचाइयों का चित्र पूरा कर देंगे। और वे हमें पृथ्वी के चुम्बकीय विषुववृत की भी जानकारी देंगे। अन्य उपग्रह यह बता सकते हैं कि बहुत ज्यादा ऊँचाइयों पर पृथ्वी के इर्द-गिर्द विद्युत के विशाल वलय तेजी के साथ घूमते हैं या नहीं।

इन उड़ानों के अतिरिक्त आर्कटिक तथा उत्तरी मेरु के अंचल में चुम्बकीय प्रेक्षण का एक क्रम चल रहा है। पन्द्रह चुम्बकीय वेधशालाएँ द० ध्रुव क्षेत्र में स्थापित की गई हैं। संसार-भर में फैली सैकड़ों चुम्बकीय वेधशालाएँ समक्रमिक प्रेक्षण कर रही हैं। ये वेधशालाएँ चुम्बकीय विभिन्नताओं तथा तूफानों और पार्थिव धाराओं को मापेंगी। इनमें से कई मेरु-प्रकाश तथा उन विद्युत-वलयों का अध्ययन करेंगी, जो पृथ्वी के आस-पास घूमते नजर आते हैं।

इनके परिणाम पृथ्वी, बाह्य अंतरिक्ष तथा सौर-परिवार के बारे में ऐसे तथ्य उद्घाटित कर सकते हैं, जिनकी अभी कल्पना भी नहीं की गई थी।

: ७ :

ठोस पृथ्वी

१८ नवम्बर, १७५५ को सुबह-सुबह ही एक भूकंप ने मेस्साचुसेट्स उपनिवेश में बोस्टन नगर को हिला दिया। हार्वर्ड कॉलेज के प्रोफ़ेसर जॉन विंथॉप भूकंप का अनुभव करके जाग गए। कुछ मिनट के बाद भूकंप का प्रहार फिर हुआ। "मैं सोते से उठ गया," विंथॉप ने बाद में लिखा, "और मोमबत्ती जलाकर मैंने अपनी घड़ी देखी। देखा कि ४ बजकर १५ मिनट हुए थे।" भूकंप धीरे-धीरे बन्द हो गया। जॉन विंथॉप नीचे दीवार-घड़ी के पास गये। वह साढ़े तीन मिनट पहले, ४-११-३५ पर, बन्द हो गई थी। घड़ी को बन्द करने के अलावा भूकंप ने बस एक चाबी को ही कारनिस से फ़र्श पर गिराया था।

घड़ी इसलिए रुक गई थी कि विंथॉप ने उसके भीतर कुछ लम्बी काँच-नलिकाएँ सुरक्षा के लिए रख दी थीं, जिनका वह किसी प्रयोग में उपयोग कर रहे थे। भूकंप ने नलिकाओं को गिराकर घड़ी के दोलक (पेंडुलम) को रोक दिया था। विंथॉप को इसलिए बोस्टन में भूकम्प आने का एकदम सही समय मिल गया। उन्होंने फ़र्श पर पड़ी चाबी की तरफ देखा। भूकंप ने उसे मात्र फ़र्श पर गिरा ही नहीं दिया था, वह भूकम्प की गति की दिशा में उत्तर-पश्चिम की ओर—सम्भवतः कनाडा में—से आते एक आघात द्वारा सामने की ओर फेंक दी गई थी। कुछ भूकम्प ऐसे 'धक्के' से शुरू होते हैं, जब कि अन्य भूकम्प केन्द्र की ओर खिचाव से शुरू होते हैं। यह कोई विनाशक भूकम्प नहीं था, लेकिन विंथॉप के लिए यह महत्त्व

धारण करता गया।

कुछ दिन के वाद उन्हें एक जहाज़ से समाचार मिला कि पश्चिमी द्वीपसमूह पर एक 'ज्वारजनित लहर' ने चोट की है—"१८वीं तारीख को दोपहर को कोई २ वजे, सेंट मार्टिन के वन्दरगाह से जहाजों को सूखा और मछलियों को किनारे पर छोड़ता हुआ समुद्र पीछे हट गया (१८ से २४ फुट तक गिरकर)...जव वह फिर आया, तो वह आम तौर से कोई ६ फुट ज्यादा चढ़ गया, जिससे सारी निचली भूमि जलमग्न हो गई।" अपनी चावी और घड़ी को याद करके विंथ्रॉप ने लिखा—"क्योंकि समुद्र की यह असामान्य गति हमारे यहाँ आए भूकम्प के वड़े आघात के कोई ९ घण्टे वाद हुई, इसलिए यह वहुत सम्भव लगता है कि यह पृथ्वी के उन्हीं उपद्रवों से हुई हो...समुद्र की यह गति महासागर के किसी भाग में खासी दूरी पर हुई किसी वड़ी उथल-पुथल का नतीजा था।"

सत्रह दिन पहले, १ नवम्बर, १७५५ को, पश्चिमी द्वीपसमूह पर यूरोप तथा अफ्रीका से आती एक और भी वड़ी 'ज्वारजनित लहर' की चोट हुई थी। विंथ्रॉप को एक पत्र मिला था, जिसमें इस भूकम्पी सामुद्रिक लहर का वर्णन किया गया था—"...ज्वार जाता रहा। एकदम शान्ति में निवासियों को आश्चर्यचकित करता हुआ अचानक पानी का एक स्राव उठा और जैसे वह उठा था, वैसे ही अचानक समुद्र में वापस लौट गया। स्राव का आना-जाना हर छ -सात मिनट पर होता था। इतने थोड़े-से समय में समुद्र ६० वार से ज़्यादा वार चढ़ा-उतरा।

इसके चार घण्टे पहले, सुवह ९-४० पर, यूरोप में आधुनिक काल में आने वाले सवसे वड़े भूकम्प का पुर्तगाल पर आघात हो चुका था। पहले आघात के छः मिनट के भीतर लिस्वन की इमारतें खण्डहरों में वदल चुकी थीं। साठ हज़ार लोग—शहर की आवादी के एक-चौथाई—मारे गए थे।

आघात द्वारा लिस्वन के नष्ट कर दिए जाने के वाद समुद्र पीछे हट गया। कोई २० मिनट के वाद वह पानी की एक पहाड़-सी दीवार के रूप में लौटा, जो आध मील तक ज़मीन पर चढ़ती चली गई। इसके वाद वह बैठ गया। तीन लहरें और आईं, आखिरी दो वजे। लेकिन दो वजे तक

पहली समुद्री लहर ३५०० मील दूर वारवदोज़ पर चोट कर भी चुकी थी।

भूकम्प ने यूरोप को उत्तर में जर्मनी तक हिला दिया और उत्तर अफ-रीका में फैज नगर को लगभग नष्ट कर दिया। इस क्षेत्र में अगले आधे साल में १५ सख्त धक्के लगे। १७५५ में पृथ्वी का एक बड़ा पुनर्व्यवस्थीकरण हो रहा था।

यूरोप केवल भौतिक रूप से ही नहीं, वरन् मानसिक और आत्मिक रूप से भी झकझोर दिया गया। इस बात पर बड़ी आशाएँ बँधी हुई थीं कि नया विज्ञान प्रवृत्ति की सभी वस्तुओं को बोधगम्य बना देगा। अब, प्रकृति के अकारण और आकस्मिक प्रकोप से यूरोपवासी सोचने लगे कि विज्ञान असफल हो गया है। वॅल्तेयर ने अपनी व्यंग्यात्मक कृति कादिरे में इस भूकम्प का वर्णन किया और उन सब दार्शनिकों की खिल्ली उड़ाई, जो अब भी इसे 'सभी सम्भव संसारों में सर्वोत्तम' कहने की धृष्टता करते थे।

लेकिन अमरीका में, जॉन विथ्राप ने शान्तिपूर्वक लिखा—"एक भूकम्प अटलांटिक पार से अपना असर हम तक पहुँचा रहा है। भूकम्प के लिए सचमुच यह एक हैरत-अंगेज़ फासला है। मुझे इतिहास में ऐसा कोई और विवरण पढ़ने की याद नहीं। हमारा भूकम्प १६०० मील तक फैला था, जब कि यह कोई उससे दो गुनी दूरी तक पहुँच गया है।"

कई जगहों के विवरण प्राप्त करके विथ्रॉप ने समुद्री लहर की गति तथा अमरीकी भूकम्प के समय का मोटा हिसाब लगा लिया था। यह अनुभव करने वाले वह पहले व्यक्ति थे कि भूकम्प 'पृथ्वी की एक लहर' है, जो एक केन्द्र से विकीर्णित होती है। उनके अनुसार यह 'एक प्रकार की ऊर्मिल गति' है, जो आगे की ओर तेजी से बढ़ती जाती है और जिसकी गति ऊपर-नीचे की या इधर-उधर की हो सकती है। यूरोपीय वैज्ञानिक बहुत बरस बाद तक भू-गर्भ लहरों की प्रकृति न समझ सके।

इन भू-तरंगों की प्रकृति तभी समझी जा सकती थी कि जब वैज्ञानिकों को पृथ्वी के अन्य भागों के विवरण प्राप्त हों। अंभूव ने, जिसने भूकम्पों को अभिलिखित करने के लिए अब तक का सबसे विस्तृत जाल स्थापित किया है, यह सम्भव कर दिया है कि संसार-भर के विवरणों को मिलाया

जा सके और हर भूकम्प की गति का समय जाना जा सके।

भूकम्प हमारी पृथ्वी की सबसे निरंतर घटनाओं में है। १९५७ में, जिस साल अंभूव का आरम्भ हुआ, एल्युशिअन द्वीपों, अलास्का, मेक्सिको, दक्षिण अमरीका, केलीफोर्निया तथा यूरोप को भारी भूकम्पों ने झकझोरा था। दस या अधिक बड़े भूकम्प तथा ६०० तक छोटे-छोटे भूकम्प पृथ्वी को हर साल हिलाते हैं। उत्तरी केलीफ़ोर्निया में ही हर साल २०० भूकम्प तक आ सकते हैं, यद्यपि इनमें से अधिकतर इतने मामूली होते हैं कि भूकम्प-मापी, जिसकी संवेदी सूई तनिक-से कम्पन से भी काँपने लगती है, के अलावा उन्हें किसी तरह महसूस तक नहीं किया जा सकता।

नवम्बर, १९५२ में एल्युशिएन द्वीपों से कुछ मील दूर, प्रशांत तट पर साइबेरियाई प्रायद्वीप के कमचत्का में एक बड़ा भूकम्प आया था। इसने पृथ्वी में ऐसी विराट् तरंगें भेजीं कि उनका तुंग-से-तुंग तक का अन्तर १२०० मील था। ये तरंगें हर साढ़े छः मिनट पर आती थीं और २० तरंगें मिलकर पृथ्वी का चक्कर लगा लेती थीं। ये तरंगें चौबीस घण्टे तक आती रहीं। कहा गया है कि इसके आघात से पृथ्वी 'घण्टी की तरह झन-झनाने लगी' थी।

भूकम्पों के आकस्मिक और अकारण रूप को भूकम्पमापी धीरे-धीरे भू-भौतिकविदों के आगे प्रकट कर रहा है।

सभी प्रकार की तरंगें आधुनिक विज्ञान के सबसे महत्त्वपूर्ण औजारों में हैं, क्योंकि हर तरंग ऊर्जा की एक वाहक होती है, जो अपने को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों और अपने रास्ते में आने वाली वस्तुओं के बारे में बताती है। भू-भौतिकीविद महासागरों के अध्ययन के लिए सामुद्रिक लहरों का, और वायुमण्डल, अयनमण्डल तथा सूर्य के अध्ययन के लिए रेडियो-तरंगों तथा प्रकाश-तरंगों का उपयोग करते हैं। भू-तरंगें भू-भौतिकीविदों को पृथ्वी की पपड़ी, उसके नीचे के आवरण और उसके केन्द्रीय क्रोड की हालतें बताती हैं।

भू-तरंगों का विज्ञान—भूकम्पशास्त्र ठोस पृथ्वी के अध्ययन का मुख्य साधन बन गया है। चट्टानों तथा पृथ्वी की खगौलिक गतियों के अध्ययन

के साथ-साथ भूकम्प-शास्त्र ठोस पृथ्वी की हमारी अधिकांश जानकारी का आधार है।

इस सदी की शुरुआत में यह जाना गया कि भू-तरंगें केवल पृथ्वी की सतह पर ही नहीं लगतीं, वरन् उससे होकर भी गुजरती हैं। नये भूकम्पीय उपकरण भी यह दिखाने लगे कि भूकम्प कई तरह की भू-तरंगें उत्पन्न करता है। पिछले २० वर्षों में ही इन तरंगों ने भूगर्भ की नाटकीय कहानी सुनाना शुरू किया है।

अंभूव के आरम्भ के पहले दुनिया-भर में ५०० भूकम्प-केन्द्रों का जाल फैला हुआ था। पृथ्वी के काफ़ी बड़े प्रदेश, विशेषकर द० ध्रुव प्रदेश तथा कम आबादी वाले विषुववृत्तीय अंचल, इस जाल में नहीं आते थे। अंभूव ने इस जाल को उन इलाकों तक फैला दिया है, जहाँ आदमी ने कभी कदम नहीं रखा था और जहाँ पृथ्वी की भूकम्पीय नाड़ी कभी नहीं गिनी गई थी।

भूकम्पमापी एक सामान्य, किन्तु संवेदी यन्त्र है, जो भू-तरंगों के साथ कम्पित होता है और भूकम्पन को कलम द्वारा अंकित कर लेता है। इसने ऐसी तरंगों के एक पूरे वर्णक्रम को ही उद्घाटित किया है, जिनमें से अधिकांश का कभी अनुभव भी नहीं होता। इनमें लघु तरंगों (सूक्ष्म भूकम्प तरंग—माइक्रोसीज़्म) से लेकर तुंग-से-तुंग तक १००० मील से ऊपर अन्तर वाली विशाल भूकम्प-तरंगें भी आ जाती हैं। सूक्ष्म भूकम्प-तरंगें समुद्रों पर उन तूफ़ानों द्वारा उत्पन्न होती हैं, जो महासागरों का ध्वनि-फलक की तरह उपयोग करके पृथ्वी का कम्पन आरम्भ कर देते हैं। पृथ्वी को केवल विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें तथा धाराएँ ही सतत आर-पार नहीं काटती रहतीं, वरन् कई स्रोतों से उत्पन्न आघात तथा दाब-तरंगें भी काटती रहती हैं।

बड़ी भूकंप-तरंगों के तीन मुख्य प्रकार हैं—एक दाब या 'पी' तरंग (P वेव), जो अपने से आगे की वस्तु का संपीड़न करती ध्वनि की तरह चलती है; चलने वाली एक 'एस' तरंग (S वेव), जो बहुत-कुछ प्रकाश की तरह ऊपर-नीचे चलती है और देखने में अंग्रेजी के आड़े पड़े 'एस' अक्षर की तरह (ω) होती है; सतही तरंग (सरफ़ेस वेव), जो लगभग समुद्र

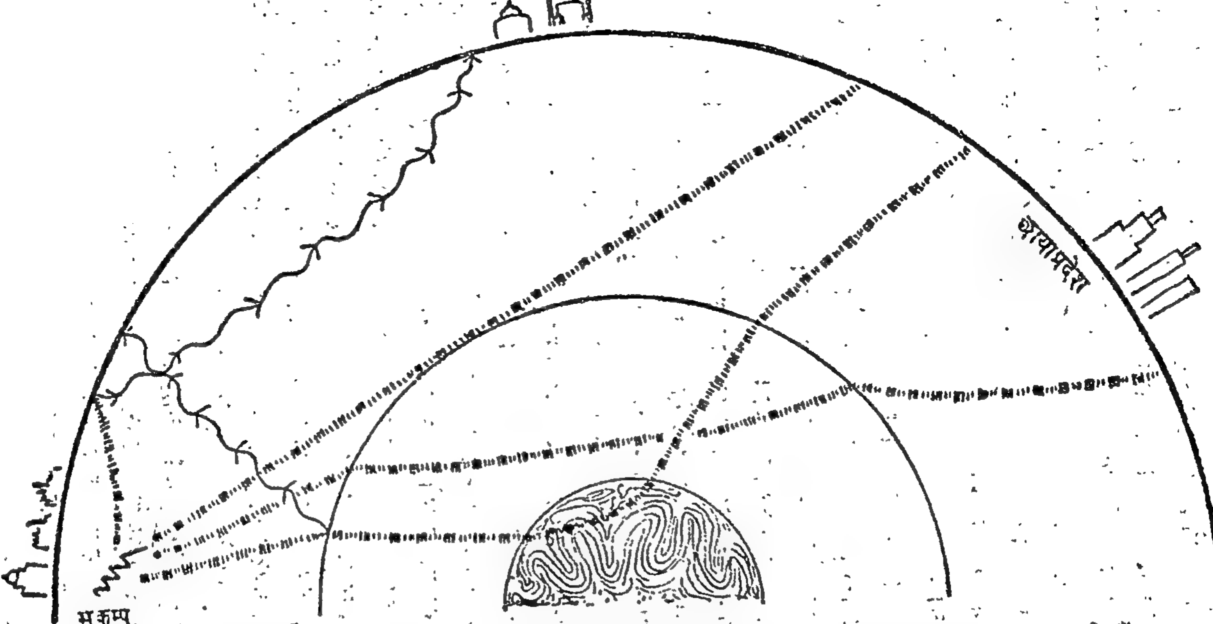
की सतही लहरों-जैसा ही आचरण करती है। यद्यपि इनमें से कुछ इतनी बड़ी होती हैं कि वे पृथ्वी के क्रोड जितनी गहरी चली जाती हैं। तीनों ही प्रकार की तरंगें पृथ्वी के अध्ययन में उपयोग में लाई जाती हैं।

'एस' तथा 'पी' तरंगें सीधे पृथ्वी के क्रोड पर जाती हैं, 'एस' तरंगों की चाल 'पी' तरंगों से कुछ कम होती है। नीचे जाने के साथ वे तेज़ होती जाती हैं और या तो ये पृथ्वी में विभिन्न शिला-स्तरों से टकराकर उछलती जाती हैं, या इन स्तरों द्वारा मोड़ दी या वर्तित कर दी जाती हैं। कुछ तरंगें किसी-किसी स्तर के साथ इस तरह चलती चली जाती हैं, मानो वह कोई सड़क हो। अन्ततः वे पृथ्वी की ऐसी सतह पर पहुँच जाती हैं, जो भूकम्प के केन्द्र से बहुत दूर है, और फिर भीतर की तरफ उछल जाती हैं।

कमचत्का के भूकम्प में 'पी' तरंगें पहले न्यूयार्क पहुँचीं। दस मिनट के बाद 'एस' तरंगें भी पहुँच गईं। लगभग तेरह मिनट के बाद विशाल सतही तरंगों ने भूकम्पमापी को हिला दिया। ये लहरें अलग-अलग चालों और रास्तों से चलकर आई थीं, सपाटे के साथ वे पृथ्वी के चहुँओर दौड़ने और गुञ्जित होने लगीं।

पृथ्वी की सतह पर विभिन्न स्थानों पर इन तरंगों के पहुँचने का समय या उनका कभी-न-कभी पहुँच पाना यह बताता है कि उन्होंने नीचे क्या 'देखा।' इस तथ्य की, कि पृथ्वी का क्रोड द्रव है, पुष्टि तरंगों के अध्ययन से ही हुई थी, क्योंकि 'एस' तरंग द्रवों से नहीं गुज़रती, और जहाँ 'एस' तरंग नहीं प्रकट होती, वहाँ भूकम्प की विपरीत दिशा में, पृथ्वी के दूसरे सिरे पर एक 'छाया' बन जाती है।

जब भूकम्प द० ध्रुव प्रदेश को हिलाएगा, तो छाया-प्रदेश उत्तरी गोलार्ध में पड़ेगा। अमरीका में 'एस' तरंगें सम्भवतः न पकड़ी जाएँगी और 'पी' तरंगे तक पकड़ के बाहर रह सकती हैं। तिस पर भी पृथ्वी की सतह पर के अन्य बिन्दुओं पर दोनों लहरें भूकम्पमापियों द्वारा अनुभूत की और मापी जाएँगी। सतही तरंगें, जो पपड़ी में चलती हैं, सारी पृथ्वी पर अनुभूत होंगी।



आकृति १०—भूकम्प की 'P' तरंगें पृथ्वी में से गुजरती हैं और उसके क्रोड की तरफ़ मुड़ जाती हैं। किसी स्तर की सतह से परावर्तित तरंगें 'S' तरंगों में परिणत हो जाती हैं।

इस पहेली को कि विभिन्न तरंगें कहाँ और कब पहुँचती हैं, हल करते हुए भूकम्पविदों ने पृथ्वी की विभिन्न परतों का पता लगा लिया है और वे उनका एक-एक करके इस तरह वर्णन कर सकते हैं, मानो उनके हाथ में कोई कटा हुआ प्याज रखा हो। उन्होंने हर परत के दाव, घनत्व तथा संरचना का अनुमान कर लिया है, क्योंकि हर तरह की चट्टान तरंगों को अलग-अलग चाल से प्रेषित करती है। तरंगों को सुन-सुनकर भूकम्पविदों ने जान लिया है कि पृथ्वी का क्रोड सतह से १८०० मील नीचे है और महाद्वीपों की 'परत' २० मील मोटी है।

सतही तरंगों को सुनकर भूकम्पविद जान गए हैं कि महासागर-तल पर पृथ्वी की पपड़ी केवल ५ मील मोटी है। महाद्वीप हलके पदार्थ की बनी मोटी संहतियाँ हैं, जो सघनतर ठोस शिला पर तैर रही हैं।

अधिकतर भूकम्प पपड़ी में ही, या उसके ज़रा ही नीचे होते हैं, उनमें से ७० प्रतिशत पृथ्वी की सतह के ३७ मील के भीतर होते हैं। यह वह जगह है, जहाँ पृथ्वी के अपरम्पार दाब और प्रतिबल अचानक फूट पड़ते हैं। असम (भारत) में १९५० में आए एक भूकम्प में एक उद्जन बम से एक लाख गुनी ऊर्जा थी। अकेले भूकम्प भी हज़ारों वर्गमील भूमि को—चाहे कुछ इंचों से ही—उठाते या गिराते जाने गए हैं और उन्होंने बड़ी-बड़ी पहाड़ियों को भी सरका दिया है।

इन तरंगों का उपयोग करके अंभूव के दौरान भूकम्पविद कई नये सवालों का जवाब पाने की कोशिश कर रहे हैं। महाद्वीपों की पपड़ी सागर-तल की पपड़ी से कैसे और क्यों भिन्न है? उस महत्त्वपूर्ण प्रदेश की बनावट कैसी है, जहाँ ऊँचे महाद्वीप नीचे होकर सागर-तल से मिलते हैं? और इससे भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि खुद सागर के विशाल, छिपे हुए तल का चित्र क्या है? १९५७ में कोलंबिया विश्वविद्यालय के डॉक्टर मॉरिस इवींग ने घोषणा की कि महाद्वीपों के बीच, सागरतल पर, एक बड़ी 'दरार' है, जो सारी पृथ्वी से गुजरती है। यह अटलांटिक से जाकर आर्कटिक महासागर में खत्म होती है। दक्षिण में यह शीतल एंटार्कटिक महाद्वीप का चक्कर लगाती है और प्रशांत सागर में यह दरार दक्षिण अमरीका

और उत्तर अमरीका के पश्चिमी तट के साथ-साथ अलास्का तक चली जाती है। सागरतल की इस दरार के साथ संसार की सर्वप्रमुख भूकम्प-मेखला है।

इस दरार की एक शाखा १७५५ के लिस्बन-भूकम्प के स्थल पुर्तगाल की तरफ़ जाती है। यह अमरीका का स्पर्श करती है, जहाँ १९०६ का सान-फ्रान्सिस्को का भूकम्प आया था। उत्तर में यह अलास्का तक पहुँच जाती है, जहाँ एक छोटी-सी दरार एल्युशियन द्वीपों के साथ-साथ सागरतल को काटती है—यहाँ उन ज्वारजनित लहरों का जन्म हुआ था, जिन्होंने १९४६ तथा १९५७ में हवाई पर चोट की थी। सोवियत संघ ने अभी हाल ही घोषणा की है कि यह दरार कमचत्का तथा क्यूराइल द्वीपों तक जाती है, जहाँ १९५२ का पड़ा भूकम्प आया था। यह दरार नीचे जापान तक जाती है, जहाँ भूकम्प अक्सर आया करते हैं। पैसिफ़िक तल पर दरार की एक और शाखा अलग होकर इण्डोनेशियाई द्वीपों के साथ-साथ चली जाती है, जहाँ १८८३ में क्राकाटोआ विस्फोटित हुआ था।

ये दरारें २ से ५ मील तक गहरी और २० से २५ मील तक चौड़ी हैं। इस लम्बी दरार के दोनों तरफ़ एक से दो मील तक ऊँचे नुकीले जलवर्ती पहाड़ों की एक मेखला है। संसार के बड़े-बड़े भूकम्प इन्हीं दरारों के पास पैदा होते हैं, क्योंकि पृथ्वी अभी भी सरक रही है और यहाँ अभी भी पहाड़ बन रहे हैं। इनका प्रतिबल बहुत भारी है, और इससे सागर-तट 'फटकर अलग होता' लगता है। सागरतल पर इन दरारों के साथ-साथ ज्वालामुखी पर्वत मिलते हैं; कभी-कभी वे पानी के बाहर अपना सिर उठाकर पैसिफ़िक में एल्युशियन द्वीपों, जापान और क्यूराइल द्वीप-समूह तथा इंदोनेशिया, अटलांटिक में पश्चिमी द्वीप-समूह और एंटार्कटिक में दक्षिण शेटलैंड द्वीपों सरीखे द्वीपीय 'चाप' बनाते हैं।

अंभूव के वैज्ञानिक सागरतल का तथा वहाँ उत्पन्न होने वाले भूकम्पों का पहला विस्तृत अध्ययन कर रहे हैं। उनके लिए माप प्रतिबल तथा तनाव के मुख्य बिन्दुओं को इंगित कर सकते हैं। संसार के सागरतल का सम्पूर्ण चित्र प्राप्त कर लेने और सागरतलीय पपड़ी की बनावट का

अध्ययन करने के बाद ही हम यह समझ सकते हैं कि भूकम्प अचानक क्यों और कब आते हैं।

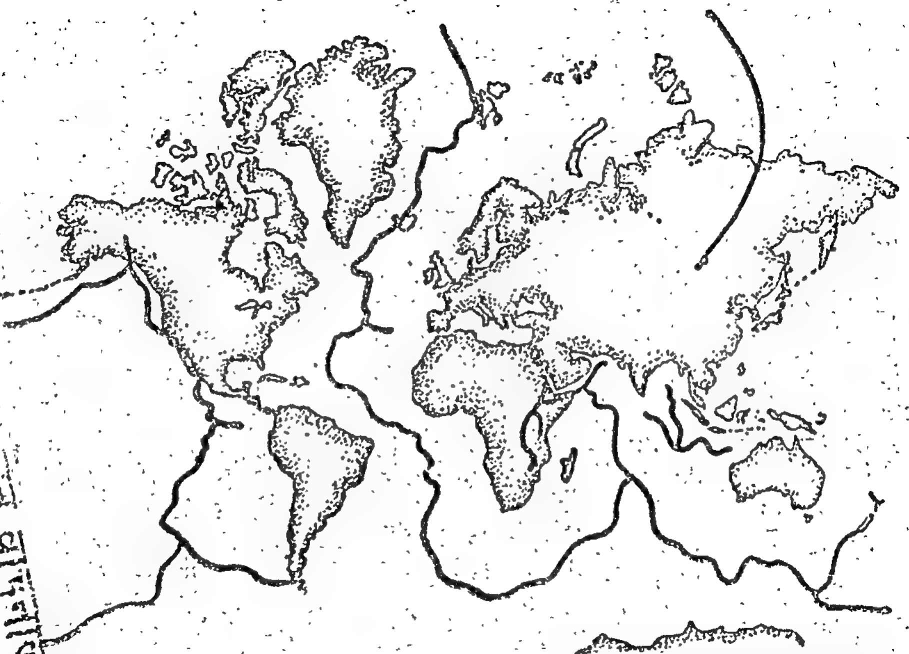
अंभूव का द० ध्रुव प्रदेशीय भूकम्पमापी स्टेशन दक्षिणी गोलार्ध का केन्द्रीय श्रवण-केन्द्र है; अंभूव के जहाजों पर वैज्ञानिक द० ध्रुव सागरतल का अध्ययन कर रहे हैं; उत्तर में रूसी तथा अमरीकी वैज्ञानिक उ० ध्रुव सागरतल का अध्ययन कर रहे हैं और समुद्र के छोर के साथ-साथ भूकम्पविद वहाँ उत्पन्न होने वाले भूकम्पों का अध्ययन कर रहे हैं। भूकम्प-विज्ञानीय श्रवण-केन्द्रों का पहला विश्वव्यापी जाल अब हमने बिछा दिया है, जो लगातार पृथ्वी की नब्ज़ की आवाज़ सुन रहे हैं।

अंभूव के अंग-स्वरूप पृथ्वी की पपड़ी में प्रतिबल को मापने की एक नई विधि की जाँच हो रही है। इससे भूकम्पों की भविष्यवाणी करने की प्रणाली निकल सकती है।

भूमि पर भूकम्पों द्वारा हुए विनाश से मनुष्य बहुत दिनों से परिचित है और डरता आया है। लेकिन यह बीसवीं सदी में ही आकर हुआ कि भूकम्पों द्वारा सागरतल पर पैदा की उथल-पुथल के विस्तार का कुछ आभास होने लगा। १८ नवम्बर, १९२९ को न्यूफाउंडलैंड के तट के आगे अटलांटिक में एक भारी भूकम्प आया। न्यूफाउंडलैंड से इंगलैंड तथा यूरोप तक केबल फैले हुए हैं। पृथ्वी पर किसी भी अन्य जगह की अपेक्षा यहाँ सबसे अधिक जलवर्ती केबल हैं। ये केबल टूट गए और इनका दोष इस भूकम्प को दिया गया।

केबलों द्वारा समाचार प्रेषण बन्द होने के समय की जाँच करने से पता चला कि भूकम्प के केन्द्र के पास के केबल तुरन्त टूट गए थे, तथापि जो केबल उससे अधिक दूर थे, वे एक-एक करके १३ घण्टे की अवधि में कटे थे। कटने के इस धीमे क्रम का क्या कारण था? सागरतल पर क्या हुआ था?

यह पता चला कि धीमी गति से होने वाली इस टूट में प्रत्येक उतरते सागरतल पर पिछली टूट से नीचाई पर हुई थी। टूटने वाला अन्तिम



आकृति ११—सागर-तट की विशाल दरार, ऊपरी रेखाएँ आर्कटिक में मिलती हैं, निचली रेखा एंटार्कटिक की परिक्रमा करती है।

केबल गहरे सागरतल पर भूकम्प से ३०० मील की दूरी पर था। भू-भौतिकीविदों ने यह निष्कर्ष निकाला कि भूकम्प ने कीचड़, रेत तथा सघन जल की एक विशाल राशि को धीमी गति से लुढ़काना शुरू कर दिया था, जिसने ५० मील प्रति घण्टा की चाल से लुढ़ककर केबलों को एक-एक करके काट दिया था। केबल बाद में गहरी कीचड़ में दबे मिले थे। १९५४ में भूमध्यसागर में भी केबलों के साथ यही हुआ था। क्या ये सागर-भ्रंश ही अनेक छोटी-छोटी त्सुनामियों या 'ज्वार-जनित लहरों' को पैदा करते हैं, जिनका कोई कारण नजर नहीं आता? अंभूव के वैज्ञानिक इसका उत्तर खोज रहे हैं।

पहली बार विज्ञान ने उस घटनाचक्र की जाँच शुरू की है, जो सागर-तल का रूप देता है। अंभूव में द० ध्रुवीय महाद्वीप की खोज हो चुकने के बाद पृथ्वी की सतह पर सागर-तल ही अकेला बड़ा अनखोजा प्रदेश बच रहेगा। अंभूव के वैज्ञानिक सागरों के, जिन्होंने पृथ्वी के ७० प्रतिशत भाग को घेर रखा है, नीचे की इस अँधियारी, महत्त्वपूर्ण ज़मीन की कहानी को जानने और उसके पर्यवेक्षण तथा मानचित्रांकन की दिशा में एक बड़ा पग आगे बढ़ा रहे हैं। महान् भूकम्प-तरंगों को साधन-रूप प्रयोग में लाकर वे ठोस पृथ्वी को पपड़ी से सागरतल, और सागरतल से क्रोड तक कुरेद रहे हैं।

लघु भू-तरंगें—सूक्ष्म भूकम्प तरंगें—तक अपनी कहानी सुनाती हैं।

१९४४ में अमरीकी नौसेना क्यूबा के पास केरीबियन सागर में एक तूफ़ानी भूकम्पीय अनुसंधान परियोजना के आरम्भ को खामोशी से क्रियान्वित कर रही थी। अटलांटिकी तूफ़ानों के संकेत भूकम्पमापियों द्वारा पकड़े जा रहे थे। सागर पवनों की ऊर्जा को सागरतल को प्रेषित करके उनके कंपन को दूर तक भूमि में भेज देता था। नौसेना विभिन्न द्वीपों पर स्थापित केन्द्रों में इन लघु भू-तरंगों को सुनकर तूफ़ानों का पता लगाने की कोशिश कर रही थी। लड़ाई के बाद नौसेना ने प्रशान्त सागर सूक्ष्म भूकम्पीय परियोजना बनाकर गुआम, ओकीनावा तथा फिलीपाइन द्वीपों

में केन्द्र स्थापित कर दिए।

सूक्ष्म भूकम्प-तरंगों के निर्वचन की प्रविधि अभी भी अनिश्चित है, यद्यपि आस्ट्रेलियाइयों का दावा है कि तूफ़ानों का पता लगाने में वे इसका उपयोग कर रहे हैं। इसमें कई समस्याएँ हैं। हमें अभी भी यह ठीक से जानना है कि तूफ़ान समुद्र को ध्वनिफलक या ढोल बजाकर किस तरह पृथ्वी की पपड़ी का कम्पन शुरू कर देता है। अंभूव के दौरान इन नन्ही भू-तरंगों का विश्वव्यापी अध्ययन किया जा रहा है। ये समुद्रों और भूमि तक पर सभी मौसमी परिवर्तनों की प्रतिक्रिया दिखाते नजर आते हैं। इस अध्ययन के परिणाम नौसेनाओं और वाणिज्यिक बेड़ों के लिए और मत्स्य-उद्योग तथा मौसम-वैज्ञानिकों के लिए बड़े महत्त्वपूर्ण होंगे।

पवनों की ऊर्जा समुद्र तथा पृथ्वी को उसी प्रकार कम्पित करा देती है, जैसे सारंगी के तारों पर चलाई गई कमान सारे वाद्य-यन्त्र को कम्पित करा देती है। लेकिन पृथ्वी भी वायु को कम्पित करा सकती है। क्राका-टोआ के विस्फोट ने पृथ्वी के चारों ओर कई बार चक्कर काटने वाली एक दाब तरंग और एक ध्वनि तरंग को, जो हज़ारों मील चली थी, जन्म दिया था। अविस्फोटक भूकम्प भी इसी तरह वायु में दाब-तरंगें तथा ध्वनि-तरंगें भेजता है।

भूकम्प के दौरान पृथ्वी तरह-तरह की आवाज़ें पैदा करती है। यह आवाज़ कराहट-जैसी, गरज-जैसी या चिंघाड़ती पवन, पिस्तौल की गोली छूटने या तोप चलने-जैसी हो सकती है। ये आवाज़ें पृथ्वी की पपड़ी के कम्पनों से उत्पन्न होती हैं। दूसरे मापों में लगे भू-भौतिकीविदों के लिए ये कम्पन एक समस्या खड़ी कर देते हैं। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में अलास्का में चुम्बकीय विभिन्नताएँ नापने के एक प्रयास में संवेदी उपकरणों ने कुछ विचित्र उत्पातों को दर्ज किया, जिनका समाधान चुम्बकीय नहीं हो सकता था। अन्त में यह पता चला कि जमी हुई भूमि के ये कम्पन निकट के जंगल में कुछ वैज्ञानिकों द्वारा लकड़ी के काटे जाने से पैदा हो रहे थे, कुल्हाड़ी की हर चोट एक 'चुम्बकीय उत्पात' के तौर पर दर्ज हो रही थी।

पृथ्वी चूँकि ऊर्जा की तरंगों के प्रति बहुत ही संवेदनशील है, इसलिए वैज्ञानिकों ने उसका कृत्रिम ध्वनियों तथा विस्फोटों द्वारा परीक्षण करना सीख लिया है। १९२५ में तैल तथा खनन-उद्योग अपेक्षाकृत नये भूकम्पमापी का उपयोग करके पृथ्वी की पपड़ी का रेखाचित्रांकन करने के लिए पृथ्वी की ऊपरी तह में डाइनामाइट-विस्फोट उत्पन्न करने लगे। तरंगों के विभिन्न प्रकार की मिट्टी तथा शिला से टकराकर उछलने के समय को जानकर भूगर्भशास्त्री पानी, तैल तथा खनिज-भंडारों का पता चला सकते थे।

द्वितीय विश्व-युद्ध के कुछ ही पहले भू-भौतिकीविदों ने महासागरतल की खोज में इस प्रविधि का उपयोग शुरू कर दिया था। तट के पार तैल मिलने के संकेत पाकर उन्हें बड़ी हैरानी हुई। आज महाद्वीपों से लगे समुद्रतल से भारी मात्रा में तैल निकाला जा रहा है। द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद भू-भौतिकीविदों ने सागरतल पर और भी आगे जाकर छोटे-छोटे विस्फोट उत्पन्न करके पता चलाया कि कीचड़ और रेत के नीचे सभी महासागरों के तल एक ही मूल शिला के बने हैं। मॉरिस ईविंग के अनुसार यह खोज एक पुराने सिद्धान्त को असत्य सिद्ध कर देगी। यह सिद्धान्त है कि कोई एक अरब साल पहले चाँद प्रशान्त महासागर से खींच लिया गया था, जिससे वह सागरतल पर एक बड़ा निशान छोड़ गया है।

अंभूव में संसार के हर भाग में कृत्रिम विस्फोट किये जाएँगे। सागरतल का रेखाचित्रांकन करने के लिए सागर-वैज्ञानिक भूकम्प-विज्ञान-प्रविधियों का उपयोग कर रहे हैं। उ० ध्रुव प्रदेश के ऊँचे महाद्वीप में ग्रीनलैंड के हिमावरण पर और दुनिया-भर के हिमनदों पर भूकम्प वैज्ञानिक तथा हिमनद-वैज्ञानिक बर्फ पर लम्बी और मुश्किलों-भरी यात्राएँ कर रहे हैं। बीच-बीच में वे ठहरकर माइक्रोफोनों का अपना जाल बिछाकर बर्फ़ पर डाइनामाइट का विस्फोट करते हैं। हिम-तरंगें बिलकुल भू-तरंगों-जैसी ही होती हैं। वे उछलकर वापस आ जाती हैं और उनकी वापसी का समय यह बता देता है कि बर्फ कितनी मोटी है।

इस पद्धति द्वारा अम्भूव के वैज्ञानिक यह पता लगा भी चुके हैं कि

द० ध्रुव समुद्र के निकट वर्ड वेस पर बर्फ़ की मोटाई १०,००० फुट है। इसमें ५,००० फुट सागर की सतह के ऊपर है और ५,००० फुट उसके नीचे। जो वर्फ सागर की सतह के नीचे है, वह उस भूमि पर टिकी हुई है, जिसे विपुल हिमराशि ने नीचे धँसा दिया है। हिमनद-वैज्ञानिक अब यह जानने का यत्न कर रहे हैं कि क्या महाद्वीप का अन्तःप्रदेश और भी नीचे धँसा दिया गया है, जिससे द० ध्रुव प्रदेश के मध्य में एक विशाल हिम-पूर्ण अवनमन उत्पन्न हो गया है। अगर ऐसा ही हो, तो दुनिया में वर्फ़ की मात्रा अब तक कल्पित मात्रा से कहीं अधिक होनी चाहिए और उसके गलने से समुद्र अनुमानित २०० या ३०० फुट से कहीं ज्यादा चढ़ जाएँगे।

१९ सितम्बर, १९५७ को अमरीकी पारमाणविक ऊर्जा आयोग ने नेवेदर परीक्षण-स्थल पर एक पहाड़ में एक परमाणु बम का विस्फोट किया। दुनिया-भर में भूकम्प-वैज्ञानिकों ने कृत्रिम भू-तरंगों को 'सुनकर' यह जानने की कोशिश की कि क्या वे पृथ्वी के गर्भ के बारे में कुछ नया ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं? लेकिन यह प्रत्यक्षतः एक कमजोर आस्फोट था और इसके अनिश्चित परिणामों का अभी विश्लेषण हो ही रहा है।

बड़ी भू-तरंगों—भूकम्पों—की ऊर्जा पृथ्वी के भीतर निर्मित दावों तथा प्रतिबलों से आती है। पृथ्वी की पपड़ी का हलका 'शोर'—सूक्ष्म भूकम्प-तरंग—तूफ़ानों के कारण है। लेकिन पृथ्वी के भीतर की सबसे बड़ी अकेली गति अंशतः सूर्य की प्रत्यक्ष क्रिया के कारण है। इसे न देखा जा सकता है, न अनुभव किया जा सकता है, फिर भी इसे मापा जा सकता है और इसने पृथ्वी से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन किया है।

महासागरों तथा वायुमण्डल की तरह पृथ्वी पर भी हर दिन उतार-चढ़ाव या स्थल-ज्वार आता है। समुद्री ज्वार किन्हीं-किन्हीं खाड़ियों में ५० फुट या उससे भी अधिक चढ़ सकता है, लेकिन स्थल-ज्वार कभी ही ५ इंच से अधिक ऊँचा होता है। और स्थल-ज्वार इतना ऊँचा भी तभी होता है जब कि सूर्य तथा चन्द्रमा की स्थिति ऐसी होती है कि उनका गुरुत्वाकर्षण-बल पृथ्वी पर एक साथ ही पड़ता है। तभी समुद्रों में 'स्कन्द ज्वार' (स्प्रिंग टाइड) आते हैं। जब सूर्य तथा चन्द्रमा का खिंचाव विपरीत

दिशाओं में होता है, तब औसत स्थल-ज्वार ५ इंच से कम होता है।

ये लघु-ज्वार समस्त पृथ्वी को फुला देते हैं। इनकी ऊर्जा किसी भी भूकम्प में उपलब्ध ऊर्जा से कहीं अधिक होती है। इसलिए भू-भौतिकीविदों ने इन ज्वारों का उपयोग ठोस पृथ्वी की सामर्थ्य और दृढ़ता के अध्ययन में किया है। इन ज्वारों ने उन्हें इस बात का एक और प्रमाण दिया है कि पृथ्वी का क्रोड द्रव है, क्योंकि ये ज्वार केन्द्रीय क्रोड की गति से ही आते हैं।

महत्त्वपूर्ण होने पर भी ये ज्वार इतने सूक्ष्म होते हैं कि ज्योतिर्विज्ञानीय या पर्यवेक्षणीय पद्धतियों से इन्हें नहीं मापा जा सकता। इनके बजाय इन्हें पृथ्वी के गुरुत्व में आये परिवर्तनों से मापा जाता है।

गुरुत्व का अंभूव के कार्यक्रम में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह पृथ्वी की बनावट तथा स्थल-ज्वारों के बारे में बहुत जानकारी देता है।

'गुरुत्व का क्षेत्र' प्रकृति की सबसे कम समझी जाने वाली बड़ी घटनाओं में है। ज्योतिर्विज्ञान, भू-भौतिकी, यान्त्रिकी, इंजीनियरी, अन्तरिक्ष-उड़ान तथा अन्तरिक्ष-औषधिविज्ञान सहित विज्ञान की कई प्रशाखाओं की गणना में इसका एक बल के रूप में 'उपयोग' किया जाता है। इस वैज्ञानिक गणना में इसे 'जी' (g) कहा जाता है और इसके बल का एक गणित-शास्त्रीय तुल्यांक भी है। इतने पर भी यह अभी तक आधुनिक भौतिकी का एक रहस्य ही है। एटबर्ट आइन्सटीन, जिन्होंने बीसवीं सदी के विज्ञान के निर्माण के लिए इतना कुछ किया, ने अपने जीवन के अन्तिम दिन इसे समझने और इसकी व्याख्या करने के यत्न में ही लगाए।

अंभूव में गुरुत्व की प्रकृति या रहस्य को जानने का कोई यत्न नहीं किया जा रहा है, वरन् इसका उसी तरह एक औज़ार के रूप में उपयोग किया जा रहा है, जैसे कि चुम्बकत्व का या भू-तरंगों का।

गुरुत्व विज्ञान की एक समस्या लगभग उसी समय बन गया था जब विलियम गिल्बर्ट ने यह दिखाया था कि चुम्बकत्व एक पार्थिव 'बल' है। लेकिन गुरुत्व में जिनकी दिलचस्पी थी, वे नाविक लोग नहीं, प्रत्युत ...निक थे, क्योंकि इसका युद्ध में तुरन्त साधन-रूप उपयोग हो सकता

था। तोपें, जो अभी भी नयी ही थीं, इतनी विकसित की जा चुकी थीं कि अब बन्दूकों और तोपों की मार को अचूक बनाने की कोशिश की जा रही थी। अब तक तो उन्हें 'हथियार' उनके क्रमहीन गोलों के डर की अपेक्षा उनके शोर के कारण अधिक माना जाता था।

तोप के गोले के रास्ते की गणना करने के लिए यह जानना जरूरी था कि निशाने पर जाते-जाते वह कितना मुड़ेगा या बल खाएगा। क्या गोले के भार और चाल से कोई फ़र्क पड़ता था? गोले को झुकाने का यथा-तथ्य कोण क्या था और एक विशेष आकार के गोले को किले में पहुँचाने के लिए कितनी बारूद चाहिए थी?

इन सवालों के जवाब देने के लिए गेलीलियो ने १५९२ में गुरुत्व पर अपने प्रयोग किये। उसने सिद्ध किया कि गोले के भार का इस पर कोई असर नहीं पड़ता कि वह कितनी तेज़ी के साथ गिरेगा। गुरुत्व का नीचे खींचने वाला बल सभी वस्तुओं के लिए समान था। फ़र्क सिर्फ़ यही था कि भारी गोले को ऊपर पहुँचाने के लिए ज्यादा बारूद के विस्फोट की जरूरत पड़ती थी, लेकिन एक बार ऊपर पहुँचने के बाद वह छोटे गोले के बराबर तेज़ी के साथ ही नीचे गिरता था। इस तरह तोपखाने के विज्ञान या प्राक्षेपिकी का जन्म हुआ। गुरुत्व की समस्या का यह प्रारम्भिक प्राक्षेपिक दौर अंभूव के कार्यक्रम में राकेटों के छोड़े जाने में, और पृथ्वी के चक्कर लगाने योग्य ऊँचे और तीव्रगामी उपग्रहों के छोड़ने में अभी भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।

जिस 'गुरुत्व-करण' ने पृथ्वी के कई रहस्यों को खोलना शुरू किया, वह तोप का गोला नहीं, वरन् कहीं अधिक सरल-करण—दोलक (पेंडुलम) या धागे से बँधा भार था। जिस तरह से गोले के गिरने की रफ्तार नापी जा सकती थी, उसी तरह दोलक के झूलने की रफ्तार भी नापी जा सकती थी। दोनों ही मामलों में गुरुत्व की क्रिया को मापा जाता था।

तोप के गोले की तरह दोलक-भार भी उसी ऊँचाई से सदा समान चाल से गिरता है। दोलक के झूलने की रफ्तार धागे की लम्बाई पर निर्भर करती है, क्योंकि इसी पर यह निर्भर करता है कि वह कितनी दूर

गिरेगा। धागा जितना छोटा होगा, झूलने की रफ़्तार भी उतनी ही तेज़ होगी। कहा जाता है कि दोलक की नियमित झूल की तरफ गेलीलियो का ध्यान एक गिरजाघर की छत से लटके लेंप के झूलने को देखकर और उसका अपनी नाड़ी की गति से मिलान करने पर गया था।

'गुरुत्व का बल' भार को उसी तरह खींचता लगता था जैसे चुम्ब-कत्व का बल' दिक्सूचक की सुई को खींचता था। दोलक के ज्ञान से १७वीं सदी में पहली यांत्रिक घड़ी ईज़ाद हुई। इस घड़ी में सही लम्बाई का एक दोलक था, जिसके एक सिरे पर एक भार लटका था। भार के हर चाप में 'गिरने' में दोलक एक सैकण्ड लगाता था। तुरन्त ही एक अजीब बात ध्यान में आने लगी—चुम्बकत्व की भाँति गुरुत्व भी सभी जगह एक समान नहीं था। फ्रांस में ठीक समय बताने वाली घड़ियाँ अफ्रीका में सुस्त पड़ जाती थीं और लन्दन में जो घड़ियाँ ठीक समय देती थीं, ब्रह्मा द्वीपों में वे बेकार हो जाती थीं। क्यों? पता चला कि पृथ्वी का फिरना 'गुरुत्व' को प्रभावित कर रहा था, क्योंकि वह दोलक के गिरने की रफ़्तार को धीमा कर देता था। जैसे-जैसे विषुवृत्त के पास जाया जाता था, पृथ्वी का अप-केन्द्री घर्णन तेज़ होता जाता था। यह बात ऐसी ही थी जैसे एक मक्खी तेज़ी से घूमते गोले पर उतरने की कोशिश कर रही हो। मक्खी अगर गोले के विषुववृत्त पर उतरती है, तो घर्णन का अपकेन्द्री बल उसे दूर फेंक देगा, लेकिन अगर वह गोले के ध्रुवों पर उतरेगी, तो वह वृत्त में तो घूमने लगेगी, पर गोले से फेंकी नहीं जाएगी। विषुववृत्त के निकट पहुँचने के साथ पृथ्वी की अपने पर से भार को फेंक देने की यह प्रवृत्ति दोलक का बहुत तेज़ी से गिरना रोकती है। इसलिए ध्रुवों के पास पहुँचने के साथ 'गुरुत्व का खिंचाव' कुछ बढ़ता जाता है, जिससे दोलक के गिरने की रफ़्तार तेज़ हो जाती है।

दोलक की विषुववृत्त तथा ध्रुवों पर झूलने की रफ़्तारों में अन्तर बहुत थोड़ा है, लेकिन दोलक वाली घड़ी में यही थोड़ा-थोड़ा करके इकट्ठा होता रहता है और जल्दी ही घड़ी को या तो बहुत धीमी कर देता है, या ख़ासी तेज़ अंभूव के दौरान किये जा रहे सभी गुरुत्व-मापों के लिए दोलक

जाएगी।

अंभूव के इन प्रयासों से पृथ्वी का पहला 'गुरुत्व-मानचित्र' बनाने में सहायता मिलेगी। गुरुत्व-मानचित्र सामान्य मानचित्र से भिन्न होता है, लेकिन मानचित्र-निर्माताओं, पर्यवेक्षकों तथा सैन्य-संचालकों के लिए यह उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है। उदाहरण के लिए, पर्यवेक्षक जब पृथ्वी के किसी भाग को मापना चाहता है, तो अपने यन्त्र को सीधा रखने के लिए वह साहुल का इस्तेमाल करता है। साहुल सीधा-सादा एक लटकता भार होता है; लेकिन अगर उस जगह कुछ गुरुत्व-अन्तर है, तो यह भार सीधा नीचे नहीं लटकेगा। वह कुछ कोण पर झुकेगा और अधिकतम संहति के क्षेत्र की ओर खिंचा रहेगा। स्थल-ज्वार, पर्वत, महासागर—सभी साहुल पर प्रभाव डालते हैं।

ज्योतिर्वैज्ञानिक के सामने भी यही समस्या है। सूर्य या किसी नक्षत्र-विशेष के कोण का प्रेक्षण वह लटकती साहुल से करता है। अगर साहुल ज़रा भी बेजगह हो, तो कोण का माप गलत होगा। गुरुत्व की इस समस्या पर काबू पाने के लिए डॉक्टर मार्कोविट्ज़ ने अपने ऐसे कैमरा का विकास किया है, जो साहुल की ज़रूरत के विना ही चन्द्रमा तथा नक्षत्रों के कोण माप लेता है।

आज पृथ्वी के जो नकशे हैं, वे हज़ारों यथार्थतापूर्वक मापे टुकड़ों से बने हैं, लेकिन साहुल रेखा में विभिन्नताओं के कारण उनका मेल नहीं बैठता। जब भू-मापनविद तथा मानचित्र-निर्माता पृथ्वी का एक यथार्थ गुरुत्व मानचित्र बना लेंगे, तो उन्हें वे साधन मिल जाएँगे, जिनसे अच्छे नकशे बनाए जा सकते हैं और पृथ्वी की आकृति जानी जा सकती है।

अंभूव के दोलक तथा गुरुत्वमापी कार्यक्रम में ३० राष्ट्रों के वैज्ञानिकों तथा सरकारों का सहयोग है। संसार की तैल-कम्पनियाँ उन्हें सहायता दे रही हैं। मिसाल के तौर पर अमरीका की गल्फ़ ऑइल कम्पनी ने अंभूव के दौरान उपयोग के लिए फिनलैंड को अपना समुद्री गुरुत्वमापी और अमरीका को अपने दोलक दिये हैं। वैज्ञानिक तैल कम्पनियों द्वारा दुनिया के कई भा[illegible] संकड़े [illegible] भी पाना चाहेंगे। इनमें से कुछ आँकः

सरकारों तथा वैज्ञानिकों को दे दिये गए हैं, लेकिन कई माप मूल्यवान वाणिज्यिक रहस्य हैं, इसलिए वैज्ञानिकों को इन्हें स्वयं प्राप्त करना होगा।

अंभूव द्वारा द० ध्रुव में उपयोग में लाया जाने वाला आधुनिक दोलक इतना संवेदी है कि भू-तरंगों तथा ताप-परिवर्तनों से बचाने के लिए उसको पृथक्कृत करना ज़रूरी है। इसका भार १००० पौंड से अधिक है और इसके उपस्कर बिजली से चलते हैं। लेकिन इसके उपयोग का सिद्धान्त फिर भी वही है—सामान्य झूलते भार के झुलाव के समय को निर्धारित करना।

गुरुत्व के माप का आरम्भ अचूक गोलंदाजी की फौजी आवश्यकता से आरम्भ हुआ था और अन्तरमहाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों के इस युग में ये माप अभी भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। पृथ्वी पर गुरुत्व अन्तरों के कारण प्रक्षेपास्त्र छोटे-छोटे 'उभारों' पर ऊपर उठ जाता है और गुरुत्व की 'घाटियों' या 'नमनों' पर नीचा हो जाता है। ये 'उभार' तथा 'नमन' गुरुत्व के खिंचाव में अन्तर के कारण, या भौतिकीविदों की भाषा में 'अवकाश की वक्रता' के कारण होते हैं।

मामूली होने पर भी ये 'उभार' तथा घाटियाँ दूरगामी प्रक्षेपास्त्र को इतना विचलित कर सकती हैं कि वह निशाना चूक जाए। शायद यही कारण है कि सोवियत संघ ने, जिसने ज्योतिर्विज्ञान, मौसम विज्ञान तथा अन्य अध्ययनों में दूसरे राष्ट्रों के साथ सहयोग किया है, अपने प्रदेश—पृथ्वी के भूक्षेत्र का छठा भाग—के अधिकांश भाग के गुरुत्व-चित्र को गुप्त रखा है।

अंभूव के उपग्रह गुरुत्व के 'उभारों' तथा 'घाटियों' पर होकर जाएँगे और यह एक कारण है, जिससे उनकी कक्षा का संगणन कठिन होगा। पाँच इंची स्थल-ज्वार तो इतना मामूली है कि इस पर प्रभाव नहीं डालेगा, लेकिन विषुववृत्त पर का १३ मील का उभार उपग्रह पर खासा विचलन-खिंचाव डालेगा।

उपग्रह के पथ में परिवर्तनों के सावधानीपूर्ण मापों द्वारा भू-भौतिकीविद नीचे की पृथ्वी की संहति की गणना कर सकने और उसकी पपड़ी के घनत्व तथा रचना के बारे में कुछ जान सकने की आशा करते हैं। यह समझा जाता है कि इन मापों से पृथ्वी की 'गुरुत्व-आकृति' आकलित की जा सकती है।

पहले कुछ उपग्रहों का अनुगमन और मापन सम्भवतः सरल न हो। किसी उपग्रह द्वारा पृथ्वी का यह गुरुत्व-चित्र दिये जाने में अभी काफ़ी समय लग सकता है।

अंभूव के दौरान अमरीका द्वारा छोड़े गए उपग्रह सोवियत संघ पर से नहीं गुज़रेंगे, वरन् वे लगभग ३५° उत्तर और ३५° दक्षिण की विषुववृत्तीय कक्षा ग्रहण करेंगे, जबकि रूसियों द्वारा छोड़े गए उपग्रह सोवियत संघ पर से गुज़रेंगे और उनकी सूक्ष्मतम गतिविधियों को मूलतः सोवियत वैज्ञानिकों द्वारा ही जाना जाएगा। अगर इस जानकारी को न बताया गया, तो अंभूव के पूरा हो जाने पर भी सोवियत संघ का गुरुत्व-चित्र रिक्त ही रहेगा।

: ८ :

अयनमण्डल का क्षेत्र

अंभूव के वैज्ञानिक पृथ्वी से ३५ मील ऊपर से शुरू होकर सैकड़ों, शायद हज़ारों मील दूर तक फैली उच्चस्तरीय विरल वायु—अयनमंडल—का पहला विश्वव्यापी अध्ययन आरम्भ कर रहे हैं। अयनमंडल मानव-जाति का बीसवीं सदी का सीमान्त है। १९०० से इसकी खोज तथा अनुसंधान चल रहे हैं। इसके आगे अन्तरिक्ष है। अयनमण्डल उन बड़ी प्राकृतिक घटनाओं में है, जिनकी समझ हमें सबसे कम है, क्योंकि इसकी खोज हाल ही में हुई है। यह आज की कुछ बड़ी वैज्ञानिक समस्याओं का स्रोत है। विश्वविद्यालयों, गैर-सरकारी शोध-संस्थाओं तथा सरकारी अभिकरणों के कार्यकर्ता-मण्डलों से आये अंभूव के वैज्ञानिक का सम्बन्ध मात्र अयनमण्डल के अध्ययन में सन्निहित भौतिकी तथा सैद्धान्तिक समस्याओं से ही है। आधुनिक जीवन की जटिलता ने इन वैज्ञानिक प्रश्नों को कई समूहों के लिए महत्त्वपूर्ण बना दिया है। इनमें इलेक्ट्रानी तथा संचार-उद्योग, वाणिज्यिक वायु, यातायात कम्पनियाँ तथा सेनाएँ भी आ जाती हैं।

यह सन्देह कि बादलों के बहुत ऊपर की विरल वायु विद्युन्मय हो सकती है, पहले-पहल १८८२ में हुआ था। इसी साल पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में रहस्यमय दैनिक परिवर्तनों का अध्ययन करने के लिए प्रथम ध्रुवीय वर्ष के अभियान-दलों ने कूच किया था। मैंचेस्टर विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर बेलफ़ोर स्टेवार्ट ने सिद्धान्त रखा कि पृथ्वी के चुम्बकत्व में

तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों का कारण यही हो सकता है कि पृथ्वी से बहुत ऊँचाई पर विद्युत्-धाराएँ प्रवाहित हैं।

१२ दिसम्बर, १६०१ को गुलीत्मो मार्कोनी ने इंगलैंड में पोल्डहू से न्यूफाउंडलैंड (उत्तर अमरीका) में सेंट जॉन को एक बेतार का सन्देश भेजा। भौतिकीविदों ने उनसे कहा था कि यह असम्भव होगा। उन लोगों का कहना था कि तभी—कुछ पहले ही—खोजी गई रेडियो-तरंगें प्रकाश की तरह सीधी रेखा पर चलती हैं और क्षितिज पर झुक नहीं सकतीं। मार्कोनी की तरंगें अन्तरिक्ष में विलीन हो जानी चाहिए थीं। इसकी जगह वे क्षितिज पर वक्राकार मुड़ गईं और न्यूफाउंडलैंड में पृथ्वी पर पहुँच गईं।

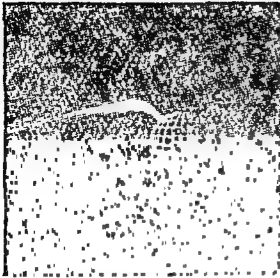
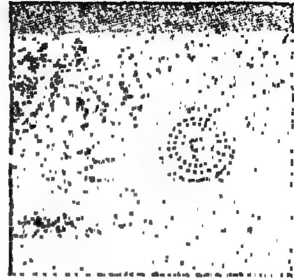
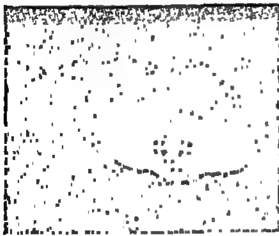
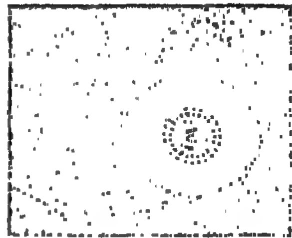
इसका समाधान चाहिए था, और यह छः महीने के भीतर ही मिल गया। हैवीसाइड नाम के एक अंग्रेज और केनेली नाम के एक अमरीकी ने स्वतन्त्र रूप से सुझाया कि चूंकि रेड़ियो-तरंगें केवल सीधी रेखा पर ही चल सकती हैं, तो वे वायुमण्डल में किसी ऊँची परत से टकराकर उछल जाती होंगी। उन्होंने कहा कि मार्कोनी की तरंगें न्यूफाउंडलैण्ड समुद्र की सतह और ऊपर की इस रहस्यमय तह के बीच उछल-उछलकर पहुँची हैं। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि यह परत स्टेवार्ट के सुझाव के अनुसार संभवतः विद्युत्-आवेषित है, क्योंकि यह बात रेडियो-तरंगों के उछलकर वापस आने की व्याख्या कर सकती है।

चौबीस साल बाद, १६२५ में, अयनमण्डल की पहली परत 'मिली'। यह एरातोस्थेनीज़ द्वारा प्रयुक्त पद्धति-जैसी त्रिकोणीकरण की पद्धति से निकाली गई थी। एक रेडियो-तरंग ऊपर भेजी गई, और १७ मील दूर एक संग्रहण केन्द्र ने 'प्रतिच्छाल' को सुना। तरंग के ऊपर जाने और लौटकर आने के समय और कोण को मापकर यह पता चलाया गया कि यह परत ६२ मील की ऊँचाई पर थी। १६२५ में १० या १५ मील से ऊपर की हर चीज़ अज्ञात प्रदेश थी। रेडियो इस ऊँचाई के आगे प्रवेश करने में सफल हो गया और राडार का सिद्धान्त, जो दूर की वस्तुओं पर रेडियो तरंगों का टकराकर 'उछालता' है, खोजा गया।

अयनमण्डल का अध्ययन सही अर्थों में शुरू हुआ। १९३२ में विकसित होता रेडियो-उद्योग यह पाकर चकित हो गया कि वह विश्व की आवाज़ सुन रहा है। बैल टेलीफोन कम्पनी के एक रेडियो इंजीनियर कार्ल जॉन्स्की अयनमण्डल की ध्वनियों के अध्ययन के लिए अपने बनाये एक बड़े रेडियो संग्रहण सेट पर आकाश के किसी विन्दु से एक अजीब हिसहिसाहट और स्टेटिक को पकड़ रहे थे। इन ध्वनियों का स्रोत २४ घण्टे में एक वार पृथ्वी के चारों ओर घूमता लगता था। जॉन्स्की ने निश्चय किया कि यह आवाज़ विश्व के किसी निर्दिष्ट विन्दु से आती है।

अन्तरिक्ष तरंगों के पहली वार सुने जाने के साथ ही वैज्ञानिक द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय ध्रुवीय वर्ष (१९३२-३३) मना रहे थे। प्रथम ध्रुवीय वर्ष की भाँति यह भी उ० ध्रुव प्रदेश तक ही सीमित था, लेकिन इस वार रेडियो तथा अयनमण्डल का उपयोग करके अभियान के सदस्यों ने महत्त्वपूर्ण खोजें कीं—विशेषकर प्रभामण्डल तथा सूर्य और 'अयनमण्डलीय तूफ़ानों' में, जो दूरवर्ती रेडियो-संचार को विध्वस्त कर रहे थे, के वारे में जो तथ्य प्रकट होने लगे, वे अचम्भे में डालने वाले थे। १९३५ तक यह स्पष्ट हो गया कि अयनमण्डल सूर्य द्वारा केवल प्रभावित ही नहीं होता, वरन् उत्पन्न होता है और उसके कुछ गुणधर्म सूर्य के साथ-साथ मिनट-मिनट, दिन-दिन और मौसम-मौसम पर वदलते रहते हैं। उच्चतर वायु का यह विद्युतन सूर्य के २७-दिवसीय घूर्णन और ११-वर्षीय चक्र के साथ वदलता रहता है।

नये तथ्य इतनी तेजी के साथ आये और उन्होंने इतने नये सवाल खड़े किये कि अंभूव का समायोजन द्वितीय ध्रुवीय वर्ष के २५ वर्ष वाद ही करना पड़ा, न कि ५० वर्ष वाद, जैसा कि पूर्व परम्परा के अनुसार होता। कि अयनमण्डल स्थानीय न होकर भूगौलिक है, इसलिए इस वार ० ध्रुव प्रदेश के अध्ययन के वजाय विश्वव्यापी अध्ययन का सूत्रपात किया गया। अंभूव के कार्यकलाप का एक खासा भाग अयनमण्डल की हेली को हल करने के प्रयासों का है। द्वितीय विश्वयुद्ध, जिसमें राडार, रेडियो तथा अयनमण्डल का विस्तृत उपयोग हुआ था, ने वैज्ञानिकों को

चित्र १५ (अ तथा ब)—पृथ्वी की ओर आने वाली एक कण-धारा बेनेट के ट्रॉमेंट्रोन में अवकाश की तरफ घूम जाती है। चित्र में बगल से तथा ऊपर से देखने वाला दृश्य दिखाया गया है। स तथा द—एक कणधारा पृथ्वी की ओर झुक जाती है। मेरु प्रदेश पर आघात करने पर वह फिर अवकाश में उछलकर कुंडली बना लेती है। यह नीचे उतरकर पृथ्वी पर किसी अन्य स्थान पर—आमतौर पर दक्षिणी मेरु प्रदेश पर—आघात कर सकती है। इ तथा ई—कणधारा पृथ्वी के इर्द-गिर्द धारा वलय बना देती है। इसकी आकृति यह इंगित करती है कि यह पृथ्वी के आसपास की चुम्बकीय बल-रेखाओं का अनुगमन करती है और मेरु-अक्षांशों पर तीव्रतम होती है।





चित्र १६ (ऊपर, बाईं ओर)—जहाज़ पर सवार सागर-वैज्ञानिक फ़ैदममापी पर एक प्रशांत सागरीय पर्वत का रेखांकन कर रहा है। यह यंत्र सागरतल को भेजी ध्वनि की गतिध्वनि को अंकित करता है।

चित्र १७ (ऊपर दाहिनी ओर)—जहाज पर सवार एक भू-भौतिकीविद एक विस्फोट और लौटती तरंगों के भूकंपी अभिलेख का अध्ययन कर रहा है।

वेत्र १८ (नीचे)—हिमनदीय हिम की मोटाई का रेखांकन करने के लिए भूकंपविद भूकंप-श्रवण-विधि का उपयोग करते हैं।

चित्र १६—कमांडर कास्त्यू के गोताखोर दल के फ्रान्सीसी सागर-वैज्ञानिक फारस की खाड़ी के तल पर एक जलमग्न गुरुत्वमापी की जाँच कर रहे है ।



त्र २०—राकून (हिलियम भरे प्लास्टिक के गुब्बारे, एंटेना तथा रेडियो संग्रहण यंत्र तथा लटके हुए रॉकेट सहित) धीरे-धीरे ऊपर उठ रहा है ।

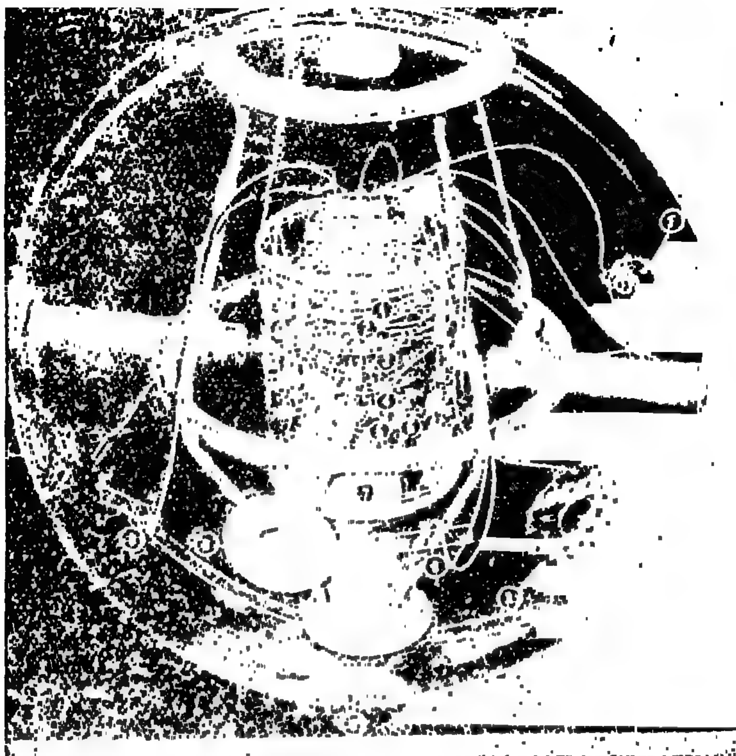
चित्र २१—जोडरेल बैंक (चेशायर, इंगलैंड) का दुनिया का सबसे बड़ा रेडियो दूरदर्शी। यह सूर्य तथा आकाशगंगा से आने वाले रेडियो शोर को 'सुनता' तथा उसका पथन करता है।

चित्र २२ (नीचे)—कोलोरेडो के फ्रिट्ज शिखर (९००० फुट) पर एक दीप्तिमापी हलकी वायु-उद्दीप्ति का पथन कर रहा है। अंभूव के दौरान दुनिया-भर में ऐसे उपकरण प्रयोग में आ रहे हैं।



चित्र २३—१९४७ के सूर्य-कलंक चरम के दौरान चित्रित अनेक सूर्यकलंक।
चित्र २४ (नीचे)—अब तक चित्रित सबसे बड़ी सूर्योन्नत अग्निशिखा (४ जून, १९४६)।





चित्र २५—अमरीकी वेंगार्ड उपग्रह को यंत्रिका का प्लास्टिक आवरण में नमूना।

(A) सौर-कोशिका—यह सूर्य की ऊर्जा से काम करती है। और बड़ी बैटरी को अवकाश देती है।

(B) सूर्य की हाइड्रोजन मुक्त लीमन एल्फा पारबैंगनी प्रकाश के पतले पट्टे को मापने वाला अयनकक्ष।

(C) तापमापी—यह+ १५०° से—४०° से तक के ताप मापता है।

(D) क्षरण मापक—यह उपग्रह की सतह पर उल्कीय धूल के आघात से हुए क्षरण को मापता है।

(E) दाबमापक यह निर्धारित करता है कि उल्का से कहीं उपग्रह में छेद तो नहीं हो गया।

(F) उल्काघात सुनने का माइक्रोफोन।

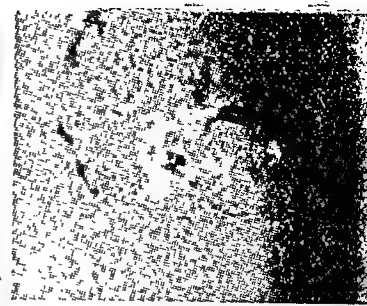
(G) उपग्रह को रॉकेट के तृतीय खंड से अलग करने वाला सकोटर।

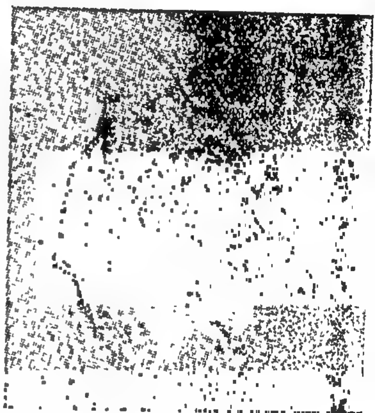
(H) एंटेना के सकोटर।

उपकरणिका

(१) भूमि को सूचना भेजने वाला मिनिटैक रेडियो प्रेपित्र।







[illegible] चमकीले प्रदेशों तथा कलंकों के ऊपर के वर्णमंडल में होता है।

चित्र २७ (ऊपर, दाएँ)—३ जुलाई, १९५७ को सुबह ७·२२ पर सूर्य पर एक उद्वेग का आरम्भ हुआ। चित्र २८ (दाईं ओर)—चालीस मिनट बाद वह विराट आकार प्राप्त करके पृथ्वी की ओर कणों तथा विकिरण का उत्सर्जन करने लगा।

(३) उल्का-आघात-गणक आघात की गणना करता है और उसे पृथ्वी को भेजता है।

(४) कोड-प्रणाली उपग्रह द्वारा संग्रहीत सूचना को छाँटकर भेजने के लिए प्रस्तुत करती है।

(५) लीमन एल्फा तथा अंतरिक्ष किरण इकाइयाँ—पहली इकाई प्रत्येक कक्ष में सूर्य द्वारा उत्सर्जित लीमन एल्फा विकिरण की अधिकतम मात्रा की, और दूसरी इकाई अंतरिक्ष-किरणों की जानकारी एकत्र करती है।

(६) सौर-उद्वेग के दौरान लीमन एल्फा विकिरण का चरम मापने का लीमन एल्फा-प्रवर्धक तथा पृथक् अंतरिक्ष-किरण-प्रवर्धक।

(७) पारा बैटरी-प्रदाय।



चित्र २६—३१ जनवरी, १६५८ को जुपीटर—सी राकेट नभावतरण फलक से ऊप
उठ रहा है। सूई-सा एक्सप्लोरर उपग्रह ऊपरी सिरे पर साफ देखा जा सकता है।

जल्दी भू-भौतिकीय वर्ष मनाने की प्रेरणा दी।

२७ और २८ फरवरी, १९४२ को इंगलैंड के सुरक्षात्मक राडार-जाल ने एक तेज़ शोर को पकड़ा; जो प्रत्यक्षतः या तो जर्मन वायुयानों से आ रहा था, या किसी नयी राडार-विरोधी युक्ति से। कुछ राडार-चिह्नकों ने इस शोर का आकाश में अनुसरण किया, उसकी स्थिति तथा ऊँचाई को निर्धारित किया और पाया कि वे सूर्य को सुन रहे थे। ज्योति-वैज्ञानिकों ने बताया कि उस दिन एक बड़ा कलंक सूर्य के केन्द्र-भाग से गुज़र रहा था और उस कलंक के निकट २८ फरवरी को बड़ी ज्वाला फूटी थी।

युद्धकालीन संचार इतने महत्त्वपूर्ण थे कि मित्रराष्ट्र अयनमण्डल के 'रेडियो-भेदन' में शामिल हो गए, ताकि उसके दिन-दिन के परिवर्तनों और प्रभावशीलता की भविष्यवाणी की जा सके। उन्होंने द० ध्रुव-प्रदेश, प्रशान्त तथा यूरोप में अयनमण्डल ध्वनि-परीक्षण-केन्द्र स्थापित किये, और वाशिंगटन, लन्दन, पेरू तथा आस्ट्रेलिया में पहले से ही काम करते कुछ अग्रगामी केन्द्रों के साथ इन्होंने अयनमण्डल की पहली संसार-व्यापी झलक प्रस्तुत की।

सूर्य, अयनमण्डल तथा सूर्य व अन्तरिक्ष से आने वाली तरंगों का गहनतर अध्ययन १९४६ में आरम्भ हुआ। अमरीका में राष्ट्रीय मानक कार्यालय की रेडियो-प्रसारण-प्रयोगशाला शीघ्र ही प्रमुख रेडियो तथा अयनमण्डल-अनुसंधान-संस्था बन गई। 'रेडियो कारपोरेशन ऑफ़ अमेरिका' ने १९४६ में अपना निजी सतत सूर्य-कलंक 'पतरोल' स्थापित किया और इसके साथ ही, विना इरादे के ही, रेडियो-उद्योग भी सौर-प्रेक्षण व्यापार में सम्मिलित हो गया।

अन्तरराष्ट्रीय संसार को मिनटों से लेकर घण्टों तक की अवधियों के लिए छिन्न-भिन्न करने वाले अचानक रेडियो-अवरोधन का दोष सूर्य-कलंकों तथा सौर-आस्फोटों को दिया जा रहा था। १०० मील तक के फ़ासलों के भीतर ग्रहण किए जाने वाले सामान्य रेडियो तथा टेलीविजन-प्रसारण सामान्यतः प्रभावित नहीं होते थे, क्योंकि वे अयनमण्डल का

उपयोग नहीं करते थे, वरन् अपनी थोड़ी दूरियों पर अपनी तरंगें भूमि के निकट ही भेजते थे। लेकिन अन्तरराष्ट्रीय रेडियो की 'लघु' तरंगें अयनमण्डलीय परतों द्वारा उछाली जाती थीं और जब ये लहरें 'अदृश्य' या 'अस्थिर' हो जाती थीं, तो संचार बन्द हो जाते थे।

१९५७ में, जिस साल अंभूव का आरम्भ हुआ, 'रेडियो कारपोरेशन ऑफ़ अमेरिका' (आरसीए) ने घोषित किया कि उसने सूर्य-कलंकों द्वारा उत्पन्न समस्या को अंशतः हल कर लिया है। अयनमण्डल-वैज्ञानिकों ने पता लगा लिया था कि किसी सूर्य-कलंक के प्रभावों की भविष्यवाणी की जा सकती है और 'आरसीए' ने अपने संसार-व्यापी रेडियो-जाल में सूर्य-कलंकों का 'उपयोग' करना आरम्भ कर दिया था, आरसीए ने सूर्य तथा अयनमण्डल का उपयोग करने के उद्देश्य से अपनी तरंग—लंबाइयों में निरन्तर हेर-फेर करना सीख लिया।

परतों की रेडियो-तरंगों को वापस उछाल देने की क्षमता उनके विद्युतन या 'अयनीकरण' के कारण है और यह परतों द्वारा प्राप्त पारबैंगनी विकिरण की मात्रा पर निर्भर करता है। परत में पारबैंगनी अंश की वृद्धि से उसका अयनीकरण बढ़ जाता है और यह कई मीलों तक ऊपरी परतों की ऊँचाई को भी बदल सकता है। फलतः मौसम के साथ और दिन के दौरान में ये परतें सूर्य के कोण तथा तीव्रता में परिवर्तन के अनुरूप चढ़ती-उतरती रहती हैं। किसी सौर-आस्फोट के दौरान किसी अयनमण्डलीय परत का अयनीकरण अचानक बढ़ सकता है, क्योंकि वायु के अधिक परमाणु विद्युन्मय हो रहे हैं। दूसरे समयों पर ये परतें रहस्यजनक ढंग से टूट जाती हैं। रेडियों-संचार की परेशानी का कारण यही परिवर्तन थे, क्योंकि हो सकता था कि रेडियो-तरंगों को वापस उछलने के लिए अचानक कभी कुछ न मिले या वे अचानक किसी विद्युदित परत द्वारा जज़्ब कर ली जाएँ।

एक विशेष आवृत्ति या तरंग-लम्बाई की रेडियो-तरंग, जो एक परत से उछल जाती है, वह प्रायः उससे गुजरकर किसी उच्चतर परत से नहीं उछल पाएगी। रेडियो-प्रसारण-प्रणालियों को इस कारण यह सीखना पड़ा कि अयनमण्डल के परिवर्तनों के साथ रहने के लिए वे अपनी आवृत्तियाँ

अंभूव के दौरान राष्ट्रीय मानक कार्यालय तथा प्रतिरक्षा संगठन सभी राष्ट्रों के वैज्ञानिकों के साथ सहयोग कर रहे हैं।

रेडियो-उद्योग की भाँति राष्ट्रीय मानक कार्यालय सूर्य, सूर्य-कलंकों तथा अयनमण्डल की परिस्थितियों पर सतत निगाह रखता है। यह उन सभी के लिए, जो अंतर्राष्ट्रीय रेडियो का उपयोग करते हैं, दैनिक रिपोर्टें प्रसारित करता है और भावी अयनमण्डलीय परिस्थितियों की घण्टों पहले प्रसारणा करता है। रेडियो कारपोरेशन ऑफ़ अमेरिका, जो संसार-व्यापी पैमाने पर काम करती है, भविष्यवाणियाँ ३६ घण्टे पहले कर देती है। अमरीका की सशस्त्र सेनाएँ अपने रेडियो तथा राडार-संचार के लिए इन रिपोर्टों तथा भविष्यवाणियों पर निर्भर करती हैं।

सदा बदलता अयनमण्डल इतनी बड़ी संचार-समस्या उपस्थित करता है कि इंजीनियरों ने हाल में इसे अलग छोड़ने के लिए दूर परासी रेडियो-प्रविधियाँ विकसित करने की कोशिश की है। वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि एक शक्तिशाली रेडियो-संकेत वायुमण्डल में भूमि से कोई १० मील की ऊँचाई पर 'बिखर' जाएगा और इन बिखरी तरंगों में से कुछ को बड़ी दूरियों पर पकड़ा जा सकता है। उत्तरी 'ड्यु' पंक्ति इस प्रणाली का उपयोग करती है। किन्तु 'बिखरे' रेडियो के लिए ऊँचा बल और विराट दिशा देने वाले एरियल (एनटेन्ना) चाहिएँ। यह केवल इन एरियलों के बीच संचार के लिए ही उपयोगी है। वायुयानों, जलयानों तथा अन्य चलती इकाइयों पर के रेडियो कर्मियों के सामने बदलते अयनमण्डल की समस्या अभी भी बरकरार है।

अंभूव के दौरान वर्जिनिया (अमरीका) के फोर्ट वेलवोइर में स्थित राष्ट्रीय मानक कार्यालय अंभूव के विश्व-सूचना-अभिकरण के रूप में कार्य कर रहा है। जब कोई ऐसा सौर-उत्पात होने को होता है, जिससे अयन-मण्डलीय तूफान उत्पन्न हो सकता है, तो यह अभिकरण दुनिया-भर को रेडियो-संकेत भेजता है और तब संसार के प्रत्येक भाग में ऊपरी वायु तथा पृथ्वी के चुम्बकत्व के माप लिए जाते हैं।

रेडियो ने अयनमण्डल की प्रकृति के बारे में हमें सबसे पहले प्रत्यक्ष सुराग दिये। रेडियो इंजीनियरों ने अयनमण्डल में चार परतों का पता चलाया, जिनमें से प्रत्येक अलग-अलग लम्बाई की रेडियो-तरंगों को 'वापस उछालती' है। ये परतें परदों की एक शृंखला-जैसा कार्य करती हैं, जिनकी जाली ऊँचाई के साथ-साथ महीन होती जाती हैं। यही कारण है कि रेडियो-तरंगें जितनी छोटी होती हैं, उतनी ही ऊँची उठती है, यहाँ तक कि सूक्ष्मतम तरंगें अयनमण्डल में से होकर गुजर जाती हैं और अंतरिक्ष में विलुप्त हो जाती हैं। 'परदे' की जाली दोपहर को महीन और रात को ज्यादा मोटी हो जाती है; विषुववृत्त पर यह महीन और ध्रुवों पर ज्यादा मोटी है, क्योंकि यह सूर्य की शक्ति के साथ-साथ बदलती रहती है।

इन परतों के नाम D, E, F तथा F_2 हैं। A, B तथा C संभवतः हमारे वायुमण्डल की सबसे नीची परतें हैं, जिनमें पृथ्वी की कुल वायु का ९९.९ प्रतिशत अंश आ जाता है। रेडियो-तरंगें शून्य की परिस्थितियों के निकट की असाधारणतः विरल वायु में प्रवेश कर रही थीं।

सूर्य इन परतों को अपने उस प्रकाश तथा ऊर्जा से, जिन्हें वह हर आकार की तरंगों में पृथ्वी पर भेजता है, विद्युन्मय करता है। चारों परतों (D, E, F, तथा F२) में से प्रत्येक एक भिन्न ऊर्जा तथा लम्बाई की तरंगें अवशोषित करती है। अयनमण्डल की परतों में अणुओं तथा परमाणुओं द्वारा ठीक कौनसी तरंगें अपशोषित की जाती हैं, यह अभी ज्ञात नहीं है और निश्चय ही, ये परतें समस्त ऊर्जा को नहीं सोख लेतीं। कुछ भाग—उदाहरण के लिए, दृश्य प्रकाश—उनसे गुजरकर भूमि पर आ जाता है। वर्णक्रम के एक दूसरे भाग में सूर्य की रेडियो-तरंगों में से कुछ प्रवेश कर जाती हैं। सूर्य पृथ्वी की ओर तीव्रगामी कण भी भेजता है; इनमें से कुछ प्रभामण्डल को उत्पन्न करते हैं, और दूसरे, जो कहीं अधिक तीव्रगामी और ऊर्जायुक्त हैं, वायुमण्डल में ब्रह्मांड किरणों के रूप में तेजी से प्रवेश कर जाते हैं।

वायुमण्डल के पेंदे में रहने के कारण हम इस ऊर्जा के, जो पृथ्वी की तरफ आती है, मगर हमसे ऊपर ही जज्ब कर ली जाती है, सभी विभिन्न प्रकारों या ठीक मात्रा का निश्चय नहीं कर सकते। अंभूव के वैज्ञानिक

जिन कुछ प्रश्नों के उत्तर चाहते हैं, वे ये हैं : अयनमण्डल में आने वाली एक्स किरणों का पूर्ण वर्णक्रम क्या है ? उन कणों की मात्रा क्या है ? उन कणों को किस प्रकार के परमाणु तथा वस्तु उत्तेजित करते हैं ? [illegible] पर चमकारी करने वाले कणों की प्रकृति क्या है ?

इन प्रश्नों के उत्तर जान लेने के बाद भू-भौतिकविज्ञानी ठीक-ठीक हिसाब लगाना शुरू कर सकते हैं कि अयनमण्डल में हर तरंग और कण की क्या प्रतिक्रिया होती है। अयनमण्डल के रहस्य के एक बड़े भाग का भी समाधान हो जाएगा और मेरू प्रकाश का भेद मालूम हो जाएगा। इन प्रश्नों के उत्तर हमें सूर्य के बारे में भी बताएँगे, क्योंकि हर तरंग तथा कण अपने को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों की कहानी को लाता है।

जब हम इन प्रश्नों पर आते हैं कि अयनमण्डल के ऊपर सुतथ्यतापूर्वक क्या होता है, तो रेडियो बहुत ही कम जानकारी देता है। ऊर्जा तरंगों तथा कणों की यथातथ्य प्रकृति जानने का केवल एक ही तरीका है—और वह यह कि परतों के ऊपर जाकर उन्हें उनके अवशोषित होने के पहले 'देखा' जाए और उन्हें संवेदी फिल्म या उपकरणों द्वारा मापा जाए। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीकी तथा रूसी वैज्ञानिकों ने परतों से होकर रॉकेटों को भेजना शुरू किया। अंभूव इन परिमापक रॉकेटों द्वारा सारी पृथ्वी पर पहले सहकारी अध्ययन को हाथ में ले रहा है।

जुलाई, १९५६ में नौसेना के वैज्ञानिकों का एक दल अमरीकी पोत कौलोनिअल पर सवार होकर कैलिफ़ोर्निया राज्य के सानदिएगो बन्दरगाह से कोई २०० मील दक्षिण प्रशान्त में अंभूव द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली प्रविधियों के साथ प्रयोग करने के लिए गया।

अयनमण्डल के रॉकेट-अनुसन्धान की अंभूव की विश्व-सूचना-प्रणाली की सफलता अंशतः इन प्रयोगों के परिणाम पर निर्भर थी। भूमि से छोड़े गए वाइकिंग, एयरोबी, नाइक, काजून तथा अंग्रेजों के स्काईलार्क जैसे बड़े राकेटों को अयनमण्डल तक चढ़ने में दो, तीन या चार मिनट तक लग जाते हैं। राकून, जो रॉकेट और गुब्बारे का संयोग है, एक मिनट से कुछ ही अधिक में अयनमण्डल में पहुँच जाता है। समय का महत्व बड़ा है, क्योंकि

सूर्य-पर्यवेक्षक सूर्य पर दमक के प्रकट होते ही तत्क्षण रिपोर्ट प्रसारित कर देते हैं। नाइक, काजून तथा तैरते राकून-सरीखे अंभूव के रॉकेट शिखा से आने वाली रोशनी तथा ऊर्जा की किस्म को 'देखने' के लिए तुरन्त अयन-मण्डल में छोड़े जाते हैं। शिखा के प्रस्फोट का चरम सैकंडों या मिनटों के भीतर ही खतम हो सकता है। ज्यादा देर से ऊपर पहुँचे रॉकेट को गौण विकरण और वे प्रतिक्रियाएँ, जो प्रस्फोट की परिणाम हैं—घण्टों चलती रह सकने वाली प्रतिक्रियाएँ ही मिल पाएँगी।

राकून सदा टोह में रहता है। रॉकेट और गुब्बारे को ८०,००० फुट—१५ मील से अधिक—की ऊँचाई पर पहुँचा दिया जाता है और वहाँ वे घण्टों तैरते रहते हैं। जिस क्षण भूमि से रेडियो-संकेत आता है, रॉकेट को पृथ्वी से कोई ६३ मील ऊँची अयनमण्डल की E परत में छोड़ दिया जाता है। इसमें डेढ़ से दो मिनट तक लगते हैं, जिसमें धरती से छोड़े रॉकेट की तुलना में एक से तीन मिनट तक की बचत होती है।

कौलोनिअल जहाज से दो हफ्ते तक हर सुबह एक राकून छोड़ा जाता था और धीमी गति से ऊपर उठकर वह ऊपरी वायु में इंतजार में लग जाता था। कभी-कभी तो प्रतीक्षा की अवधि आठ घण्टे तक की होती थी। सौर-प्रस्फोट जब होता है, तब उसके बारे में दो तरीकों से बताया जा सकता है। एक तरीका तो यह है कि एक रेडियो-तरंग को लगातार अयन-मण्डल से टकराकर उछलवाया जाए। तरंग की वापसी का अचानक रुक जाना इस बात का संकेत है कि सौर-प्रस्फोट हुआ है। दूसरा तरीका किसी ऐसी ज्योतिर्वैज्ञानिक वेधशाला से रेडियो-संदेश प्राप्त करना है, जहाँ एक विशेष दूरवीक्षण यंत्र (टेलिस्कोप) सूर्य पर केन्द्रित है। अंभूव के दौरान दोनों ही तरीके उपयोग में लाए जा रहे हैं।

ग्यारह दिनों में **कौलोनिअल** पर सवार वैज्ञानिकों का सम्पर्क केवल एक प्रस्फोट से हुआ, क्योंकि सूर्य केवल 'स्फुरणों' में ही सक्रिय होता है और क्योंकि तीन बातों का एक साथ होना जरूरी था—सूर्य का एक दुर्लभ प्रस्फोट, पर्यवेक्षण के स्थान पर साफ आसमान और संचार-साधनों में पूर्ण तालमेल।

अमरीका के कोलोरेडो राज्य में क्लाइमैक्स में पर्वत-शृंग पर स्थित वेधशाला से एक रेडियो-संकेत द्वारा इंगित किया गया कि एक प्रस्फ़ोट हुआ है। कौलोनिअल जहाज से रेडियो द्वारा तैरते रॉकेट को छोड़ दिया गया कि वह E क्षेत्र में समय रहते प्रवेश करके प्रस्फोट के कुछ अंश को ग्रहण कर ले। इतना तेज़ होने पर भी वह पहले प्रस्फोट के कुछ अंश को न पकड़ सका।

लेकिन रॉकेट ने जो रेडियो-रिपोर्ट भेजी, वह ऐतिहासिक थी। रॉकेट ने जिस प्रस्फोट को पकड़ा, वह वैज्ञानिकों की अपेक्षा का पारबैंगनी प्रस्फोट न होकर एक्स-किरणों का प्रस्फोट था। क्या अधिकांश रेडियो-अवरोधन एक्स-किरणों के कारण ही होते हैं? या रॉकेट पहले आस्फोट के कुछ सैकंड बाद पहुँचा था? यह उन समस्याओं में से एक है, जिनका उत्तर देने का यत्न अंभूव के रॉकेट तथा राकून कार्यक्रम करेंगे।

रॉकेट द्वारा पकड़ी गईं एक्स-किरणें इतनी तीव्र थीं कि आस्फोट में ताप कम-से-कम १,००,००,००० अंश सेण्टीग्रेड रहा होगा। यह सूर्य की सतह के सामान्य ताप से कई गुना अधिक है। इसलिए राकून ने हमें सूर्य पर की घटनाओं के बारे में कुछ महत्वपूर्ण जानकारी दी और अंभूव की संसार-व्यापी सूचना-प्रणाली की दक्षता प्रमाणित की।

सूर्य की ऊर्जा अयनमण्डल की इन परतों का क्योंकर निर्माण करती है? ये परतें रेडियो-तरंगों को कभी वापस क्यों 'उछाल' देती हैं और कभी उन्हें जज़्ब क्यों कर लेती हैं? सूर्य की ऊर्जा पृथ्वी के चुम्बकत्व का २ प्रतिशत इन परतों में कैसे पैदा कर देती है? पृथ्वी के हर भाग पर इन तरंगों में क्या विभिन्नता होती है? सूर्य में परिवर्तनों, मेरु प्रकाशों और पृथ्वी के चुम्बकीय तूफ़ानों के साथ ये कैसे परिवर्तित होती हैं? मौसम बदलने के साथ इन परतों में क्या परिवर्तन होते हैं।

ये वे और सवाल हैं, जिनके उत्तर भू-भौतिकीविद चाहते हैं। इन उत्तरों को पाने के लिए अंभूव अयनमण्डल को पृथ्वी पर फैले १५० केन्द्रों

से राकूनों, रॉकेटों तथा रेडियो-तरंगों द्वारा भेद रहा है।

भू-भौतिकीविद अन्तरिक्ष तथा सूर्य से आई रेडियो-तरंगों का भी उप-योग कर रहे हैं, क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य-निर्मित रेडियो-तरंगें परतों के बारे में कुछ बताती हैं, उसी प्रकार अन्तरिक्ष तरंगें अपनी कहानी सुनाती हैं। अंभूव के दौरान किये जाने वाले रोचक प्रयोगों में उन रेडियो-नक्षत्रों को सुनना भी है, जो मेरु प्रकाश के मनोहर प्रकाश से होकर चमकते हैं। गुजर-कर आती इन नक्षत्र-तरंगों की बदलती तीव्रता हमें अयनमण्डल में उस समय के परिवर्तनों के बारे में बताती है, जब भूमि पर रेडियो-संचार में बाधा पड़ी होती है। मेरु प्रकाश द्वारा उत्सर्जित रेडियो-तरंगों तक का अयनमण्डल के बारे में तथ्य जानने के लिए अध्ययन किया जा रहा है।

भू-भौतिकीविदों का ख़याल है कि अयनमण्डल को उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया का आरम्भ तब होता है, जब पारबैंगनी परतों में प्रवेश करता है और हर परत द्वारा जज़्ब किया जाता है। निम्नतम या D परत तक पहुँचते-पहुँचते यह पारबैंगनी लगभग पूर्णतः अवशोषित कर लिया जाता है, जिसके कारण घातक विकिरण का लगभग कोई भी अंश पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाता। जो थोड़ी मात्रा गुज़रकर आती है, वह वस्तुतः लाभकर है, क्योंकि वह जीवाणुओं को नष्ट करता है और विटामिन डी का स्रोत है। अयनमण्डल में यह पारबैंगनी ऊर्जा वायु के परमाणुओं तथा अणुओं को 'आयनित' अर्थात् विद्युन्मय करती है। यथार्थ प्रक्रिया की समझ अभी होनी शुरू ही हुई है। प्रकटतः एक्स-किरणें भी गैसों को विद्युन्मय करती हैं।

विद्युत के कारण अयनमण्डल की इन परतो में विद्युत-धाराएँ 'चादरों' की तरह प्रवाहित होने लगती हैं और वह पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के २ प्रतिशत को उत्पन्न करता है। पृथ्वी के ऊपर इन विद्युत-धाराओं के प्रखर होने के तीन क्षेत्र मालूम पड़ते हैं—एक-एक मेरू प्रकाशों के अंचलों के निकट है और एक विषुववृत्त के पास। अन्तिम विद्युत-चादर कोई १२५ मील चौड़ी एक सँकरी विद्युत जेट स्ट्रीम है, जो दक्षिण अमरीका तथा इन्डोनेशिया पर विशेष शक्तिशाली नज़र आती है।

जब सूर्य पर किसी ज्वाला का आस्फोट होता है, तो ऊपरी वायुमण्डल

का विद्युतन ऊँचा हो जाता है, जिससे पृथ्वी तथा अयनमण्डल के चुम्बकीय क्षेत्रों में तीव्र विभिन्नताएँ उत्पन्न होती हैं। अंभूव के अयनमण्डलीय-वैज्ञानिक इस सामान्य तथा सैद्धान्तिक चित्र के सभी विवरण जानने और उनके पैदा होने के कारण जानने का यत्न कर रहे हैं।

सूक्ष्म विद्युत चुम्बकीय तथा विद्युत रासायनिक प्रभावों के अध्ययन के लिए अयनमण्डल एक असाधारण प्रयोगशाला है। ऊर्जा के प्रति यह इतनी संवेदनशील है कि उच्चतर वायुमण्डल में गिरने वाली उल्काओं से भी यह आयनित हो जाती है। आयनीकरण के इन चकत्तों से रेडियो-तरंगें उछल जाती हैं और रेडियो उद्योग ने बड़े फ़ासलों पर सन्देश भेजने के लिए 'उल्का प्रतिध्वनियों' का—जैसा कि इन तरंगों को नाम दिया गया है—उपयोग करना शुरू कर दिया है। अन्तरिक्ष उल्काओं के विरल बादलों से भरा पड़ा है और पृथ्वी साल में कई बार उल्काओं के घने बादलों—उल्का-'वृष्टियों' से गुज़रती है।

राडार द्वारा आयनित चकत्तों का अनुगमन करके अंभूव के दौरान उल्काओं का विशेष अध्ययन किया जाएगा। यद्यपि ये चकत्ते अधिक-से-अधिक कुछ सैकण्ड तक ही रहते हैं, फिर भी वैज्ञानिक इनका उपयोग अयनमण्डल की विरल वायु में बहने वाली पवनों की गति मापने में कर सकते हैं। यह अल्पजीवी बादल की उड़ान का पीछा करने-जैसी बात है। इस क्षेत्र में पवनों की गति २०० मील प्रति घण्टा या इससे भी अधिक मापी गई है। पवन को हम जिन अर्थों में लेते हैं, ये पवनें वैसी न होकर लगभग शून्य में विरलतापूर्वक बहने वाली 'प्रेत पवनें' हैं। तिस पर भी ये वैज्ञानिकों को इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में चक्रण के बारे में जानकारी देती हैं।

अधिक छोटी अति सूक्ष्म उल्काकणिकाएँ एक विशेष समस्या हैं। विश्वास किया जाता है कि पृथ्वी से आगे के अन्तरिक्ष के प्रति घन इञ्च में लगभग १००० कण हैं। पृथ्वी पर दिन-भर के भीतर ७० टन तक सूक्ष्म उल्काकणिकाएँ और उल्काएँ गिर जाती हैं। क्या सूक्ष्म उल्काकणिकाओं का मौसम पर प्रभाव पड़ता है? कुछ भू-भौतिकीविदों का खयाल है कि ऐसा हो सकता है।

इस नये सीमांत में होने वाली हर बात अंभूव के वैज्ञानिकों की दिलचस्पी की है और वे उसकी जाँच कर रहे हैं। वैज्ञानिकों ने जब, मिसाल के तौर पर रात्रिकालीन आकाश की ओर ध्यानपूर्वक देखा, तो उन्हें एक आश्चर्यजनक चीज़ मिली। आकाश एक सतत उद्दीपन की अवस्था में था और वह एक वायु-चमक छोड़ रहा था, जो इतनी हल्की थी कि उसका आँख से तो नहीं, पर फोटो-विद्युत कोशिका और वर्णक्रमदर्शी-जैसे उपकरणों से पता लगाया जा सकता था। रंगों को पहचानकर यह बताया जा सकता था कि कौनसी गैसें उद्दीप्त हो रही हैं। अधिकांश ऑक्सीजन ही थी; यद्यपि अन्य गैसें भी इसमें आती थीं और एक असामान्य 'सोडियम मेघ' तक उसमें था।

रात्रि-चमक के कारण अभी ज्ञात नहीं हैं—यह अयनमण्डल में दिवाकालीन धूप से बची ऊर्जा के कारण हो सकती है। सूर्य की ऊर्जा द्वारा पृथक् होने के बाद परमाणु सामान्य अवस्था में आकर अधिक बड़े परमाणु भी बनाते हो सकते हैं। अगर ऐसा ही है, तो चमक आधी रात में चरम को क्यों पहुँचती है ? क्या यह मेरु प्रकाश उत्पन्न करने वाले जैसे कणों के समान है जो सूर्य से आते हैं।

रात्रि-चमक का संसार-व्यापी रूप देखने और यह निर्धारित करने के लिए कि कहीं यह मेरु प्रकाश से सम्बद्ध तो नहीं है, अंभूव के अयनमण्डलीय वैज्ञानिक उ० ध्रुव-प्रदेश से लेकर द० ध्रुव-प्रदेश तक प्रयोग कर रहे हैं। अयनमण्डल की इस सूक्ष्मतम घटना के पर्यवेक्षण के लिए यूरोप, अफ्रीका, उत्तर तथा दक्षिण अमरीका, आस्ट्रेलिया, प्रशांत सागरीय द्वीपों तथा ध्रुव प्रदेशों में केन्द्रों की एक श्रृंखला है।

अयनमण्डल नयी जानकारियों और तथ्यों से इस कदर भरा-पूरा है कि भू-भौतिकीविद कभी-कभी रोमांचित हो जाते हैं। अंभूव के दौरान अयनमण्डल की एक नयी रोमांचकारी घटना की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इसे 'सीटी' का अजीब नाम दिया गया है और यह प्रकृति की अपनी ही रेडियो-तरंगों में है, जो F परत के भी पार अविश्वसनीय ऊँचाइयों तक तेजी से चली जाती है।

'सीटी' को प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान, जब सैनिक चौकियों के बीच

संचार अधिकांशतः तार द्वारा ही होता था, अकस्मात देखा गया। जर्मन पंक्ति के पीछे एक वैज्ञानिक मित्र राष्ट्रों के एक टेलीफोन की बातचीत को उस द्वारा भूमि में क्षरित विद्युत्-धारा को पकड़कर ग्रहण करने की कोशिश कर रहा था। बातचीत के बीच उसे अजीब तरह का शोर सुनाई दिया, जो तूफानों द्वारा उत्पन्न सामान्य 'स्टैटिक' से भिन्न था।

युद्ध के बाद जर्मन वैज्ञानिक बेर्कहॉसेन तथा एक अंग्रेज़ वैज्ञानिक एकर्स्ली ने इस शोर का स्रोत खोज निकाला। स्रोत था तड़ित (बिजली गिरना)। तड़ित की एक दमक से बीस-बीस मील लम्बी विद्युत् चुम्बकीय तरंगें अयनमण्डल में चढ़ जाती हैं और पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की रेखाओं का अनुसरण करती इस तरह उससे गुजर जाती हैं, मानो वह कोई राज-मार्ग हो। चुम्बकीय विषुववृत्त पर से ये तरंगें सम्भवतः ७००० मील की विस्मयजनक ऊँचाई पर गुज़रती हैं, फिर वक्र होकर विपरीत गोलार्ध में भूमि पर आ जाती हैं और फिर वापस उछल जाती हैं। 'सीटियाँ' विपरीत गोलार्ध से उछाली तड़ित की प्रतिध्वनियाँ हैं!

तड़ित-तरंग एक चटाके या तेज़ धड़ाके की आवाज़ की तरह शुरू होती है, लेकिन लम्बे चुम्बकीय पथ पर आगे-पीछे चलते-चलते यह फैलकर एक लम्बी सीटी में परिणत हो जाती है। १९५५ में एल्युशियन द्वीपों में एक अयनमण्डलीय वैज्ञानिक ने तथा न्यूज़ीलैंड में एक अयनमण्डलीय वैज्ञा-निक ने वस्तुतः एक ही 'सीटी' को पकड़ा, जो उनके बीच उछलती आ-जा रही थी—हर प्रतिध्वनि अपनी पूर्ववर्ती प्रतिध्वनि से अधिक लम्बी और गहरी थी।

'सीटी' ने, जैसा कि पहले साधारण रेडियो ने किया था, पृथ्वी के ऊपर अनुसन्धान का एक नया क्षेत्र खोल दिया है। अगर तड़ित-तरंगें पृथ्वी के विशाल क्षेत्रों को फाँद सकती हैं, तो वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इस तरंग का वाहन करने के लिए ७००० मील की ऊँचाई पर कोई गैस अवश्य होनी चाहिए। यह विद्युन्मय गैस सूर्य से आती है या वह पृथ्वी के वायु-मण्डल का ही अंग है? हो सकता है कि असल में पृथ्वी ही आयनित हाइ-ड्रोजन के विरल मेघ में होकर घूमती गुज़र रही हो। शायद, जैसा कि

अंभूव के अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष प्रोफेसर सिड्नी चैपमैन ने सुझाव दिया है, सूर्य का कोरोना, अर्थात् वायुमण्डल पृथ्वी की कक्षा से होकर जाता है। डॉक्टर वैनेट तथा अन्य वैज्ञानिकोंने भी यही राय दी थी। क्या 'सीटी' उनके सिद्धांत का प्रमाण है? यह मालूम नहीं, क्योंकि F_2 परत के ऊपर के क्षेत्र के अभी तक कई रहस्य बाकी हैं।

१९५७ में स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के अयनमण्डलीय वैज्ञानिकों ने घोषित किया कि उन्होंने इस 'सीटी' के पथ पर मनुष्य-निर्मित रेडियो-तरंगें भेजने में सफलता प्राप्त कर ली है। अमरीकी नौसेना के अन्नापोलिस (मेरीलेंड) में स्थित प्रेषित्र से भेजे संकेत दक्षिण अमरीका के दक्षिणी छोर पर हॉर्न अन्तरीप में स्थित एक प्रकाश-स्तम्भ द्वारा ग्रहण किये गए। हर संकेत का पीछा एक-एक प्रतिध्वनि द्वारा किया गया। इससे प्रकट हो गया कि 'सीटी' की भाँति यह भी पृथ्वी के ऊपर बहुत ऊँचे रास्ते पर चलकर आया था। स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों का खयाल है कि उनके पास इस बात का प्रमाण है कि आयनित गैस मोटे तौर पर २०,००० मील की ऊँचाई तक फैली हुई है।

अंभूव का एक विशेष कार्यक्रम इन 'सीटियों' तथा अन्य अयनमण्डलीय शोरों का अध्ययन करेगा। इनमें एक वह शोर भी सम्मिलित है जिसे 'उषा सहगान' कहते हैं। द० ध्रुव से लेकर उत्तरी मेरू प्रकाश अंचल तक फैले अंभूव के श्रवण-केन्द्र इन रहस्यमय ध्वनियों का संसार-व्यापी रूप जानने की कोशिश करेंगे।

पृथ्वी की ओर फेंका गया ऊर्जा का सबसे शक्तिशाली स्वरूप ब्रह्माण्ड किरणें हैं। अन्तरिक्ष किरणों की खोज १९०० और १९०३ के बीच अकस्मात लगभग उसी समय हुई थी कि जब एलबर्ट आइन्स्टाइन पदार्थ में सन्निहित अपार ऊर्जाओं के बारे में अपना सिद्धान्त बना रहे थे।

एक वायुरुद्ध पात्र बनाने का यत्न करते हुए वैज्ञानिकों ने देखा कि धातु की दीवारें चाहे कितनी ही मोटी क्यों न बनाई जाएँ, एक रहस्यमय विकि-

रण उन्हें भेदकर भीतर की गैस को आयनित कर देता है। दस वर्ष बा एक गुब्बारे ने, जो ४ मील की ऊँचाई तक चढ़ गया था, इस रहस्यम विकिरण को अधिक बड़ी मात्राओं में मापा। यह विकिरण पृथ्वी पर सभी दिशाओं से दिन-रात बमबारी कर रहा था।

१९३७ में एक वैज्ञानिक ने फोटो फ़िल्म को सावधानीपूर्वक लपेटक इन्स्बुर्क (जर्मनी) में एक पहाड़ की चोटी पर रख दिया और चार महीने तक वहीं रहने दिया। जब फ़िल्म को धोकर उसका सूक्ष्मदर्शी द्वारा निरीक्षण किया गया, तो पाया कि उसे अन्तरिक्ष से आयी अतीव शक्तिशाली 'गोलियों ने बुरी तरह बींध दिया था, जिन्होंने फ़िल्म में के परमाणुओं की धज्जियां उड़ाकर उन्हें 'सितारों' में विस्फोटित करा दिया था। ये गोलियाँ पारमाण विक कण—अधिकांशतः हाइड्रोजन परमाणु की विद्युत् आवेशित (+) संहति, प्रोटीन—थे। कहीं-कहीं लोहा तथा निकिल-सहित अन्य सामान्य तत्वों के ब्रह्मांड-किरण-कण भी थे। वे आये कहाँ से, यह एक रहस्य था।

इन ब्रह्मांड-किरणों—यथार्थतः कणों—ने वैज्ञानिकों की परमाणु का उसके अंगों में भंजन करके, उसके कई भेदों की खोज में सहायता की है। ब्रह्मांड-किरणों की प्रत्याकृति स्वरूप वैज्ञानिकों ने परमाणु-भंजक बनाये हैं। ये विराट् चुम्बकीय त्वरक हैं, जो कणों को अपार वेग की चाल प्रदान कर देते हैं। विज्ञान अभी ब्रह्मांड-किरण की चाल या ऊर्जा की बराबरी नहीं कर पाया है, जो लगभग प्रकाश की चाल से और कई अरब इलेक्ट्रान वोल्ट की ऊर्जा से चलती है। ब्रह्मांड-किरणों का अध्ययन और उनके पदार्थ का भंजन करके ऊर्जा को—आइन्सटाइन द्वारा पूर्व-घोषित मात्राओं में—मुक्त करने की क्षमता नाभिकीय खंडन के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण था।

ब्रह्मांड-किरण भी भू-भौतिकीविदों तथा—ज्योतिर्भौतिकीविदों का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गई है। यह उनकी सूर्य तथा अन्तरिक्ष के रहस्यों और महासागरों तथा वायुमंडल की प्रक्रियाओं के उत्तर पाने में सहायता कर रही है।

ब्रह्मांड-किरण-वृष्टि पृथ्वी के हर विन्दु पर होती है और उसमें सैकड़ों फुट तक प्रवेश कर जाती है। आस्ट्रेलिया में निर्माण इंजीनियर सुरंगें खोदते

समय अपने ऊपर की भूमि के घनत्व तथा मोटाई का निर्धारण करने के लिए ब्रह्मांड-किरण-वृष्टि का उपयोग कर रहे हैं। यह वृष्टि स्वयं ब्रह्मांड-किरणें न होकर उच्चतर वायुमण्डल में टक्करों की द्वितीयक परिणाम होती है। जब कोई **प्राथमिक** ब्रह्मांड-किरण वायुमण्डल को ३५ और १५ मील के बीच की ऊँचाई तक भेद देती है, तो यह वायु के किसी एक परमाणु में, जिससे वह टकराती है, एक नन्हा-सा, पर अतीव शक्तिशाली नाभिकीय विस्फोट उत्पन्न कर देती है। इस विस्फोट के अवशेष पृथ्वी की ओर खिंचते हैं, जिनसे कणों की 'वृष्टि' उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी इस वृष्टि की परिधि एक मील तक हो सकती है।

परमाणुओं के ये टूटे खण्ड इतने अस्थायी होते हैं कि उनमें से कुछ एक सैकण्ड के १/१०,००,००० भाग से भी कम में अपनी प्रकृति बदल देते हैं। वायुमण्डल में होकर उतरते-उतरते ये सूक्ष्म, अदृश्य प्रतिक्रियाओं की एक लम्बी शृंखला उत्पन्न कर देते हैं। अन्तिम कण इलेक्ट्रान (विद्युत् आवेश-युक्त कण) या न्यूट्रान (आवेशरहित कण) हो सकते हैं।

ब्रह्मांड-किरण-वैज्ञानिक इन टक्करों के परिणाम पृथ्वी पर कहीं भी माप सकते हैं। वैज्ञानिक जब किरण-वृष्टियों के संसार-व्यापी रूप को देखते हैं और लम्बी अवधि तक उनकी माप करते हैं, तो वे देखते हैं कि वे किसी-न-किसी प्रकार सूर्य से सम्बन्धित हैं।

कुछ सौर ज्वालाएँ ब्रह्मांड-किरणों में वृद्धि करती हैं, कुछ परोक्षतः उनमें कमी लाती हैं। कमी आम तौर पर चुम्बकीय तूफ़ानों के बाद आती है, इसलिए वैज्ञानिकों का ख़याल है कि हो सकता है कि पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र उन्हें वापस मोड़ रहा हो। लेकिन इस मामले में भी वैज्ञानिक अनिश्चित हैं, क्योंकि ऐसे चुम्बकीय तूफान भी आते हैं, जिनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

ब्रह्मांड-किरणें सूर्य के आचरण से कई प्रकार सम्बन्धित लगती हैं। सूर्य के अपने अक्ष पर २७ दिन में एक बार परिभ्रमण करने के साथ-साथ उनमें कुछ वृद्धि या कमी आती है; और ग्यारह वर्षीय सौर-कलंक-चक्र के साथ उनमें कुछ उतार-चढ़ाव आता है। ब्रह्मांड-किरणों के अध्ययन का सर्वोत्तम काल किसी सौर-कलंक-चक्र का चरम है, जैसा कि अंभूव के समय है।

अन्तरिक्ष-किरणें तथा सूर्य द्वारा उत्सर्जित मेरू प्रकाश को उत्पन्न करने वाले कणों के कई गुण-धर्म सामान्य हैं। दोनों का अधिकांश प्रोटानं का होता है। अन्तर उनकी ऊर्जाओं में है। मेरू प्रकाश को उत्पन्न कर वाले कण सूर्य से एक या दो दिन में पहुँचते हैं; ब्रह्मांड-किरणें लगभग १ मिनट में पहुँच जाती हैं। ब्रह्मांड-किरणों में धीमी चाल से चलने वाले कणं से कई हजार गुना अधिक ऊर्जा होती है। सूर्य—या अन्तरिक्ष—किसी प्रकार एक विराट् परमाणु-भंजक यन्त्र (साइक्लोट्रान) का काम करता है और ब्रह्मांण-किरणों को चुम्बकीय शक्ति से त्वरण प्रदान करता है।

तीव्रतम ब्रह्मांड-किरणों में से कुछ वायुमण्डल से गुजरती सीधी पृथ्वी पर आ जाती हैं। जिन किरणों की चाल कुछ कम है, उन्हें पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र भू-चुम्बकीय ध्रुवों की ओर कुछ मोड़ देता है।

ब्रह्मांड-किरणों का कई कारणों से महत्त्व है—प्रथमतः यदि बड़ी मात्राओं में उन्हें जज्ब किया जाए, तो वे संघातक हैं, इसलिए वे अन्तरिक्ष-यात्रा में एक समस्या हैं। १,००,००० फुट की ऊँचाई पर प्रत्यक्ष ब्रह्मांड-किरण-तीव्रता भूमि की अपेक्षा २५०० गुना अधिक है। अन्तरिक्ष में इन किरणों की तीव्रता हम नहीं जानते। अन्तरिक्ष-यान के यात्री के लिए फुहारों के रूप में आती द्वितीयकों की अन्तरिक्ष किरण-वृष्टि अकेली प्राथमिक की अपेक्षा अधिक खतरनाक होगी। भूतल पर प्रयोगशालाओं के भीतर प्रयोगों में ऐसी वृष्टियों ने पशुओं में वंध्यता, अंग-परिवर्तन तथा कैन्सर के प्रति ग्रहणशीलता उत्पन्न की है। अन्तरिक्ष-यान का खोल धातु में प्राथमिकों द्वारा बमबारी से उत्पन्न वृष्टियों के विरुद्ध अधिक सुरक्षा प्रदान न कर सकेगा।

दूसरे, ब्रह्मांण-किरणें इसलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि वे आम तौर पर निचले वायुमण्डल में—६ से १० मील तक की ऊँचाइयों पर—हमारी वायु के ७८ प्रतिशत भाग को बनाने वाली गैस नाइट्रोजन के परमाणु से टकराती हैं। नाइट्रोजन परमाणु खंडित होकर रेडियम धर्मी कार्बन (कार्बन-१४) का एक कण और रेडियमधर्मी हाइड्रोजन (ट्रिटियम) का एक कण बन जाता है। यही एक तत्त्व का दूसरे तत्त्व में वह रूपान्तरण है, जिसने हलकी धातुओं

को स्वर्ण में परिवर्तित करने की कोशिश करने वाले हमारे प्राचीन कीमिया-गरों को परेशान कर रखा था।

कार्बन-१४ तथा ट्रिटियम दोनों अंभूव के वायु तथा समुद्र के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण भाग ले रहे हैं। कार्बन-१४ एक निश्चित गति से खंडित होता है, जिससे इसका आधा ६००० वर्ष से कम में लुप्त हो जाता है, फिर भी अवशेषों को २५,००० वर्ष से अधिक तक मापा जा सकता है। रेडियमधर्मी हाइड्रोजन या ट्रिटियम का अर्ध-जीवन १२½ वर्ष है और लगभग १८ वर्ष में यह पूर्णतः लुप्त होकर हिलियम गैस में परिवर्तित हो जाती है।

इन रेडियमधर्मी ब्रह्मांड-किरण उत्पादक पदार्थों का, जो सधी हुई घड़ियों की तरह साल-पर-साल टिकटिकाते काटते चले जाते हैं, उपयोग पदार्थ की आयु मापने में किया जाता है। कार्बन-१४ कार्बन डाइआक्साइड में प्रवेश कर जाता है, जो वनस्पति तथा जन्तु-जीवन की प्रक्रियाओं में महत्त्वपूर्ण है। रेडियमधर्मी हाइड्रोजन पानी में प्रवेश करके पृथ्वी पर वर्षा या बरफ के रूप में गिरती है। कार्बन-१४ जिस किसी भी वस्तु में पाई जाती है, उसकी पिछले २५,००० वर्ष तक की आयु बता देगी और रेडियमधर्मी हाइड्रोजन पदार्थ की गत बारह वर्षों की आयु बता देगी।

अंभूव के दौरान गहन महासागरीय जल की गतियों का रेखांकन कार्बन-१४ द्वारा किया जा रहा है, सतही तथा सतह के पास के पानी को ट्रिटियम द्वारा रेखांकित किया जा रहा है। कार्बन-१४ सागर-वैज्ञानिकों की सागर-तल की क्रोड़ों की आयु निर्धारित करने में और हिमनद-वैज्ञानिकों की हिम की परतों की आयु निश्चित करने में भी सहायता करता है।

सितम्बर, १९५६ में अंभूव के वैज्ञानिकों की एक विशेष सभा उत्रेख्त में नाभिकीय विकिरण-अध्ययन का कार्यक्रम निश्चित करने के लिए समा-योजित की गई। यह प्रस्ताव किया गया कि अंभूव को अन्तरिक्ष-किरणों द्वारा उत्पन्न प्राकृतिक रेडियमधर्मिता तथा परमाणु अस्त्रों के परीक्षण से उत्पन्न कृत्रिम रेडियमधर्मिता—दोनों का उपयोग करना चाहिए।

परमाणु बमों के १९४५ में पहली बार गिराये जाने के बाद वायुमंडल

हैं और ट्रिटियम जैसे कुछ ब्रह्माण्ड-किरणों से उत्पन्न होते हैं।

अंभूव का रेडियमधर्मिता के अध्ययन का कार्यक्रम १९५७-५८ के दौरान पृथ्वी के वायुमण्डल की रेडियमधर्मिता निर्धारित करने का और पृथ्वी के हर क्षेत्र में रेडियमधर्मी तत्वों के गिरने की रफ्तार जानने का यत्न करेगा। इसकी भविष्य में वायु में व्याप्त रेडियमधर्मिता की मात्रा से तुलना की जाएगी और इसकी भूतकालीन रेडियमधर्मिता से तुलना करने का भी यत्न किया जाएगा। यह जानने के लिए कि १९४५ के पहले कितनी रेडियमधर्मिता थी, हिमनद-वैज्ञानिक इस तिथि के पूर्व पृथ्वी के पानी में उपस्थित ट्रिटियम की मात्रा मापने के लिए बरफ की परतों का अध्ययन कर रहे हैं।

इस कार्यक्रम के अंगस्वरूप कई राष्ट्रों के वैज्ञानिक वायु तथा सागर दोनों ही में प्राकृतिक तथा कृत्रिम रेडियमधर्मी तत्त्वों की गतिविधियों को जानने का यत्न कर रहे हैं। वे समतापमण्डल तथा ट्रोपोमण्डल के बीच वायु के पारस्परिक अन्तरण को और पृथ्वी के इर्द-गिर्द वायु के सामान्य चक्रण को रेखांकित करने का यत्न कर रहे हैं। वे महासागरों द्वारा अवशोषित कार्बन-१४ की मात्रा तथा समुद्रों में प्रविष्ट होने वाली ट्रिटियम की मात्रा जानने की कोशिश कर रहे हैं। वे ट्रिटियम का जल-चक्र के सभी स्तरों के दौरान—वायुमण्डल में उसके उत्पन्न होने के कारण से लगाकर उसके बादलों में प्रवेश करने, वर्षा के रूप में गिरने, भूमि द्वारा अवशोषित होने और अन्ततः पशुओं तथा पौधों द्वारा उपयोग में लाये जाने या सागर में समाप्त होने तक—पता लगाने का प्रयास करेंगे। जल-चक्र के रूप की खोज महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि पानी तेज़ी के साथ आधुनिक मनुष्य का सबसे मूल्यवान साधन बनता जा रहा है।

यह कार्यक्रम अमरीका, कनाडा, अलास्का, इंगलैण्ड, इटली, सोवियत संघ, प्रशान्त महासागरीय द्वीपों, भारत, न्यूगिनी, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड तथा अफ्रीका में चल रहा है। इन सभी क्षेत्रों में वायु तथा जल-धाराओं के नमूने 'पुस्तकालयों' में एकत्र किए जा रहे हैं, ताकि उनकी भविष्य में

ट्रिटियम के अलावा वैज्ञानिक विभिन्न अर्ध-जीवनों वाले अनेक समस्थानिकों जैसे स्ट्रांशियम—९०, एण्टीमनी—१२५, सीरियम—१४४, प्रोमेथियम—१४७, तथा सीजियम—१३७ का पता लगा रहे हैं।

ब्रह्माण्ड-किरण-अध्ययन का एक असामान्य परिणाम अंशतः अंभूव की तैयारियों के फलस्वरूप निकला। १९५४ और १९५६ के बीच जे०ए० सिंपसन के निर्देशन में ब्रह्माण्ड-किरण-वैज्ञानिक अमरीकी नौसैनिक पोतों पर सवार होकर दक्षिण ध्रुव-प्रदेश में अंभूव-केन्द्र स्थापित करने के लिए गये। जहाज़ों के उत्तर-दक्षिण जाने के दौरान वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड-किरण वृष्टियों को मापा। क्योंकि अधिकांश ब्रह्माण्ड-किरणें बड़ी ऊँचाइयों पर चुम्बकीय विषुववृत्त द्वारा मोड़ दी जाती हैं, इसलिए उस बिन्दु का पता लगाकर कि जहाँ जहाज का न्यूनतम ब्रह्माण्ड-किरण-वृष्टियों से सामना हुआ, सिंपसन यह निर्धारित कर सके कि यह ऊँचा विषुववृत्त कहाँ है।

उन्होंने देखा कि बड़ी ऊँचाइयों पर पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र पश्चिम की ओर कुछ मुड़ जाता है, मानो पृथ्वी किसी विद्युन्मय गैस में होकर घूमती गुजर रही हो। यह गैस पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र को ४० अंश तक पीछे खींच लेती है। यह इसका एक और प्रमाण था कि पृथ्वी सूर्य के वायुमण्डल में हो सकती है।

अंभूव के वैज्ञानिक, जो भूमि पर ब्रह्माण्ड-किरण-वृष्टि तथा वायु और अयनमंडल में प्राथमिक कणों को माप रहे हैं, कई प्रश्नों का उत्तर देने का यत्न कर रहे हैं। सूर्य अपनी ब्रह्माण्ड-किरणों को ऐसी गति कैसे देता है कि वे सभी दिशाओं से और सभी समयों पर आती हैं? अन्तरिक्ष में हमारे सौर-परिवार का चुम्बकीय चित्र क्या है? अयनमण्डल में ब्रह्माड किरणों के क्या प्रभाव हैं? ब्रह्माण्ड-किरण-वैज्ञानिक विभिन्न ब्रह्माण्ड-किरण-कणों की ऊर्जाओं का, और सूर्य की सक्रियता के साथ उनमें आने वाले अन्तरों का पता चलाने का भी यत्न कर रहे हैं।

उनके अध्ययन हमें सौर-परिवार के आगे की आकाश-गंगा का, उसके चुम्बकीय क्षेत्र का, और नक्षत्रों में होने वाली प्रक्रियाओं का भी चित्र दे रहे हैं, क्योंकि नक्षत्र पृथ्वी की ओर अपनी किरणें भेजते हैं

गतिशील अयनमण्डल के ऊपर सूर्य तथा अन्तरिक्ष हैं। वहाँ की परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए भू-भौतिकीविद ज्योतिर्भौतिकीविद बन जाता है। इसलिए हमें अब सूर्य की ओर, और फिर उस साधन की ओर ध्यान देना चाहिए, जो अयनमण्डल तथा सौर-परिवार के हमारे अध्ययन में एक नयी मंज़िल खोल रहा है। यह नया साधन या उपकरण है अंभूव का कृत्रिम भू-उपग्रह।

: ९

सूर्य

अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष को 'सूर्य का वर्ष' कहना तर्कसंगत ही होगा, क्योंकि १९५७-५८ में अंभूव का समायोजन इसीलिए किया गया था कि पृथ्वी पर सूर्य के प्रभावों का सौर सक्रियता में एक चरम की स्थिति में अध्ययन किया जा सके। अंभूव के अठारहों महीने में सूर्य लगातार दुनिया में किसी-न-किसी जगह से पर्यवेक्षण के अन्तर्गत है। इसमें संसार के हर भाग में स्थित ९९ प्रयोगशालाएँ लगी हुई हैं। जब एक प्रयोगशाला के लिए सूर्य क्षितिज के पीछे अदृश्य हो जाता है, वह दूसरी से दिखाई देने भी लगता है।

कलंक सूर्य की सबसे नाटकीय तथा प्रत्यक्ष घटना है, फिर भी उनकी समझ अभी ही पैदा होना शुरू हुई है। विज्ञान के इतिहास में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

जून, १६०९ में वेनिस में एक अफ़वाह उड़ी कि एक डच चश्मासाज एक ऐसा औज़ार बनाने में कामयाब हो गया है, जो दूर की चीज़ों को बड़ा बना देता है। गैलीलियो कुछ दोस्तों के साथ इसकी सम्भव-असम्भवता पर बहस करके अपने घर चला गया, पर वह सो न सका। रात उसने यह हिसाब लगाने में ही काट दी कि ऐसा उपकरण काम कैसे करेगा।

अगले दिन से उसने एक ऐसा दूरवीक्षण यन्त्र बनाना शुरू किया, जो दूर की वस्तुओं को तीन गुना बड़ा कर देता था। फिर उसने ऐसा यन्त्र बनाया जो किसी वस्तु को ३२ गुना बड़ा कर देता था। जल्दी ही वह ऐसे

यन्त्र बनाने लगा, जो यूरोप-भर में उपयोग में आने लगे। यन्त्र ने नक्षत्रों, ग्रहों तथा चन्द्रमा के बारे में ऐसे तथ्यों का उद्घाटन किया, जो पहले अज्ञात थे। सूर्य के बारे में दूरवीक्षण ने जिस बात का उद्घाटन किया वह इतनी चौंकाने वाली थी कि उसने घटनाओं के एक ऐसे सिलसिले की शुरुआत कर दी कि जिसका अन्त गैलीलियो की क़ैद में हुआ और वह बात खुद विज्ञान के इतिहास में सबसे कटु विवादों में एक हो गई।

१६१०-११ में सूर्य सौर-कलंक-चक्र के एक चरम में प्रवेश कर रहा था। नये दूरवीक्षण का उपयोग करते तीन व्यक्तियों ने सूर्य पर कलंक देखे। उनमें से एक पादरी था। उसने कहा कि नक्षत्र सूर्य के आगे से गुजर रहे हैं। तथापि गैलीलियो ने अनुभव कर लिया कि ये धब्बे या कलंक सूर्य पर थे और यही बात कहकर उसने यूरोप को नाराज़ कर दिया। आखिर सूर्य पूर्णतम स्वर्गिक-पदार्थ था और उस पर 'कलंकों' की कालिख नहीं लगाई जा सकती थी।

गैलीलियो ने अपनी देखी बात के बारे में विस्तारपूर्वक लिखा। उसने कहा कि जहाँ कुछ लोग इन कलंकों को "एक कहानी या दूरवीक्षण का भ्रम मानते हैं,··· कुछ और लोग उन्हें महज़ हवाई समझते हैं··· मेरा यह पक्का विचार है कि ये विभिन्न वस्तुओं का समूह हैं··· एक कलंक में दस या अधिक अनियमित आकारों के पिंड देखे जा सकते हैं, जो हिमकणों या ऊन के गुच्छों या उड़ते पतंगों-जैसे नज़र आते हैं··· यद्यपि आरम्भ में उनकी गति अस्थिर और अनियमित दीखती है, फिर भी···एक निश्चित समय के बाद उन्हीं कलंकों का वापस आना निश्चित है···इन कलंकों में से कई सौर-तल के बीच में उत्पन्न होते नज़र आते हैं और इसी प्रकार कई सूर्य की कोर से बहुत दूर विलयित तथा विलुप्त हो जाते हैं··· (सूर्य के) मध्य भाग के आसपास वे अपनी पूरी भव्यता के साथ दिखाई देते हैं, जैसे कि वे वस्तुतः हैं भी; लेकिन कोर के पास सतह की वक्रता के कारण वे छोटे होते नज़र आते हैं···"

गैलीलियो ने कहा कि ये कलंक "इतने बड़े हैं कि उनके बराबर आकार की कोई चीज़ पृथ्वी पर कभी नहीं हुई।"

सौर-कलंक इतने अधिक थे कि गैलीलियो उनकी गतियों को देख और उनका अध्ययन कर सकता था और उसने इस प्रकार यह अनुभव किया कि सूर्य एक पूरा परिक्रमण लगभग हर २७ दिन में करता है। वह खुशकिस्मत था। कुछ ही बाद, मिसाल के लिए १६७६ से १६८४ तक, सूर्य इतना शान्त रहा कि एक भी कलंक न देखा गया। १६७६ से १७२४ तक लगभग २५ कलंक देखे बताये गए, जो वह सब बताने के लिए नाकाफी थे, जिसे गैलीलियो ने सैकड़ों कलंक देखकर जाना था।

१६१०-११ की भाँति सूर्य अब बड़ी सक्रियता की एक और अवधि में नज़र आता है। अंभूब के पहले के अन्तिम चक्र—१९४७—के समय अभी तक अभिलिखित कलंकों में सर्वाधिक देखे गए थे। सौर-कलंकों के ३४२० समूह थे। लगता है कि १९५७-५८ के चक्र में देखे जाने वाले कलंकों की संख्या १९४७ का रिकार्ड तोड़ देगी।

अब तक देखे गए सौर-कलंकों में सबसे बड़े की फोटो १९४७ के चक्र में ली गई थी। अप्रैल, १९४७ के इस कलंक का क्षेत्रफल ६,२०,००,००,००० वर्गमील था और इसमें १०० पृथ्वियाँ समा सकती थीं। १९४७ में दीखने वाले कलंक इतने बड़े थे कि उन्हें सूर्य की तेज़ी को कम करने के लिए रंगीन काँच या फिल्म से देखा जा सकता था।

सौर-कलंक कोरी आँख से पहले भी देखे गए थे। चीन देशवासियों ने २८ ई० पू० में कुछ सौर-कलंक देखे थे और उन्हें सूर्य पर 'उड़ते पक्षी' बतलाया था। पुराने ज़माने में जब-जब सौर-कलंक देखे जाते, उन्हें अपशकुन माना जाता था।

गैलीलियो ने इस बात पर ज़ोर दिया कि सूर्य-कलंकों तथा ग्रहों के बारे में उन्हें यथार्थ मानकर ही बात करनी चाहिए। फलस्वरूप उसकी पुस्तक 'सौर-कलंकों पर पत्र' के प्रकाशन के तीन सप्ताह बाद ही उस पर चर्च का गुस्सा फूटा, उसी घड़ी से उसको सताना शुरू कर दिया गया और कई साल बाद उस पर मुकदमा चलाकर उसे 'झूठे विचारों' का दोषी ठहरा दिया गया। उसे अपने सिद्धान्त प्रकाशित करने से रोका गया और घर में नज़रबन्द कर दिया गया। आखिर वह अकेला ही अन्धा होकर मर गया।

यह खयाल किया जाता है कि सौर-कलंक सूर्य की सतह के 'तूफ़ान' हैं। वे काले दागों-से महज इसलिए नज़र आते हैं कि वे सूर्य के शेष भाग से कुछ ठंडे हैं, फिर भी वे बेतरह गरम हैं।

सूर्य की तूफानी प्रकृति तापदीप्त गैसों के उन विराट आस्फोटों—अग्नि-शिखाओं—से भी प्रकट होती है, जो कभी-कभी सूर्य से अपार दूरियों तक चले जाते हैं। सूर्य की कोर पर उठते समय उन्हें सबसे अधिक स्पष्टता के साथ देखा जा सकता है। चित्र २४ में दर्शित अग्निशिखा सूर्य के चित्रित विस्फोटों में विशालतम है। लगभग चार लाख मील प्रति घण्टे की चाल से यह ३० मिनट से कुछ ही अधिक देर में सूर्य की सतह से ढाई लाख मील ऊपर उठ गई थी।

सूर्य की सतह से कई प्रकार के आस्फोट होते हैं और उनका नामकरण और वर्गीकरण किया जा चुका है। आधुनिक सौर-ज्योतिर्विद हर दिन एक चार्ट पर हर आस्फोट का समय, आकार तथा किस्म अंकित करते हैं। यह अंभूव के ज्योतिर्विदों के आवश्यक कार्यभारों में है, क्योंकि भू-भौतिकीविद यह जानने का यत्न कर रहे हैं कि हर प्रकार के सौर-आस्फोट का पृथ्वी पर क्या प्रभाव पड़ता है। सूर्य की और कई बातों की भाँति इन आस्फोटों का कारण भी अभी तक ज्ञात नहीं है। कुछ आस्फोट सौर कलंकों से सम्बन्धित लगते हैं, लेकिन कई का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

गैलीलियो इन नाटकीय आस्फोटों तथा शिखाओं को नहीं देख पाया, क्योंकि इन्हें ऐसी युक्तियों द्वारा ही देखा जा सकता है, जो सूर्य के शेष प्रखर प्रकाश को रुद्ध कर देती हैं। वह केवल स्याह कलंकों को और उनके साथ के कुछ तापदीप्त चमकीले चकत्तों को ही देख सका था। उसने सोचा कि ये कलंक एक तरह के मेघ हैं, क्योंकि उनकी गति तथा आगमन-प्रत्यागमन से ऐसा ही लगता था।

गैलीलियो के २०० वर्ष बाद तक ये कलंक उन ज्योतिर्विदों की खास दिलचस्पी की चीज रहे, जो यह जानना चाहते थे कि सूर्य पर क्या हो रहा है। इसके बाद, कोई सौ वर्ष पहले, एक रूप उद्घाटित होने लगा। यह एक उत्तेजक, असामान्य और चकराने वाला रूप था। १८४३ में हाइनरीख

श्वाबे नामक जर्मन वैज्ञानिक ने अनुभव किया कि ये कलंक एक चक्र में—लगभग हर ग्यारह वर्ष बाद—प्रकट होते हैं, यद्यपि चक्र का 'चरम' कभी-कभी १० या १६ वर्ष तक में होता है। अगले चक्र के अंत से पहले ही यह अनुभव किया गया कि पृथ्वी के चुम्बकीय वैभिन्य इन कलंकों तथा उनके चक्रों से सम्बन्धित हैं।

इन कलंकों के रहस्य को जानने का यत्न एक सदी से जारी है। १८८२ में प्रथम ध्रुवीय वर्ष, १९३२ में द्वितीय ध्रुवीय वर्ष तथा १९५७-५८ के अंभूव के समायोजन का मूल कारण यही है। हर ऐसे प्रयास का समायोजन ऐसे अवसरों पर किया गया है कि जब वैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक पर्यवेक्षणों के लिए नयी प्रविधियों और नये उपकरणों को विकसित किया था।

सौर-कलंकों का अध्ययन कई प्रकार से किया गया है। सूर्य-कलंकों को, यद्यपि प्रत्यक्षतः तो नहीं, पृथ्वी पर घटने वाली अनेक घटनाओं के साथ सांख्यिकी दृष्टि से जोड़ा गया है। कलंकों की संख्या में वृद्धि को प्रकटतः पृथ्वी के गरमाने, अधिक वर्षा तथा तूफ़ानों, वनस्पति की अधिक वृद्धि, उच्चतर कारखाना-उत्पादन, अधिक सड़क दुर्घटनाओं तथा युद्धों तक के साथ सम्बन्धित कर दिया गया है। इनमें से एक को सिद्ध नहीं किया गया है, और यह सांख्यिकी सम्बन्ध क्यों नजर आता है, यह मालूम नहीं है।

एनड्रयू ई० डगलस नाम के एक अमरीकी वैज्ञानिक ने सूर्य-कलंकों तथा पेड़ों की वृद्धि में परस्पर सम्बन्ध बताया है। इसका पता पेड़ के तने के क़ाट में वृक्ष-वलयों की वार्षिक वृद्धि से चलता है। विराट सेक्वोइया वृक्ष में, जिसकी आयु ३५०० वर्ष से अधिक हो सकती है, डगलस ने १००० ई० पू० तक के सूर्य-कलंक-चक्र का पता चलाया है। उसने उस सूर्य-कलंक-चरम के प्रमाण जुटाए हैं, जिसे गैलीलियो ने देखा था।

ये परोक्ष सूर्य-कलंक-सम्बन्ध भू-भौतिकीविदों को इस बात की ज़्यादा जानकारी नहीं देते कि इन कलंकों को उत्पन्न क्या कारण करता है और ये पृथ्वी को कैसे और क्यों प्रभावित करते हैं। इस जानकारी को हासिल करने के लिए उन्हें अयनमण्डल और पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र उपस्थित प्रतिक्रियाओं-जैसी तुरत और सुगमतापूर्वक माप्य प्रतिक्रियाओं पर निर्भर

करना पड़ता है। इसलिए अंभूव का विश्व सूचना का जाल इन घटनाओं के लिए तैयार रखा जाता है।

सूर्य से आने वाले कणों की धारा के प्रभाव की पृथ्वी द्वारा अनुभूति किये जाने से कोई १८ से २४ घण्टे पहले सूर्य पर आम तौर पर कोई विस्फोट या प्रज्वलन होता है। इसे विशेप फ़िल्टरयुक्त दूरवीक्षण द्वार देखा जा सकता है या इसे रेडियोश्रवण पर अथवा दिक्सूचक पर इसके प्रभाव द्वारा मापा जा सकता है। इसलिए ज्योतिर्विज्ञानीय तथा चुम्बकीय वेधशालाओं का एक जाल लगातार ऐसे आस्फोटों की टोह में रहता है। जब कोई प्रज्वलन देखा जाता है, तो अमरीका के वर्जीनिया राज्य में फोर्ट वेलवोइर में स्थित अंभूव की विश्व-सूचना एजेन्सी तथा कोलोरेडो राज्य में वेलर में स्थित राष्ट्रीय मानक कार्यालय के रेडियो-केन्द्र को तुरन्त सूचित किया जाता है। तुरन्त एक रेडियो-संकेत भेजा जाता है और शिखा को पकड़ने के लिए तत्क्षण, उदाहरणार्थ एक अमरीकी राकून अथवा सोवियत या ब्रिटिश रॉकेट भेजा जाता है।

विश्व-सूचना एजेन्सी शिखा के आकार तथा स्थिति का अध्ययन करती है और यह भविष्यवाणी करती है कि अगले २४ घण्टों में क्या होगा। यदि शिखा 'सक्रिय' लगती है, तो विश्व-सूचना एजेन्सी ग्रीनविच समयानुसार १६.०० वजे इस प्रकार का एक सन्देश दुनिया-भर में भेजती है—'अंभूव, भू-भौतिकीय वर्ष चेतावनी संख्या ६. सचेतता तुरन्त आरम्भ होती है, ०२/१६००.' इसका अर्थ हुआ कि महीने के दूसरे दिन ग्रीनविच समयानुसार शाम के ४ वजे।

अंभूव के आरम्भ के समय दो वड़ी शिखाओं ने वड़ी मशहूरी पाई। २८ जून, १९५७ को मास्को से २० मील दक्षिण क्रास्नाया पाखा में स्थित वेधशाला ने विश्व-सूचना एजेन्सी को फोर्ट वेलवोइर में एक वड़ी शिखा के देखे जाने की खवर भेजी। ३६ घण्टे वाद यूरोप को एक तीव्र रेडियो-संचार-वाधा ने ग्रस्त कर लिया। अंभूव के आरम्भ की अधिकृत तिथि, १ जुलाई को, केलिफ़ोर्निया की सेक्रामेंतो शिखर वेधशाला ने कुछ छोटी शिखा के देखे जाने की सूचना दी। पृथ्वी के प्रत्येक क्षेत्र में वैज्ञानिकों ने

सौर-प्रभावों के एकसाथ माप लिए। केवल रेडियो ही बन्द नहीं हो गए, वरन् असामान्यरूपेण चमकीले मेरू प्रकाश भी देखने में आए। अमरीका के अंभूव-वैज्ञानिकों ने आगत विकिरण को पकड़ने के लिए केलिफ़ोर्निया से ७५ मील की ऊँचाई तक एक रॉकेट छोड़ा। संसार-भर में इसी प्रकार रॉकेट भेज-भेजकर शिखा द्वारा ध्रुवीय, विषुववृत्तीय तथा समशीतोष्ण कटिबन्धों में उत्पन्न विभिन्न प्रभावों का पता लगाया जाएगा।

तथापि इस अन्तरराष्ट्रीय प्रयास के बावजूद वैज्ञानिक अभी यह पूरी तरह से नहीं जानते कि सूर्य-कलंक या शिखा क्या है और पृथ्वी पर जो ये इतने सारे प्रभाव पड़ते हैं, उनका कारण कलंक है या शिखा या कुछ और चीज।

जब कोई सूर्य-कलंक सूर्य-पटल के मध्य में पहुँच जाता है, तो वह सीधा पृथ्वी की ओर 'लक्षित' होता है। तब यह पृथ्वी की ओर कणों की एक धारा की फुहार-सी छोड़ता लगता है, मानो किसी बड़ी नली के मुँह से फुहार छोड़ी जा रही हो। कण पृथ्वी पर एक या दो दिन के बाद पहुँचते हैं, तब तक कलंक आगे बढ़ गया होता है। लेकिन कणों को छोड़ता कौन है? कलंक, या कलंक के **आसपास** का विचलित क्षेत्र, जैसे दमक, या कलंक के **ऊपर** का सूर्योन्नत अग्निशिखा-सा क्षेत्र?—यह हम नहीं जानते।

कभी-कभी ऐसे अवसरों पर भी पृथ्वी की ओर कण छोड़े जाते हैं, जब कलंक या शिखा दृष्टिगोचर नहीं होते। फिर भी वे सूर्य के एक प्रदेश से उछलते नजर आते हैं, क्योंकि कण-प्रवाह सूर्य के घर्णन के साथ हर सत्ता-ईसवें दिन लौट आता है। उन रहस्यमय प्रदेशों को, क्योंकि वे पृथ्वी पर चुम्बकीय तूफ़ान उत्पन्न करते हैं, एम-प्रदेश (चुम्बकीय-प्रदेश) कहा जाता है। अदृश्य एम-प्रदेश आम तौर पर उन जगहों पर, जहाँ कलंक नहीं होते और सूर्य-कलंक चरम के दौरान होते हैं। चित्र और भी अधिक जटिल इसलिए हो जाता है कि ऐसे भी सूर्य-कलंक हैं, जो कणों को फेंकते नहीं, पर फिर भी वे बिलकुल अन्य कलंकों-जैसे ही दिखते हैं।

कलंकों, शिखाओं तथा एम-प्रदेशों पर विचार करके अंभूव का विश्व-आगाही अभिकरण इसका हिसाब लगाने की कोशिश करता है कि कोई

कण-प्रवाह पृथ्वी पर कब चोट करेगा। यह निर्धारित करने के लिए कि कोई कलंक सक्रिय है या निष्क्रिय, अभिकरण को शिखाओं पर आँख रखनी पड़ती है।

प्रकाश का एक छोटा-सा, चमकदार चकत्ता अचानक किसी सूर्य-कलंक के पास प्रकट होता है। मिनटों में ही यह 'उद्वेगित' होकर अपना अधिकतम आकार और चमक प्राप्त कर लेता है और कभी-कभी तो इसका आर-पार का आकार एक लाख मील या उससे भी अधिक हो जाता है। फिर आध घण्टे के आसपास ही यह धूमिल होकर अदृश्य हो जाता है। अपने इस अल्प जीवन में यह अपार मात्रा में संघातक एक्स-किरणों तथा पारबैंगनी विकिरण, कणों और कुछ ब्रह्माण्ड-किरणों को निष्कासित कर देता है। ऐसे ही एक उद्वेग से विकिरण के पहले आस्फोट को पकड़ने के लिए ही अमरीकी नौसैनिक पोत **कोलोनिअल** से अंभूव का एक रॉकेट छोड़ा गया था।

सूर्य-ज्वाला से निष्कृत पारबैंगनी तथा एक्स-किरण-विकिरण पृथ्वी के अधिकांश अयनमण्डल को तेज़ी से पार कर जाता है और कोई ४० मील की ऊँचाई पर D स्तर द्वारा रोक लिया जाता है। यह इस स्तर को आयनित कर देता है और रेडियो-तरंगों को अधिक ऊपर नहीं उठने देता। एक दिन के बाद धीमी चाल से चलने वाले कण पहुँच जाते हैं। ये मेरु-प्रकाश को और अपने खुद के रेडियो-उत्पातों को जन्म देते हैं। इन कणों को पकड़ने के लिए विश्व-सूचना एजेन्सी एक विशेष विश्व-मध्यान्तर करने का रेडियो-सन्देश प्रसारित करती है।

सीधे सामने से या बग़ल से देखने पर ये कलंक तथा उद्वेग प्रभावोत्पादक दिखाई देते हैं। जब ये सूर्य की कोर पर पहुँचते हैं, तब तापदीप्त गैसों की विराट राशियाँ ऊपर उछलती देखी जा सकती हैं। ये अग्निशिखाएँ तथा लहरें कलंकों तथा उद्वेगों से किस प्रकार सम्बन्धित हैं? ज्योतिर्विद इसका पता चलाने का यत्न कर रहे हैं, क्योंकि सूर्य के अन्य प्रदेशों पर और तरह की अग्निशिखाएँ हैं। चित्र २४ में दिखाया गया है कि ऐसी लहरें तथा अग्निशिखाएँ कितनी अलग-अलग और रोमांचक हो सकती हैं।

वैज्ञानिक यह कैसे जान पाते हैं कि सूर्य में इन कलंकों, उद्वेगों तथा अग्निशिखाओं का उत्पन्न करने के लिए क्या प्रक्रियाएँ हो रही हैं? दूर-वीक्षण उन्हें इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता। वे नयी प्रविधियों द्वारा जानकारी को एकबद्ध कर रहे हैं और यह कार्य विज्ञान के इतिहास की सबसे उल्लेखनीय गाथाओं में आने योग्य है।

सागर-तरंगें, पृथ्वी-तरंगें, रेडियो-तरंगें तथा ध्वनि-तरंगें हमें पृथ्वी तथा पृथ्वी पर और उसके भीतर घटने वाली घटनाओं के बारे में बताती हैं। सूर्य से प्रस्फुटित नन्ही विद्युतचुम्बकीय तरंगें हमें इससे भी अधिक विस्तार और यथार्थता के साथ सूर्य पर होने वाली प्रक्रियाओं की जानकारी दे रही हैं।

हमारी आँखें सूर्य के इन उत्सर्जनों में से कुछ—श्वेत प्रकाश तथा जिन छः रंगों में उसे पृथक किया जा सकता है, लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला तथा बैंगनी—को ही देख सकती हैं। इस वर्णक्रम के एक ओर पारबैंगनी तथा एक्स-किरणें हैं, दूसरी ओर अवरक्त तथा रेडियो-तरंगें हैं।

जब हम इन्द्रधनुष-जैसे दृश्य वर्णक्रम को देखते हैं, तो यह रंगों के एक कोमल चाप-सरीखा दिखाई देता है, जिसका हर रंग दूसरे रंग में मिल जाता है। लेकिन जब सूर्य के वर्णक्रम को प्रिज्म द्वारा फैलाकर और लेन्स द्वारा फोकस किया जाता है, तो वह एक अजीब और खूबसूरत दृश्य बन जाता है। इस वर्णक्रम को दीवार पर इस तरह प्रक्षेपित किया जा सकता है कि छः रंगों में से हर रंग कई फुट चौड़ा हो और रंग का प्रत्येक टोन या तरंग-दैर्ध्य दीवार पर एक पृथक पट्ट की तरह गिरकर अपने पड़ोसी पट्ट के साथ घुल-मिल जाए। जब ऐसा किया जाता है, तो कुछ रंग-विशेष या तरंग-दैर्ध्य ऐसी रेखाओं के रूप में प्रकट होते हैं, जो अन्य की अपेक्षा अधिक तीव्र तथा चमकदार हैं। इसके अलावा निरन्तर वर्णक्रम पर उन जगहों पर हजारों श्याम रेखाएँ होती हैं, जहाँ प्रकाश बहुत कम है। इस प्रकार वर्णक्रम ऐसे वेनिशियाई परदे की तरह का हो जाता है, जिसमें कुछ क्षेत्रों में प्रकाश है तो अन्य क्षेत्रों में छाया। २२,००० से अधिक रेखाएँ

गिनी जा चुकी हैं और जब वर्णक्रम को इस प्रकार फैलाया जाता है, तो वह ४० फुट से ज़्यादा लम्बा चार्ट बना देता है।

हैरत की बात यह है कि इन रेखाओं में प्रत्येक अपने रंग या अपनी 'छाया' से हमें सूर्य के बारे में कुछ बताती है। इन २२,००० रेखाओं में से १३,००० से अधिक का ज्योतिर्विद निर्वचन कर भी चुके हैं। ये रेखाएँ हमें सूर्य किस चीज़ का बना है यह, और सौर-प्रक्रियाओं के बारे में बहुत कुछ बताती हैं।

सूर्य पर मौजूद हर तत्त्व का प्रत्येक परमाणु और अणु अपनी खुद की तरंगें भेजता है, जिन्हें पहचाना जा सकता है। सूर्य एक रेडियो-प्रसार-केन्द्र की तरह है, जहाँ प्रत्येक तत्त्व के अपने नाम-कर्ण, अक्षर और कार्यक्रम हैं। उसके द्वारा प्रेषित रंग उसकी उष्मा, संरचना तथा उत्तेजना की अवस्था पर निर्भर करते हैं। हम जानते हैं कि गरम होते-होते लोहे की छड़ किस तरह अपने रंग बदलते-बदलते हलके लाल से पीले और पीले से दमकते सफेद रंग की हो जाती है। हर रासायनिक तथा वैद्युदिक और ताप तथा दाब के परिवर्तन से परमाणु भिन्न प्रकार की प्रकाश-तरंगें भेजेगा।

रंगों तथा 'छाया' की रेखाओं तथा उनके अनेक परिवर्तनों का विश्लेषण करके ज्योतिर्विद सूर्य, सूर्य-कलंकों तथा आस्फोटों की रचना तथा ताप को जान गए हैं। अब तक सूर्य पर ६० तत्त्वों का पता चल चुका है। पृथ्वी पर ९० से अधिक तत्त्व हैं। पृथ्वी पर अधिकांश भारी तत्त्वों का है, लेकिन सूर्य का ९९ प्रतिशत से अधिक दो सरलतम तत्त्वों—हाइड्रोजन और हिलीयम नाम की हलकी गैसों—का बना है। इस प्रकार सूर्य एक 'गैस' है, लेकिन उस अर्थ में नहीं, जिसमें हम गैस को आम तौर पर लेते हैं, क्योंकि यह हमारे महासागरों के पानी से डेढ़ गुना अधिक सघन है और उसकी सतह लावा की तरह 'उबलती' और 'खुदबुदाती' है।

रंग तथा छाया की रेखाओं से पता चला है कि सूर्य-कलंक का ताप ४०००° सें० है, शिखा का २०,०००° सें० और कोराना या सूर्य के आगे लाखों मील तक फैले बाह्य वायुमण्डल का ताप १०,००,०००° सें० है!

रंग की इन रेखाओं ने दिखा दिया है कि सूर्य से लपकती विराट सूर्यो-

न्नत अग्निशिखाएँ अति तप्त, ९९ प्रतिशत विद्युदित अथवा आयनित हाइड्रोजन तथा हिलीयम गैसों के मेघ हैं। इसकी तुलना में इतने जटिल विद्युतीय तथा चुम्बकीय आचरण वाला पृथ्वी का अयनमण्डल केवल ०.०००१ प्रतिशत ही आयनित है। इसलिए सूर्योन्नत अग्निशिखाओं तथा उद्वेगों का अद्भुत आचरण उनके लगभग पूर्ण विद्युतीकरण के कारण है।

काली 'छाया'-रेखाएँ अपनी ही विशेष जानकारी देती हैं। इनमें से प्रत्येक वर्णक्रम द्वारा सूर्य की सतह के छोड़े जाने के बाद से अवशोषित एक रंग या तरंग दैर्ध्य के कारण है। उसका अवशोषण सूर्य के वायुमण्डल में हुआ हो सकता है या पृथ्वी के वायुमण्डल में, परन्तु हर काली रेखा एक उस रंग का परिणाम है, जो उत्तेजन, ताप या रचना की भिन्न अवस्था वाले एक परमाणु द्वारा अवशोषित किया गया है। जिस प्रकार एक परमाणु एक विशेष रंग के प्रकाश का प्रसारण करता है, उसी भाँति वह उसी रंग के प्रकाश को ग्रहण और अवशोषित भी करता है। इस प्रेषण तथा उद्ग्रहण का विश्लेषण करके हम मात्र प्रेषण की अपेक्षा कहीं ज्यादा जानकारी हासिल कर सकते हैं।

वर्णक्रम की प्रकाश-तरंगों में विज्ञान को सूर्य तथा नक्षत्रों के रहस्य खोलने वाली एक 'खिड़की' मिल गई है। रेखाओं में परिवर्तन—वे फूटतीं, चौड़ी होतीं और दाएँ-बाएँ हिलती हैं—यह बताते हैं कि परमाणु कितनी तेजी के साथ चल रहे हैं, पृथ्वी की सापेक्षता में वे किस दिशा में जा रहे हैं और उनका प्रकाश चुम्बकीय प्रभाव में है या नहीं। मिसाल के तौर पर इस प्रकाश ने बताया है कि सूर्य-कलंक अत्यधिक चुम्बकीय क्षेत्र हैं। वे प्रायः सूर्य के साथ घर्णन करते समूहों में दृष्टिगोचर होते हैं। हर समूह का अग्रिम कलंक सूर्य के उत्तरी गोलार्ध में चुम्बकत्वः धनात्मक (+) और उसके दक्षिणी गोलार्ध में ऋणात्मक (—) होता है। हर ग्यारहवें वर्ष यह रूप उलट जाता है और उत्तरी सूर्य-कलंकों का अग्र-कलंक ऋणात्मक और दक्षिणी अग्र-कलंक धनात्मक हो जाता है। यह एक बाईस वर्षीय 'चुम्बकीय चक्र' है। पृथ्वी पर इस चक्र का क्या प्रभाव पड़ता है, ज्योतिर्विद अभी इस प्रश्न का उत्तर नहीं जानते।

सूर्य का प्रकाश इतनी अधिक जानकारी दे सकता है, इसीलिए अंभूव के रॉकेट तथा उपग्रह अयनमण्डल के निम्न स्तरों के ऊपर मँडरा रहे हैं, जहाँ उनके उपकरण वर्णक्रम को अधिक 'देख' सकते हैं। वैज्ञानिकों की हाइड्रोजन की महत्त्वपूर्ण वर्ष-रेखाओं में विशेष रुचि है, क्योंकि इस गैस का विकिरण पृथ्वी पर अधिकतम प्रभाव रखता लगता है।

सूर्य का सफेद प्रकाश में या किसी एक रंग के प्रकाश में चित्र लिया जा सकता है। हर अवस्था में यह हमें कुछ भिन्न बातें दिखाता है। यदि पृथ्वी को अन्तरिक्ष से उस द्वारा परावर्तित प्रकाश में देखा जाए, तो वह एक नीले-तापदीप्त गोले-सी दीखेगी। धुंध, बादलों तथा वायुमण्डल में प्रकाश के बिखरने के कारण ज़मीन तथा महासागर नहीं दिखाई देंगे। लेकिन अगर पृथ्वी का चित्र ऐसे फिल्टर के जरिये लिया जाए, जो केवल अवरक्त प्रकाश को, जो धुंध को भेदकर चला जाता है, ही प्रेषित करता है, तो पृथ्वी हमें हमारी जानी-पहचानी-सी ही ज़्यादा नज़र आएगी। यदि पृथ्वी का चित्र हरे फिल्टर के जरिये लिया जाए, तो वनस्पति से ढके क्षेत्र सफेद, नीले-हरे सागर] भूरे और ठोस पृथ्वी तथा शिलाएँ, जो हरे रंग को परावर्तित नहीं करते, काले दिखाई देंगे।

इसी प्रकार ज्योतिर्विद किसी एक ही—आम तौर पर हाइड्रोजन, हिलीयम, कैलशियम या लोहा—के केवल एक ही रंग या तरंग-दैर्ध्य का उपयोग करके सूर्य के चित्र ले सकते हैं। ये चार रंग हमें सूर्य की चार भिन्न 'आकृतियाँ' देते हैं, और हर आकृति हमें एक तत्व-विशेष की क्रिया-विधि की जानकारी दे देती है। इन चित्रों में सूर्य एक स्याह चित्तीदार गेंद-सा दिखाई देता है, जिसकी सतह संतरे की तरह दानेदार और खुरदरी है, लेकिन जो सतत गतिशील परिवर्तन से गुज़र रही है। एक अकेले तरंग-दैर्ध्य के प्रकाश से देखने पर ज्वालाएँ चमकदार चकत्तों-जैसी नज़र आती हैं और कलंक और भी अधिक काले दिखाई देते हैं। यह सूर्य हमारी कल्पना का-सा नहीं है, और न ही वैसा, जैसा गेलीलियो ने सफेद प्रकाश में देखा था।

एक ही तरंग-दैर्ध्य के प्रकाश से ज्योतिर्विद सूर्य के वायुमण्डल के

विभिन्न स्तरों के चित्र ले सकते हैं। वायुमण्डल की तली पर 'सूर्य की सतह'—दीप्तिमण्डल है, जिससे सूर्य का अधिकांश चमकीला नियमित प्रकाश आता है। ६० से १२० मील तक चौड़ी गैस का यह सतही 'खोल' सूर्य को एक ठोस, दानेदार गेंद की सादृश्यता प्रदान करता है। सूर्य-कलंक इसी पर प्रकट होकर ऐसे नज़र आते हैं, मानो वे दीप्तिमंडल में उसके गर्भ की ओर जाने वाले बड़े छेद हों।

दीप्तिमण्डल के ऊपर गैस का एक 'शीतल स्तर' है, जो कुछ प्रकाश का अवशोषण आरम्भ कर देता है, जिससे वर्णक्रम की काली 'छाया-रेखाएँ' उत्पन्न होती हैं। इसके ऊपर द्विग्न गैस का एक उष्ण-स्तर है, जहाँ ज्वालाएँ प्रकट होती हैं और जिससे सूर्योन्नत अग्निशिखाएँ और उद्वेग निकलते दीखते हैं। यह कोई ६००० मील मोटा वर्णमण्डल है। वर्णमण्डल से लाखों मील के विस्तार वाले कोरोना (किरीट या मुकुटावरण) में पदार्थ फिकता लगता है, जबकि कोरोना से और पदार्थ वापस वर्णमण्डल में फेंका जाता लगता है। जैसा कि हम देख चुके हैं, इन बाह्य प्रदेशों में सूर्य की सतह की अपेक्षा कहीं अधिक गरमी है।

हर स्तर का सरल 'चित्रांकन' करें, तो हमें यह होता लगता है कि सूर्य-गर्भ की गहराई में कोई अज्ञात प्रक्रिया सतह पर 'कलंकों' के रूप में प्रकट होती है; कलंकों के इर्द-गिर्द चुम्बकीय उत्पात इसके ऊपर के वर्णमण्डल को प्रभावित करते हैं, जिससे उसका ताप, विद्युतन और प्रक्षेम बढ़ जाता है। इससे उछलती अग्निशिखाएँ और चमकीली फुलझड़ियाँ पैदा होती हैं, जिससे वर्णमण्डल कोराना में तथा पृथ्वी की तरफ पदार्थ तथा विकिरण उगलता लगता है; अपनी बारी में यह पृथ्वी के चुम्बकीय तूफ़ान उत्पन्न करता है और हमारे रेडियो तथा दिक्सूचकों को प्रभावित करता है।

इस प्रक्रिया के अन्तिम परिणामों का अध्ययन करके वैज्ञानिक एक-एक बात को जोड़कर यह पता लगाने का यत्न कर रहे हैं कि सूर्य पर क्या हो रहा है?

में से, लघुतम—आधा इंच या उससे भी छोटी-तरंगें आती हैं। सूर्य के मूल प्रकाश की भाँति ये भी सतत और नियमित हैं। ये सतत 'उबलते और बुदबुदाते' उन दानों के क्षेत्र में से पैदा होती लगती हैं, जो सूर्य के इकरं चित्रों में नजर आते हैं। अधिक ऊपर, अधिक उद्वेग की परिस्थितियों में और अधिक विरलित गैसों में, तरंगें अधिक बड़ी और लय अधिक अनियमित हो जाती हैं।

सूर्य की सतह से १०,०००-१५,००० मील की ऊँचाई पर—निम्नतर कोरोना में—रेडियो-तरंगें २ इंच से कम से लेकर २ फुट दैर्घ्य तक की होती हैं। कुछ दिनों की अवधि कोरोना-क्रियाशीलता के बढ़ने-घटने के साथ-साथ यहाँ संकेत चढ़ती-गिरती लयों में तरंगित होते हैं। ये संकेत सूर्य के २७ दिवसीय घर्णन के साथ दृश्य या अदृश्य कोरोना-सक्रियता के प्रदेशों की उपस्थिति दर्शाते हुए बढ़ या घट सकते हैं। कोरोना के इन प्रदेशों को 'प्रसार मेघ' का नाम दिया गया है और ये सामान्यतया सूर्य-कलंकों के ऊपर या एक ओर होते हैं। कलंकों के विलुप्त हो जाने के बाद भी प्रसार-मेघ कुछ दिन तक कायम रह सकते हैं।

१ से १५ गज दैर्घ्य की रेडियो-तरंगों के तूफान कोरोना में और भी ऊँचे स्तरों पर फूटते हैं। वे आम तौर पर नीचे के वर्णमण्डल में आस्फोटों जैसे उद्वेगों के कारण होते हैं और सूर्य-कलंकों से सम्बन्धित होते हैं। अंग्रेज राडार-चालकों ने १९४२ में जो अद्भुत रेडियो 'शोर' पकड़ा था और जिसे उन्होंने गलती से कोई जर्मन युक्ति समझा था, इसी प्रकार पैदा हुआ था। अंभूव के समारम्भ के समय सूर्य पर जो आस्फोट हुए थे, उन्होंने प्रकाश-तरंगों तथा कणों के साथ-साथ ऐसे रेडियो-शोर भी भेजे थे।

कभी-कभी इन दीर्घतर तरंगों के अल्पजीवी रेडियो 'विस्फोट' या स्फोट होते हैं। उनके बीच मिनटों का अन्तर होता है और हर अगला स्फोट दीर्घतर तरंग-दैर्घ्य का होता है। ८ मार्च, १९४७ को सूर्य पर एक आस्फोट हुआ। ५ फुट दैर्घ्य की रेडियो-तरंगों के एक स्फोट ने अलस सवेरे पृथ्वी पर चोट की। वैज्ञानिक रेडियो-संग्राहियों द्वारा ग्रहीत यह सबसे बड़ा स्फोटन था। दो मिनट के बाद १० फुटी तरंगें पहुँचीं और चार मिनट के

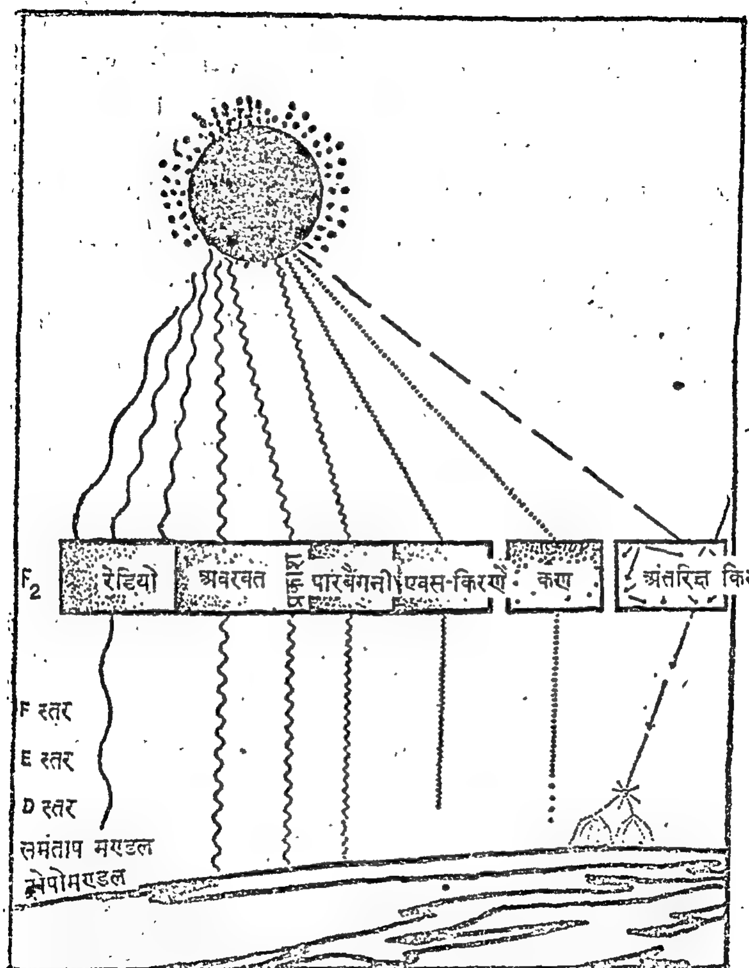
बाद १५ फुटी। विश्लेषण से अनुमान किया गया कि ५ फुटी तरंगें सूर्य की सतह से कोई २०,००० मील ऊपर पैदा हुई थीं, १० फुटी कोई ६०,००० मील ऊपर और १५ फुटी सतह से कोई ७०,००० मील ऊपर।

इस प्रक्रिया का हमारा ज्ञान अभी सैद्धान्तिक ही है। ऐसा लगता है कि वर्णमण्डल में आस्फोट तीव्र संकेतों का उत्सर्जन करता है, जो कोरोना के आयनित स्तरों में धीमे हो जाते हैं। फिर हर स्तर एक विभिन्न दैर्घ्य की विलम्बित तरंग का पुनः प्रसार करता है। कभी-कभी आस्फोट धीमी अन्तरिक्ष किरणों-जैसे कणों का भी उत्सर्जन कर सकता है, जो प्रकाश की एक-तिहाई चाल से चलकर सूर्य से और भी अधिक दूर के कोरोना से रेडियो-तरंगों के स्फोटनों को उत्सर्जित कराते हैं।

ये रेडियो-तरंगें कैसे पैदा होती हैं? एक सिद्धांत यह है कि सूर्य या स्थानीय चुम्बकीय क्षेत्रों में तीव्र परिवर्तनों से परमाणु उसी प्रकार प्रसार करने लगते हैं, जैसे तीव्र विद्युत स्फुलिंग या रेडियो-प्रेषित्र से रेडियो-तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं। ये बदलते चुम्बकीय क्षेत्र परमाणु-कणों की विपुल संहतियों को समस्वर कम्पन प्रदान कर सकते हैं। ये स्पन्दन करते क्षेत्र श्रृंग-से-श्रृंग तक २०,००० मील दैर्घ्य की रेडियो-तरंगें तक पैदा कर सकते हैं, जो इतनी दीर्घ हैं कि हमारे रेडियो-संग्राहियों द्वारा ग्रहण नहीं की जा सकतीं, तथापि पृथ्वी पर उनके प्रभाव रात्रि-उद्दीप्ति के रूप में देखे जा सकते हैं।

सूर्य की प्रक्रियाओं तथा पृथ्वी के साथ उनके सम्बन्ध का अध्ययन करने के दौरान प्रकाश-तरंगों तथा रेडियो-तरंगों और मन्द तथा तीव्र कणों को उपयोग में लाया जा रहा है। सूर्य के हर लक्षण—कलंक, आस्फ़ोट, विस्फोट, एम प्रदेश, वर्णमण्डल, दीप्तिमण्डल तथा कोरोना—का एक साथ और सावधानीपूर्वक अध्ययन किया जा रहा है।

अपनी नियमित दैनिक और मौसमी गतियों पर चलते मन्द गति, भव्य और स्थिर दृश्य सूर्य की पुरानी धारणा की जगह एक गतिशील सूर्य, जिसका प्रभाव लगभग समस्त भू-भौतिकीय घटनाओं द्वारा अनुभव किया जाता है, की धारणा प्रस्थापित हो रही है। पृथ्वी पर तुरन्त पड़ने वाले



आकृति १३—उत्सर्जन सूर्य की पूरी सतह से आते हैं, यद्यपि उच्चतम सक्रियता के बिंदुओं से वे बढ़ जाते हैं। आकृति में दीप्तिमंडल तथा उसके ऊपर का वर्णमंडल दिखाया गया है, जिसमें उद्वेग होते हैं। अंतरिक्ष-किरणें पृथ्वी की ओर सभी दिशाओं से आती हैं, चाहे प्रत्यक्षतः वे सूर्य से ही सम्बन्धित लगती हों।

सौर-प्रभाव भी हैं और ऐसे भी, जो धीमे या संचित हैं और हज़ारों वर्षों में असर करते हैं। भू-भौतिकीविद सभी का रूप जानने का यत्न कर रहे हैं।

गैलीलियो या कोपर्नीकस ने जितना समझा था, उससे कहीं अधिक तरीकों से सूर्य सौर-परिवार का केन्द्र है। अन्तरिक्ष-यात्रा में पृथ्वी से निकल जाने पर भी वह मनुष्य के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण बना रहेगा। मनुष्य द्वारा पृथ्वी को अधिकाधिक निवास-योग्य बनाने के सभी प्रयासों की सूर्य कुञ्जी रहेगा।

: १० :

उपग्रह

अमरीका तथा सोवियत संघ द्वारा पृथ्वी के चारों ओर विभिन्न आकारों तथा आकृतियों के उपग्रहों को कक्षा में पहुँचाने के कोई बारह प्रयास अंभूव के सबसे उल्लेखनीय और भव्य प्रयास होंगे।

जिस महान् प्राकृतिक घटना की हमने अब तक चर्चा की है, उसके आगे मनुष्य के पृथ्वी से 'निकालने' के ये नाटकीय प्रयास एकदम क्षुद्र लग सकते हैं। अमरीकी तथा सोवियत उपग्रह इतने छोटे हैं कि भोर तथा गोधूलि के समय को छोड़कर, जब क्षितिज से नीचे सूर्य की किरणें उन पर उचित कोण पर गिरती हैं, पृथ्वी की परिक्रमा करते ये उपग्रह कोरी आँख से दिखाई नहीं पड़ते।

ये नन्हे मनुष्य-निर्मित 'चन्द्रमा' सूर्य के विकिरण, अन्तरिक्ष-किरणों, उच्चतर वायु की प्रकृति तथा घनत्व, पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र, अवकाश में अति सूक्ष्म उल्काओं और मौसमी भविष्यवाणी तक से सम्बन्धित कुछ बड़े सवालों के बारे में प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त करने के लिए छोड़े जा रहे हैं।

ये प्रश्न भू-भौतिकी के सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों में हैं, इसलिए वैज्ञानिक संघों की अन्तरराष्ट्रीय परिषद् ने १९५४ में निर्णय किया कि अंभूव में एक रॉकेट तथा उपग्रह कार्यक्रम सम्मिलित किया जाना चाहिए।

अन्तरराष्ट्रीय परिषद् के निर्णय ने अमरीका तथा सोवियत संघ के कार्यक्रमों को चालू कर दिया। उपग्रहों को छोड़ने के लिए उनके पास केवल तीन वर्ष थे। अमरीका की उपग्रह छोड़ने की समिति के अध्यक्ष फ्रेड एल०

ह्विपल ने १९५६ में कहा था, "हमारा पहला कदम इस बात के प्रमाण एकत्र करना था कि आधुनिक रॉकेट प्रविधि द्वारा... एक छोटी-सी वस्तु को पृथ्वी के इर्द-गिर्द कक्षा में डालना, जिससे वह एक कृत्रिम चन्द्रमा बन जाए। सम्भव है, आज के प्रशिल्प के अर्थों में, नये वैज्ञानिक आविष्कारों और नये प्रकार के ज्ञान के बिना, मात्र हमारी जानकारी के विकास द्वारा यह सम्भव है। यह तुरन्त ही प्रकट हो गया कि सेना अब ऐसी वस्तु को कक्षा में पहुँचाने की स्थिति में है और इसलिए राष्ट्रपति ने प्रतिरक्षा विभाग को दो चीजें करने का कार्यभार दिया—(१) उपग्रह को कक्षा में डालना, और—बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात—(२) यह सिद्ध करना कि ऐसा किया जा चुका है।"

इस पर भी अमरीकी उपग्रह-कार्यक्रम सावधानीपूर्वक सैनिक विकासों और सैनिक अवीक्षण से पृथक् रखा गया और उसका बजट अलग रखा गया।

अमरीकी उपग्रह छोड़ने के निर्णय की घोषणा राष्ट्रपति आइजनहावर ने २९ जुलाई १९५५ को की। सोवियत संघ ने पहले—१५ अप्रैल, १९५५ को घोषणा कर दी थी कि वह उपग्रह को कक्षा में स्थापित करने की कोशिश करेगा। दो साल तक रूसियों के प्रयास रहस्य में ढके रहे, जबकि अमरीकी उपग्रह-कार्यक्रम की कठिनाइयों तथा दिन-दिन की प्रगति की पूरी खबरें छपती रहीं। लेकिन सोवियत वैज्ञानिक निष्क्रिय नहीं थे।

जब १४ जुलाई, १९५७ को अंभूव का समारम्भ हुआ, तो सोवियत संघ ने घोषणा की कि उसका पहला उपग्रह सम्भवतः अमरीका से पहले छोड़ा जाएगा। १७ सितम्बर, १९५७ को मास्को रेडियो ने कहा कि सोवियत उपग्रह 'अमरीका में बने उपग्रहों से भारी' होंगे। मास्को से यह खबर भी आई कि सोवियत संघ अपने वैज्ञानिकों को अंभूव के दो कार्यक्रमों—उपग्रह तथा रॉकेट और दक्षिणी ध्रुव प्रदेश के अनुसन्धान—में मुक्त हाथ और असीम सहायता दे रहे हैं। ४ अक्तूबर, १९५७ को सोवियत संघ ने अपना पहला उपग्रह छोड़ दिया।

कोई प्रतियोगिता न होने पर भी अमरीका तथा रूसी वैज्ञानिकों ने

तनाव और होड़ का अनुभव किया था। तथापि अमरीकी वैज्ञानिकों ने निश्चय किया कि पूरा समय लगाकर उपग्रह के लिए एक जटिल उपकरणिका या 'मस्तिष्क' तैयार किया जाए। उसके लिए एक जटिल गति या घर्षण रखा जाए और यथातथ्य दृश्य तथा रेडियो-अनुसरण के लिए एक जटिल संसार-व्यापी प्रणाली स्थापित की जाए।

एक उपग्रह के छोड़ने में हजारों प्रशिल्पिक कठिनाइयाँ सन्निहित होती हैं। फिर भी, डॉ० ह्विपल के कथनानुसार, महासागरों, वायु, पृथ्वी तथा सूर्य की पहेली हल करने में सन्निहित समस्याओं की तुलना में ये साधारण हैं। गैलीलियो ने आरम्भ में तोप के गोले के मार्ग का जो हिसाब लगाया था, उसी के फलस्वरूप अब उपग्रहों का छोड़ा जाना सम्भव हो सका है। इसके कुछ वर्ष बाद आइजक न्यूटन ने भी इस आशय की सम्भावनाएँ प्रकट की थीं कि यदि किसी चीज को बड़े बल से फेंका जाए तो वह पृथ्वी को छोड़कर ऊपर जा सकता है।

न्यूटन ने लिखा था—"(तोप का गोला) जितने ही अधिक वेग से फेंका जाता है, पृथ्वी पर गिरने के पहले वह उतना ही अधिक दूर जाता है ....अब यदि हम क्षितिज के समानान्तर अधिक (और अधिक) ऊँचाइयों पर प्रक्षेपित पिण्डों की कल्पना करें,...तो अपने-अपने वेग के अनुसार (वे) ग्रहों की भाँति उन्हीं प्रक्षेप-पथों पर आकाश में परिभ्रमण करती रहेंगी।" इन अनुमानों पर न्यूटन ने अपना गुरुत्वाकर्षण का नियम आधारित किया और कोई तीन सौ बरस पहले उसने गणित का सूत्र निकाला, जो उपग्रह को नामावतरित करने का आधार है। न्यूटन का गुरुत्व का नियम सैनिक प्रयोजनों के लिए तभी से महत्वपूर्ण रहा है, क्योंकि गोला, गोली या रॉकेट दागने और उपग्रह को छोड़ने में मूल समस्या समुचित वेग प्राप्त करने की है।

अमरीका तथा सोवियत संघ के वैज्ञानिकों ने रॉकेट-अनुसंधान द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले किये थे। वस्तुतः रॉकेट-विज्ञान के सर्वप्रमुख अग्रगामियों में कोन्स्तांतिन एदवर्दोविच त्सिओलव्स्की नामक रूसी-जिन्होंने पहले-पहल बहुखंडी रॉकेटों द्वारा उपग्रह को नभावतरित करने

की समस्या का हल निकाला, और रॉबर्ट एच० गोडार्ड नाम के एक अमरीकी हैं, जिन्होंने वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए उच्चतर वायुमण्डल में पहले रॉकेट भेजने के प्रयोग किये। लेकिन बड़े रॉकेटों पर काम करने की प्रेरणा दोनों ही राष्ट्रों को द्वितीय विश्व-युद्ध में जर्मनों की वी-१ तथा वी—२ रॉकेटों के साथ सफलता ने ही दी। युद्ध के बाद अमरीका ने सर्वोत्तम जर्मन रॉकेट-वैज्ञानिकों में से कुछ को प्राप्त किया और सोवियत संघ ने बाल्टिक तट पर स्थित जर्मन पीनेमुंदे रॉकेट विकास केन्द्र पर कब्ज़ा कर लिया।

रॉकेट के सैन्य-विकास ने उपग्रह को सम्भव बनाया है। तथापि, उपग्रह कोई हथियार नहीं है। यह केवल एक लघुवृत 'प्रयोगशाला', एक नन्हा-सा औज़ार है, जो वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए नयी दुनियाएँ खोल रहा। लेकिन समस्त मूल वैज्ञानिक अनुसंधान की भाँति इसके परिणामों का वैज्ञानिक के साथ-साथ सैनिक मूल्य भी होगा।

अमरीकी वायु-सेना के आधुनिक 'तोपखाने' अन्तरमहाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र के मुखिया मेजर जनरल बर्नार्ड ए० श्राइवेर ने अपनी राय देते हुए कहा है, "अन्तरिक्ष प्रशिल्प के विकास का कारण…राष्ट्रीय प्रतिरक्षा है…अन्ततः एक राष्ट्र के नाते हमारी सुरक्षा इसी बात पर निर्भर करती है कि हम अन्तरिक्ष के क्षेत्र में कितने आगे जाते हैं।

उच्चतर वायु-अनुसन्धान के लिए छोड़े जाने वाले पहले बड़े रॉकेट, १९४६ में द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त में अमरीकी सेना द्वारा बरामद जर्मनी वी-२ रॉकेट थे। ऊपरी वायु की जाँच करने के लिए इनमें से २५ रॉकेट ह्वाइट सैंड्स, न्यू मेक्सिको से छोड़े गए थे। सेना ने बताया कि ये हमारे रॉकेट प्रविधि के ज्ञान को बढ़ाने के लिए जाँचे जा रहे थे और उसने सम्मति दी कि उनके खाली अग्रभागों में वायुमण्डलीय प्रयोगों के लिए उपकरण रखे जा सकते हैं। इसलिए एक भू-भौतिकी अनुसन्धान-कार्यक्रम संगठित किया गया, जिसमें सेना, नौसेना, वायु-सेना तथा असैनिक प्रयोग-शालाओं ने भाग लिया।

छः वर्ष और लगभग ६० वी-२ रॉकेटों के दागने के बाद अन्ततः

अयरोबी तथा वाइकिंग सहित अमरीकी डिजाइन के रॉकेट भी शामिल किये गए। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के ११ वर्षों में २०० से अधिक रॉकेट छोड़े गए। यह संख्या इतनी कम है कि हर उड़ान की तिथि और प्रयोग की प्रकृति का अभी भी वैज्ञानिक साहित्य में उल्लेख किया जाता है।

ये अमरीकी रॉकेट उच्चतर वायुमण्डल के घनत्व, दाब तथा पवनों को मापते थे। उनके द्वारा प्राप्त मापों ने इंगित किया कि यद्यपि ऊँचाई के साथ-साथ वायु पतली होती जाती है, फिर भी भूमि से कोई ६५ मील ऊपर तक उसकी रचना वही है। इस ऊँचाई पर सूर्य वायु के अणुओं को तोड़कर परमाणुओं में बदलकर ऑक्सीजन को ओज़ोन में परिवर्तित करने में लगा है।

हर वायुमंडलीय स्तर से गुज़रते समय रॉकेटों ने सूर्य से आने वाले विकिरण की जाँच करके हमें अयनमण्डल में अवशोषित पारबैंगनी तथा एक्स-किरणों के पहले माप प्रदान किए। रॉकेटों ने पता चलाया कि पट्टियाँ वास्तव में पट्टियाँ नहीं हैं, प्रत्युत ऐसे क्षेत्र-मात्र हैं, जिनमें वायु का घनत्व भिन्न था, जो क्रमशः घटता जाता था।

रॉकेटों ने वायुमण्डल के आयनित अंशों, जो सूर्य की ऊर्जा का अवशोषण कर रहे थे, के ताप के बारे में जानकारी हासिल की और पाया कि F स्तरों में वह असामान्यरूपेण ऊँचा—१०००° के[1] है। यहाँ वायु इतनी पतली है कि ताप का आशय बड़ी ऊष्मा के अनुभव की बजाय, विकिरण का अवशोषण करते कणों से होता है। रॉकेटों ने अयनमण्डल में दिन-रात और मौसमी परिवर्तनों की और अयनमण्डलीय ऊँचाइयों पर अन्तरिक्ष किरणों की जाँच की।

उच्चतर वायुमण्डल-अनुसन्धान के लिए प्रथम सोवियत रॉकेट १९४७ में ब्रह्माण्ड-किरणों का अध्ययन करने के लिए भेजा गया लगता है। १९५३-५४ तक सोवियत-सैनिक तथा अनुसन्धान-रॉकेट इतने विकसित हो चुके थे कि अमरीका के वैज्ञानिकों की भाँति यहाँ के वैज्ञानिक भी वैज्ञानिक

१. केल्विन पैमाना, जो परमशून्य या सेण्टीग्रेड पैमाने पर—२७३° पर शुरू होता है।

संघों की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् के अंभूव के अंगस्वरूप उपग्रह का नमोन्-वतरण करने के सुझाव पर विचार करने लगे।

अंभूव के उपग्रहों को सफलतापूर्वक छोड़े जाने के बावजूद लगभग २०० मील की ऊँचाई तक के उच्चतर वायुमण्डलीय अनुसन्धान का मुख्य साधन अभी रॉकेट ही है—उसी प्रकार, जैसे कि २० मील तक की ऊँचा-इयों के अनुसन्धान के लिए मुख्य साधन गुब्बारा है। अंभूव के दौरान दुनिया के सभी हिस्सों में कोई २०० अमरीकी रॉकेट छोड़े जा रहे हैं। अंग्रेज़, फ्रान्सीसी, आस्ट्रेलियाई तथा रूसी भी रॉकेट छोड़ रहे हैं। सोवियत संघ अंभूव-कार्यक्रम के अंग-स्वरूप १२५ रॉकेट छोड़ रहा है। अमरीकी वायुसेना ने अंभूव के दौरान धरती से हजारों मील ऊपर बड़े रॉकेटों को भेजना शुरू कर दिया है। अम्भूव के १८ महीनों में लगभग उतने ही परि-मापन रॉकेट दागे जा रहे हैं, जितने कि १९४६ से लेकर १९५७ तक ११ वर्षों में कुल दागे गए थे।

अंभूव के रॉकेट नियमित विश्व-दिवसों पर, जो पहले से ही निर्धारित कर दिये गए हैं, छोड़े जाते हैं, ताकि एक विशिष्ट समय पर वैज्ञानिक दुनिया के ऊपरी वायुमण्डल का समक्षणिक चित्र पा सकें। अंभूव की संसार-व्यापी आगाही का यह संकेत मिलने पर कि कोई सौर-उद्वेग प्रकट हुआ है, रॉकेट छोड़े जाते हैं। अंभूव के रॉकेट ऐसी जानकारी हासिल कर रहे हैं, जो मेरु-प्रकाश तथा वायु-चमक के कारण तथा प्रकृति के, पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में उतार-चढ़ाव के, अयनमण्डल की संसार व्यापी संरचना के, सूर्य से आगत ऊर्जा के, उच्च तुंगों पर पवनों के चक्रण के, ब्रह्माण्ड-किरणों की तीव्रता के कारण और प्रकृति को—वस्तुतः पृथ्वी के साथ सूर्य के सम्बन्ध की सामान्य रूपरेखा को—निर्धारित करने में सहायक होगी।

द० ध्रुव प्रदेश में, यह जानने का यत्न करने के लिए कि लम्बी सर-दियों की रात में, जब सूर्य नहीं होता, अयनमण्डल को क्या होता है, अम-रीकी तथा सोवियत वैज्ञानिक रॉकेटों द्वारा कुछ दिलचस्प प्रयोग कर रहे हैं। पहले आसार तो इसी बात के मिले हैं कि सूर्य की अनुपस्थिति में भी द० ध्रुव प्रदेश के ऊपर के स्तर अवनित रहते हैं।

तथापि अंभूव का मुख्य रॉकेट-कार्यक्रम अमरीका तथा कनाडा द्वारा फोर्ट चर्चिल, मेनीटोबा में क्रियान्वित किया जा रहा है। अंभूव के दौरान अमरीका के २०० रॉकेटों में से कम-से-कम १०० फोर्ट चर्चिल से छोड़े जाएँगे। अंभूव के आरम्भ के तीन दिन बाद, ४ जुलाई १९५७ को पहले नियमित विश्व-दिवस के अवसर पर अमरीका ने फोर्ट चर्चिल से एक एय-रोबी-हाई रॉकेट हवा में छोड़ा।

मेरु क्षेत्र के रॉकेट द्वारा पहली मौसमी 'टोह' देने के लिए फ़ोर्ट चर्चिल (५८° उ०, ६४° प०) को चुना गया। न्यू मेक्सिको में स्थित ह्वाइट सैंड्स इस क्षेत्र से बहुत दूर है। उत्तरी मेरु प्रकाश ही वह क्षेत्र है, जिधर धीमी ब्रह्मांड-किरणें पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र द्वारा मुड़ जाती हैं। इसलिए फ़ोर्ट चर्चिल में ब्रह्मांड-किरणों का अध्ययन भी किया जा रहा है। मेरु प्रकाश तथा ब्रह्मांड-किरणों का अध्ययन करने के लिए रॉकेट और उत्तर में, ग्रीन-लैण्ड में थुले भी छोड़े जा रहे हैं। आरम्भ में अमरीकी अंभूव-रॉकेट कार्यक्रम अलास्का में होने को था, मगर स्थानीय शिकारियों तथा बहेलियों के विरोध के कारण, जिन्हें इस बात का डर था कि रॉकेटों की तेज़ गरज से जंगली जानवर डर जाएँगे, और सुविधाजनक परिवहन के अभाव के कारण यह योजना रद्द कर दी गई।

रॉकेटों की उपयोगिता सीमित ही है, क्योंकि रॉकेट अयनमण्डल में कुछ सेकण्ड-भर ही रहता है और अयनमण्डल के पार अभी तक कोई रॉकेट गया नहीं। इसलिए वैज्ञानिक बड़ी उत्सुकता के साथ उस दिन की प्रतीक्षा करते रहे हैं जब वे कोई ऐसा यान ऊपर भेज पाएँगे, जो ऊपर ठहरा रहेगा। १० वर्षों के प्रयोगों के बाद सोवियत तथा अमरीकी सैनिक रॉकेट इंजीनियर एक 'दीर्घ स्थायी' रॉकेट भेजने को तैयार थे—एक ऐसा रॉकेट, जो इतने काफ़ी वेग वाला हो कि पृथ्वी के इर्द-गिर्द कक्षा में डाला जा सके।

भू-भौतिकीविद बड़े खुश थे, क्योंकि 'दीर्घ स्थायी' रॉकेट या उपग्रह उनके लिए एक एकदम नया औज़ार था। अयनमण्डल से ऊपर की

परिस्थितियों के वे पहली बार निरन्तर माप ले सकेंगे। उपग्रह ये माप दो तरीकों से दे सकता था—पृथ्वी को रेडियो द्वारा सूचना भेजकर और भू-स्थित पर्यवेक्षकों को अपनी चाल तथा गति में परिवर्तनों को अपने में सक्षम बनाकर। अन्तोक्त मापों से पर्यवेक्षक २०० से १६०० मील तक की ऊँचाइयों पर उपग्रह को प्रभावित करने वाली तीन घटनाओं के बारे में जानकारी पा सकते हैं—घनत्व, विद्युत्-चुम्बकीय बल तथा पतली 'वायु' का घनत्व।

सोवियत उपग्रह के छोड़े जाने का तरीका बताया नहीं गया, किन्तु अनुमानतः यह अमरीकी योजनाओं के तरीकों से ही किया गया था। तथापि सोवियत संघ ने अपना उपग्रह भूमि पर और विषुवतृत्त के साथ भिन्न कोण पर छोड़ा था। उन्होंने सम्भवतः उसे अधिक बलशाली रॉकेटों से छोड़ा था।

२० पौण्ड के अमरीकी वेंगार्ड उपग्रह को छोड़ने के लिए २२,००० पौण्ड वजन का एक ७२ फुट लम्बा तीन-खण्डी रॉकेट २७,००० पौण्ड धक्के द्वारा फेंका जाएगा।

प्रथम-खंडी रॉकेट कोई ४००० मील प्रति घंटे की चाल प्राप्त कर लेने के बाद लगभग ४० मील की ऊँचाई पर कटकर समुद्र में गिर जाएगा। द्वितीय-खंडी रॉकेट अपने बल से १३० मील की ऊँचाई तक चढ़कर ११,००० मील प्रति घंटे की चाल प्राप्त कर लेगा। यह ३०० मील की ऊँचाई तक खींचता रहेगा और तृतीय खंड को अन्तिम दाग के लिए तैयार कर देगा। इसे दागने के बाद यह भी समुद्र में गिर जाएगा। तृतीय खंड उपग्रह को १८,००० मील प्रति घंटे की चाल से कक्षा में ले जाएगा। इसके बाद रॉकेट उपग्रह से अलग हो जाएगा और सम्भवतः गिरने से पहले उसके पीछे-पीछे पृथ्वी के कई चक्कर लगाएगा। उपग्रह—यदि सभी-कुछ योजनानुसार ही हो, तो—पृथ्वी के चारों ओर १०० मिनट में घूमेगा। अपनी कक्षा में वह पृथ्वी के गुरुत्व के खिचाव से 'जकड़ा' रहेगा, जो उपग्रह के वेग के अपकेन्द्री बल के, जो उसे पृथ्वी से दूर फेंकने का यत्न करेगा, प्रति संतुलित होगा। छोड़ने में दस मिनट लगेंगे, लेकिन यह नहीं मालूम कि वर्तमान अमरीकी या सोवियत उपग्रह कब तक कक्षा में रहेंगे।

अन्ततः उपग्रह २०० से १६०० मील की ऊँचाइयों पर पतली हवा के

अवरोध से धीमे पड़ते जाएँगे, और धीमे होने के साथ वे नीचे गिरेंगे और सघनतर निम्न वायुमण्डल में जल जाएँगे। ऊपर रहते हुए वे भू-भौतिकीय सूचना दर्ज करेंगे और उसे विद्युत्-संकेतों द्वारा, जिनमें उपग्रह द्वारा संग्रहीत आधारभूत जानकारी सन्निहित होगी, पृथ्वी को भेजते रहेंगे। इन संकेतों की तरंग-लम्बाई और तीव्रता भिन्न होती है।

अमरीका पहले उपग्रह को कक्षा में पहुँचाने के लिए छः 'सच्चे प्रयास' करेगा और बाद में विभिन्न डिज़ाइनों के और उपग्रहों को कक्षा में डालने के लिए छः और प्रयास। 'प्रयासों' की सफलता अनिश्चित है।

सोवियत तथा अमरीकी उपग्रह-वैज्ञानिक संघों की अन्तरराष्ट्रीय परिषद् द्वारा सुझाये गए वैज्ञानिक अनुसंधान करेंगे।

पहले अमरीकी उपग्रहों में कोई १० पौण्ड नन्हे उपकरण कसकर भरे होंगे। ये चार आधारभूत भू-भौतिकीय प्रयोग करेंगे। पहला प्रयोग सूर्य के पारबैंगनी विकिरण को एक पतले इकहरे पट्ट या वर्णक्रम के 'वर्ण' में, जिसे वैज्ञानिक 'लाइमैन एल्फा' कहते हैं, मापेगा। यह महत्त्वपूर्ण पारबैंगनी पट्ट, जो सूर्य की असामान्यरूपेण गरम हाइड्रोजन से उत्सर्जित होता है, उच्चतर वायुमण्डल में पूर्णतः अवशोषित हो जाता है और अयनमण्डल के स्तर बनाने में सहायता देता है। चूँकि अयनमण्डल के ऊपर उपग्रह पृथ्वी के दिवाकालीन भाग पर रहते समय सूर्य की लगातार चौकसी करता रहता है, इसलिए यदि कोई सौर-उद्वेग हो, तो यह पारबैंगनी विकिरण में वृद्धि को तुरन्त माप सकता है। १९५७-५८ की अवधि उच्च सूर्य-कलंक-सक्रियता की अवधि है, इसलिए ऐसे उद्वेग होने की सम्भावनाएँ अधिक हैं। इस प्रकार उपग्रह सूर्य तथा अयनमण्डल से सम्बन्धित एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत करेंगे। सूक्ष्म उल्काओं की चोट की आवाज़ को उपग्रह में लगे माइक्रोफ़ोन दर्ज करेंगे। इससे अन्तर-ग्रहीय अन्तरिक्ष-धूल और अयनमण्डल की रात्रि-चमक-जैसी घटनाओं का समाधान भी मिल सकेगा।

तीसरे प्रयोग में ब्रह्माण्ड-किरणें मापी जाएँगी। ये किरणें सूर्य-कलंक सक्रियता की अवधि में अधिक होती हैं। उपग्रह के पृथ्वी के चक्कर लगाते समय यह इन किरणों की तीव्रता मापेगा और सूर्य के कारण तथा पृथ्वी

के चुम्बकत्व और अंतरिक्ष के कारण ब्रह्माण्ड-किरण वैभिन्य की जानकारी देगा। यह हमें अंतरिक्ष-यात्रा में ब्रह्माण्ड-किरणों के सम्भाव्य प्रभावों का पहला अनुमान देगा। जुपिटर-सी एक्सप्लोरर यही प्रयोग कर रहा है।

चौथा प्रयोग इन ऊँचाइयों पर 'वायु' के घनत्व तथा ताप को मापेगा। हम नहीं जानते कि २०० मील से ऊपर कितनी हवा है या वाह्य अंतरिक्ष में सूर्य के विकिरण की कितनी तीव्रता है। हम नहीं जानते कि सूर्य इस वायु को किस हद तक फैलाता है और दिन-रात में उसका घनत्व कितना वदलता है। अयनमण्डल की समझ के लिए और खूब ऊँची उड़ान करने वाले रॉकेटों, वायुयानों तथा अन्तरिक्ष-यानों के डिजाइन के लिए २०० मील से ज्यादा ऊँचाई पर वायु की मात्रा का ज्ञान अपरिहार्य है।

पहले अमरीकी तथा सोवियत उपग्रहों की तुलना

वजन (पौंड में)	आकार	आकृति	छोड़ने की दिशा और विषुववृत्त के साथ कोण
सोवियत स्पुतनिक प्रथम[1] १८३.४	२३ इंच	गोलाकार	उ० पू० पर ६५°
सोवियत स्पुतनिक द्वितीय ११२०·२९	लगभग १० फुट[2]	गोलाकार—वेलनाकार—मिला हुआ	उ० पू० पर ६३.८°
अमरीकी प्रथम परीक्षण लगभग ४	६·४ इंच	गोलाकार	द० पू० पर ३५°
अमरीकी वेंगार्ड २१·५	२० इंच	गोलाकार	द० पू० पर ३५°
अमरीकी जुपिटर—सी[3] ३०·८	८० इंच	वेलनाकार	द० पू० पर ३३·५८°

१. सोवियत परीक्षणों तथा असफलताओं की घोषणा नहीं की गई है।
२. साथ में तृतीय खण्डी रॉकेट भी है।
३. ३१ जनवरी, १९५८ को छोड़ा गया।

पहले अमरीकी उपग्रहों के ये बुनियादी प्रयोग हैं। सोवियत उपग्रह भी ऐसे ही प्रयोग करेंगे। यह आशा की जाती है कि कई अप्रत्याशित बातें सामने आएँगी।

उपग्रह इंजीनियरों को एक नयी समस्या ने उपग्रह छोड़े जाने के भी पहले से चिन्तित कर रखा है। योजना यह थी कि वायु का घनत्व उसके 'खिचाव' या उपग्रह की चाल में उसके कारण आई कमी से मापा जाए। 'वायु का खिचाव' पृथ्वी के वायुमण्डल के भीतर की सभी उड़ानों के लिए महत्त्वपूर्ण है। लेकिन वैज्ञानिकों का खयाल है कि २०० से २००० मील की ऊँचाइयों पर उपग्रह किसी ऐसी चीज़ में पड़ सकता है, जो इस 'वायु के खिचाव' को बढ़ा देगी। यह चीज 'विद्युत-चूम्बकीय खिचाव' है। यह समस्या इतनी नयी है कि इसे न जाँचा गया है, न पुस्तकों में इसकी चर्चा है।

प्रारम्भिक हिसाब के अनुसार उपग्रह को कोई साल-भर ऊपर रहना चाहिए था,—यद्यपि यह एक अनुमान-भर था। इसके बाद अमरीकी वायु-सेना ने नौ वर्ष का एक नया अनुमान लगाया—यह रॉकेटों द्वारा एकत्र ऊपरी वायु के घनत्व के बारे में जानकारी पर आधारित था। वास्तव में पहला सोवियत उपग्रह जल जाने से पहले लगभग तीन महीने ही ऊपर रहा। हो सकता है कि 'विद्युतचुम्बकीय खिचाव' उपग्रह के ऊपर रहने के समय को कम कर देता हो। लेकिन अन्तरिक्ष भी और अन्तरिक्ष-उड्डयन वैद्युतीय रहस्यों को अभी तक जाँचा नहीं गया है।

उपग्रह पर कार्य करने वाले वैज्ञानिकों का खयाल है कि हो सकता है कि अयनमण्डल से ऊपर की विरल, विद्युतावेशित गैस से गुजरते-गुजरते उपग्रह विद्युत-आवेश प्राप्त कर ले। सूर्य उपग्रह पर पारबगनी तथा एक्स-किरण विकिरण गेरता होगा। इससे भी गोले पर उसी तरह विद्युत-आवेश उत्पन्न हो सकता है, जिस तरह यह विकिरण अयनमण्डल को विद्युतावेशित कर देता है। विद्युतावेशित उपग्रह अपने इर्द-गिर्द आवेशित कणों का एक 'खोल' उत्पन्न कर सकता है, जिससे उसकी चाल कम हो सकती है। उप-ग्रह को यह किस हद तक प्रभावित करेगा, यह अभी ज्ञात नहीं है।

अमरीकी उपग्रह वेंगार्ड को उसके अपनी कक्षा में प्रवेश करने के पहले

घुमाव भी प्रदान किया जाएगा। पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के साथ 'बधने' के साथ यह छोटा-सा गोला भ्रमण बन्द कर देगा। उपग्रह पर अपना प्रभाव डालते-डालते इन दोनों विद्युतचुम्बकीय बलों—'खिचाव' और 'बंधन' से कई दिलचस्प सवालों के जवाब मिलने चाहिएँ। वे यह बता सकते हैं कि अन्तरिक्ष में कितना 'अयनीकरण' या विद्युतावेशण है। इससे हमें यह पता चल सकता है कि क्या पृथ्वी सूर्य के वायुमण्डल में गति कर रही है; क्या अयनमण्डल से आगे की गैस सूर्य के कोरोना का अंश है, जो उसकी तप्त सतह से ९,३०,००,००० मील दूर तक फैला हुआ है?

अन्य अंभूव-उपग्रह दूसरी तरह के प्रयोग करेंगे। वे सूर्य से उत्सर्जित तीव्र कणों तथा बहुत ऊँचाइयों पर चुम्बकीय क्षेत्र की सामर्थ्य की माप करेंगे। वे उन विद्युत-धारा-वलयों का पता चलाने की कोशिश करेंगे, जो अयनमण्डल में तथा उसके ऊपर पृथ्वी का चक्कर लगाते हैं। ये प्रयोग हमें मेरु प्रकाश तथा पृथ्वी के चुम्बकीय-वैभिन्य की ज्यादा अच्छी सूचनाएँ देंगे।

रूसियों ने घोषणा की है कि वे 'आइन्सटाइन के सापेक्षता-सिद्धांत के प्रभावों को जाँचने' के प्रयोग करने की कोशिश कर सकते हैं। यह इस बात को सिद्ध करने का प्रयास हो सकता है कि माप-उपकरण तेज चाल पर 'धीमे' हो जाते हैं।

उपग्रह के और भी महत्वपूर्ण उपयोग होंगे। यह हमें पृथ्वी के मौसम का पहला 'अन्तरिक्ष दृश्य' दे सकता है, जिससे हमें तूफानों के बनने और भंग होने का निरंतर चित्र मिल सकता है। यह मौसम-विज्ञान तथा मौसमी भविष्यवाणी में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकता है। इसका एक इंगित उस तूफान से मिला था, जिसने ५ अक्तूबर, १९५४ को टेक्साज पर चोट की थी। भूमि से ऐसा लगता था मानो आसमान पर बस गहरे बादल ही छाये हों, और उनसे होती वर्षा एक झड़ी-सी ही लगती थी। लेकिन न्यू मेक्सिको में मौसम से बहुत ऊँचाई पर रॉकेट द्वारा एक आकस्मिक संधान से ऐसे चित्र मिले, जिनमें सैकड़ों वर्गमील पर फैला एक विशाल तूफान था, जिससे टेक्साज के ऊपर का मौसम उत्पन्न हुआ।

उपग्रह ने इस तूफान का केरिबियन में उसके जन्म से लेकर उस द्वारा

टेक्साज पर तूफानी वर्षा तक की टोह रख ली होती। नहीं तो हुआ यही कि भूमि पर से मौसम-वैज्ञानिकों ने समझा कि तूफान समुद्र पर ही ख़तम हो गया है और वे टेक्साज के तूफान का समाधान न दे सके।

भविष्य में कैमरा से लैस और रेडियो द्वारा सूचना भेजने वाला मौसमी-उपग्रह पृथ्वी पर कहीं भी किसी तूफान के प्रारम्भ को या सम्भावित मौसमी रुझान को उसके भूमि पर से दृश्य होने के पहले ही देख सकेगा। वह पृथ्वी के मौसमी रूप को स्पष्ट कर सकता है। वह पृथ्वी के मेघावरण के विस्तार को और पृथ्वी से जाते विकिरण की मात्रा को माप सकता है। वह उद्वेग के दौरान सूर्य-विकरण में परिवर्तनों को इसके पहले ही माप सकता है कि वह अयनमण्डल तक पहुँचे और अवशोषित हो जाए। वह बतला सकेगा कि समुद्रों पर, जो पृथ्वी के ७० प्रतिशत भाग को ढके रहने पर भी मौसम-शास्त्रियों के लिए अज्ञात-से हैं, मौसम कैसा है।

तूफानों की उत्पत्ति तथा प्रगति का पता लगाने में उपग्रह विशेष मूल्यवान होंगे। शायद एक दिन तीन-चार मौसमी उपग्रह विभिन्न कक्षाओं पर पृथ्वी के चक्कर लगाते हों। इससे मौसमी भविष्यवाणी करने का काम अपेक्षतया सरल हो जाएगा।

एक नये ही प्रकार का मौसमी नकशा बन जाएगा—पृथ्वी का एक ताक्षणिक 'चित्र'। मेघ-रूपों का अध्ययन करने से मौसम-वैज्ञानिकों को संसार-व्यापी मौसमी नक्शा मिल जाएगा, जो आज के किसी भी मौसमी नक्शे से ज़्यादा जानकारी देने वाला होगा।

ये सब भविष्य की बातें हैं। अंभूव के दौरान उपग्रह कहीं साधारण मौसम-सम्बन्धी प्रयोग करेंगे। आशा की जाती है कि भविष्य में एक अमरीकी उपग्रह सूर्य से आते और पृथ्वी द्वारा अन्तरिक्ष को लौटाए विकिरण की मात्रा को मापेगा। ये आधारभूत माप हैं। अमरीकी उपग्रह का पथ चूंकि विषुववृत्त और समशीतोष्ण अंचल के कुछ भाग पर होकर जाएगा, इसलिए इसके उपकरण हमें इस बात का लगातार विवरण देते रहेंगे कि प्रत्येक प्रदेश—विषुववृत्त, समशीतोष्ण अंचल, समुद्र तथा पृथ्वी पर—में तथा मेघों द्वारा कितनी ऊर्जा अर्जित तथा खोई जाती है। मौसम-वैज्ञा-

निक इस जानकारी का नीचे की मौसमी परिस्थितियों से मिलान कर सकते हैं।

कुछ सर्वाधिक रोचक प्रयोग उपग्रहों में नहीं, भूमि पर होंगे। मिसाल के लिए उपग्रह के मार्ग का पता लगाकर वैज्ञानिक पृथ्वी की आकृति तथा आकार और वायु का घनत्व निर्धारित करने की चेष्टा करेंगे।

तथापि उपग्रह के मार्ग का पता लगाना एक विकट समस्या है। पूरे वैज्ञानिक मूल्य के लिए इसकी स्थिति की भविष्यवाणियाँ हर मिनट पर—दिन में १४४० बार करनी होंगी। ये तीव्र इलेक्ट्रानी संगणकों द्वारा की जाएँगी। पर इस पर भी ये पूर्णतः यथार्थ नहीं होंगी, क्योंकि उपग्रह ३०० मील प्रति मिनट की चाल से चलेगा।

उपग्रह का मार्ग पता लगाने का काम दो प्रकार के—रेडियो तथा दृश्य—प्रेक्षणों द्वारा किया जाएगा। अमरीका में उत्तर से दक्षिण तक रेडियो स्टेशनों का एक घेरा ऊपर से दिन-रात, अच्छे-बुरे मौसम में गुजरते उपग्रह के प्रेक्षण के लिए बुनियादी मार्ग-खोजी पंक्ति का काम करेगा। फोर्ट स्टुआर्ट (जार्जिया) से लेकर क्यूबा, इक्वेदोर, पेरू तथा चिली की उत्तर से दक्षिण तक की पंक्ति का संचालन सेना करेगी। नौ-सेना दो पूर्वी-पश्चिमी स्टेशनों को चलाएगी, एक मेरीलैंड में ब्लाज़म पाइंट पर और दूसरा केलिफ़ोर्निया में सानदिएगो में।

जब कोई अमरीकी उपग्रह इस रेडियो 'घेरे' पर से गुज़रेगा, तो जो सूचना टेप पर संग्रहीत हो चुकी है; वह भूमि पर से रेडियो-सन्देश द्वारा मुक्त करा दी जाएगी। उपग्रह रेडियो कोड द्वारा इन स्टेशनों को अपनी सूचना देकर और अधिक सूचना एकत्र करने के लिए अपनी अगली कक्षा पर चला जाएगा।

पृथ्वी-भर पर फैला इन केन्द्रों का एक और जाल तेज गति वाले दूर-दर्शी कैमराओं की सहायता से अमरीकी उपग्रह का दृश्य अनुगमन करेगा। ये कैमरा अमरीका, हवाई, अर्जेनटाइना, पेरू, नीदरलैण्ड्स, पश्चिमी

द्वीपसमूह (वेस्ट इंडीज़), दक्षिण अफरीका, स्पेन, ईरान, भार आस्ट्रेलिया तथा जापान में स्थित होंगे और पूर्व से पश्चिम को जाने वा एक शृंखला बनाएँगे। देखकर उपग्रहों का पता लगाना, रेडियो-संके की अपेक्षा कहीं अधिक बारीक है, लेकिन यह अधिक प्रभावी ढंग से कु समयों पर ही किया जा सकता है—जब बादल न हों तथा भोर अ गोधूलि के समय। इसके अलावा उपग्रह १० से २० मिनट के भी आसमान को पार कर जाएगा।

फिर भी वैज्ञानिक उपग्रह को देखकर उसकी कक्षा में न्यून वैभिन्यों के बारे में भी कुछ जानने की, और इस प्रकार पतली वायु घनत्व, विद्युत चुम्बकीय बलों और गुरुत्वाकर्षण के बारे में सूचना ए करने की आशा करते हैं।

कैमरों से मार्ग-निर्धारण करने का जाल छोटा ही होगा, क्योंकि के १२ अमरीकी ट्रैकिंग कैमरा ही बनाये गए हैं। लेकिन हाईस्कूलों त कॉलेजों के विद्यार्थियों सहित सैकड़ों शौकिया वैज्ञानिक उपग्रह के म खोजने में सहायता देंगे। ये टोलियों में काम करेंगे। हर प्रेक्षक को आ मान के एक टुकड़े पर आँख रखनी होगी। और अगर उपग्रह उ दूरवीक्षण यन्त्र से गुजरता है, तो वह उसकी स्थिति तथा समय को लि लेगा। अन्य शौकिया वैज्ञानिक उपग्रह का मार्ग-निर्धारण अमरीकी सेना द्वारा उपग्रह के नन्हे-से प्रेषित संकेतों को ग्रहण करने के लि निर्मित रेडियो संग्राहियों द्वारा करेंगे।

इस मार्ग-निर्धारण सूचना का उपयोग दो प्रयोजनों के लिए किया जाएगा—वायु का खिंचाव मापना और पृथ्वी को मापना। संसार-भर में स्थित विशेष मार्ग-निर्धारण कैमरा उपग्रह के ताक्षणिक चित्र लेंगे और समय दर्ज कर लेंगे। एक विशिष्ट समय हर प्रेक्षक के साथ उपग्रह का जो कोण है, वह आसानी से जाना जा सकता है और इससे उसकी ऊँचाई का पता चल जाता है। इस पद्धति से ३० से ५० फुट के भीतर भी गलती के साथ यह बताया जा सकता है कि प्रेक्षक एक-दूसरे से कितनी हैं। ट्रैकिंग कैमराओं से मिले दर्जन-भर ऐसे 'स्थिर चित्र' हमें पृथ्वी

की वास्तविक आकृति जानने में सहायता देंगे। फिर ज्योतिर्विदों द्वारा प्रयुक्त 'चन्द्र-प्रणाली' तथा 'उपग्रह-प्रणाली' को एक-दूसरे के साथ जाँचा जा सकता है और इससे पृथ्वी के आकार तथा आकृति की पुष्टि हो जाएगी।

पिछले कई वर्षों से अमरीकी सैनिक इंजीनियर २० दक्षिणी अमरीकी देशों की दक्षिणी गोलार्ध के अपने-अपने भागों के मानचित्रांकन में सहायता कर रहे हैं। अमरीकियों के इस मानचित्रांकन में ट्रैकिंग-स्टेशनों की शृंखला सहायक होगी, क्योंकि उपग्रह का स्थिति-ज्ञान प्राप्त करके इंजीनियर इसका हिसाब कर सकेंगे कि उनमें आपसी फासला कितना है।

उपग्रह के मार्ग-निर्धारण द्वारा प्राप्त दूरियाँ घोषित कर दी जाएँगी। काफी समय से यह बात मालूम है कि संसार के नकशों में कई-कई मील की त्रुटि है, फलस्वरूप मानचित्र-निर्माता पृथ्वी के चेहरे का अधिक यथार्थता के साथ मानचित्र बनाने का यत्न करते रहे हैं। १९५७ में अमरीकी वायुसेना ने घोषणा की कि उसने अन्ततः यूरोप और उत्तर-अमरीका के बीच का फासला माप लिया है। वायुसेना इस जानकारी को गुप्त रख रही है, क्योंकि इसका ज्ञान अमरीका की ओर लक्षित अन्तर महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र की अचूकता को बढ़ा देगा।

तथापि यह रहस्य अस्थायी ही है। जब और अमरीकी तथा सोवियत उपग्रह पृथ्वी का चक्कर काटने लगेंगे, तो यह दूरी ज्ञात हो जाएगी।

उपग्रहों का बारीकी से मार्ग-निर्धारण करने से वैज्ञानिकों को पृथ्वी की बनावट तथा आकृति के बारे में और तथ्य प्राप्त होंगे। पृथ्वी का चक्कर काटते हुए उपग्रह पर गुरुत्व में वैभिन्य का प्रभाव पड़ता है। पृथ्वी अपने भ्रमण के अपकेन्द्री बल के कारण विषुववृत्त पर कुछ उभरी हुई है। वस्तुतः विषुववृत्त पर पृथ्वी ध्रुवों की अपेक्षा १३ मील अधिक चौड़ी है, और यह अतिरिक्त संहति उपग्रह को विषुववृत्तीय प्रदेशों से गुज़रते समय हर बार आकर्षित करेगा। उपग्रह कुछ इस तरह से झुक जाएगा, मानो वह किसी 'गुरुत्व की घाटी' में हो और थोड़ा-सा पश्चिम की ओर खिंच जाएगा। पर्वतों, द्वीपीय चापों, भूमि तथा समुद्र पर के जैसे सूक्ष्म गुरुत्व-

वैभिन्य भी उपग्रह पर प्रभाव डाल सकते हैं।

भू-भौतिकीविदों के लिए वैज्ञानिक दिलचस्पी के होने के अलावा ये गुरुत्व-प्रभाव अन्तरमहाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र विशेषज्ञों के लिए व्यावहारिक मूल्य के भी हो सकते हैं।

यदि वैज्ञानिक उपग्रह को प्रभावित करने वाले सभी बलों—'वायु का खिचाव', 'विद्युत् चुम्बकीय खिचाव', गुरुत्व-वैभिन्य के कारणों और मात्रा का पता लगा सकें, तो वे पृथ्वी के बारे में कई चीजें जान सकते हैं। वे इन बातों को पहले-पहल छोड़े गए कुछ उपग्रहों से जान पाने की आशा करते हैं, किन्तु उपग्रह की कक्षा में सन्निहित समस्त जटिलताओं को हल करने में अभी उन्हें कुछ समय लग सकता है।

अंभूव के उपग्रह अधिक बड़े और अधिक जटिल उपग्रहों की दिशा में प्रारम्भिक कदम ही हैं। सोवियत तथा अमरीकी वैज्ञानिकों ने ऐसे उपग्रह बनाने की योजनाओं की घोषणा की है, जो पृथ्वी पर लौट आएगा और जलेगा नहीं। अमरीकी नौसेना तो एक वायुयान-निर्माता को ऐसा प्रायोगिक उपग्रह बनाने का ठेका भी दे चुकी है, जो इतना बड़ा होगा कि कैमरे ले जा सके। यह उपग्रह पृथ्वी के मानचित्रांकन और मौसमी भविष्यवाणी करने में सहायता देगा। अमरीकी वायुसेना ने एक कम्पनी को उपग्रह को 'शक्ति प्रदान करने' की सम्भावना का पता लगाने का ठेका दिया है। एक बार वाह्य अन्तरिक्ष में पहुँचने पर इसे उसी प्रकार के विद्युतावेशित कणों द्वारा शक्ति प्रदान की जाएगी, जैसे सूर्य उत्सर्जित करता है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बहुत दूर के प्रदेशों में यह उपग्रह को आगे धकेलने के लिए राकेट शक्ति की जगह ले लेगा। सोवियत संघ तथा अमरीका दोनों चन्द्रमा पर रॉकेट भेजने की योजना बना रहे हैं।

वाह्य-अन्तरिक्ष में रहने से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में और प्रयोग किये जा रहे हैं। मोंतगोल्फ़िएर बन्धुओं ने एक मुरगी, एक भेड़ तथा एक बत्तख को ८,००० फुट की ऊँचाई तक भेजा था, मगर अमरीकी वायुसेना रॉकेटों में बन्दरों तथा चूहों को १५० मील की ऊँचाई तक भेज चुकी है और प्रयोगशाला में इससे भी अधिक अन्तरिक्ष-परिस्थितियों का अनुकरण

करने के प्रयास में मनुष्यों के साथ प्रयोग किये जा रहे हैं। सोवियत संघ भी यही कर रहा है। ३ नवम्बर, १९५७ को द्वितीय सोवियत उपग्रह एक कुत्ते को उठान, झटका, सीमित स्थान में निवास और ब्रह्माण्ड-किरण-विकिरण के प्रति उसकी प्रतिक्रियाएँ जाँचने के लिए लेकर गया था। इन प्रयोगों द्वारा विज्ञान मानव की अन्तरिक्ष-यात्रा की परिस्थियों में सुरक्षा की स्थापना कर रहा है।

अन्तरिक्ष-यात्रा की सम्भावनाएँ इस बात पर निर्भर करती हैं कि अंभूव-उपग्रहों से और भी अधिक ऊँचाइयों पर की क्या जानकारी मिलती है। मानव-जीवन के अर्थों में ताप-नियन्त्रण की समस्या सबसे महत्त्वपूर्ण समस्याओं में है। निम्न वायुमंडल में वायु-घर्षण इतनी गरमी उत्पन्न कर देता है कि उसमें अधिकांश धातुएँ पिघल सकती हैं। किन्तु अधिक ऊँचाइयों पर अंभूव-उपग्रह की 'त्वचा' का ताप मिनटों में पृथ्वी की धुपहली सतह पर ४०° सें० से अँधियाली सतह पर—७५° सें० तक बदलता रहेगा। वाह्य-अन्तरिक्ष—मिसाल के लिए चाँद—की यात्रा के समय अन्तरिक्ष-यान का सूर्योन्मुखी भाग पानी के वाष्पांक से अधिक गरम हो जाएगा, जबकि दूसरी ओर का भाग हिमांक से कहीं अधिक नीचे ताप पर होगा। ताप का समन्वय करने के लिए अन्तरिक्ष-यान सम्भवतः घूमेंगे और अपकेन्द्री बल द्वारा गुरुत्व का प्रभाव उत्पन्न करेंगे।

पृथ्वी के अध्ययन के लिए और अन्तरिक्ष-परिस्थितियों के अध्ययन के लिए उपग्रह एक दुहरा औज़ार है। दोनों ही क्षेत्रों में वह मनुष्य के उस विश्व के रूपों को, जिसमें वह रहता है, जानने के प्रयासों में एक नये युग का सूत्रपात कर रहा है।

उपसंहार

जनवरी, १९५८ के अन्त और फरवरी के आरम्भ के निकट कई दिनों तक अमरीकी नौसेना के वेंगार्ड परीक्षणात्मक उपग्रह और सेना के जुपीटर उपग्रह का छोड़ा जाना हवा की गति की अनियमितताओं के कारण स्थगित होता रहा। असामान्य तूफानी अग्रभाग और उत्तर से उतरती शीत-तरंग ने फ्लोरिडा में वर्षा और शीतल पवनों का उत्पात ला दिया था। शीत अग्रभाग ने उच्च समशीतोष्ण जेट (आकृति ७) को दक्षिण की ओर केप केनेवेरल के उपग्रह छोड़ने के स्थान पर धकेल दिया था।

२६ जनवरी को सतही पवनों, वर्षा, अल्पदृश्यता तथा अन्य प्राविधिक कठिनाइयों ने, जो अंशतः मौसम से उत्पन्न हुई थीं, नौसेना के उपग्रह को छोड़ने के दूसरे प्रयास को रोक दिया। वर्षा ने विद्युत सम्पर्क खराब कर दिया था और प्रयास स्थगित करना पड़ा। सेना का जुपीटर-सी रॉकेट-कार्यक्रम में शामिल किया गया और इसके लिए २९ जनवरी निश्चित की गई। मौसम ने फिर दखल दिया। ४०,००० फुट की ऊँचाई पर १४० मील प्रति घण्टे की चाल से जेट पवन चल रही थी। ये पवनें रॉकेट को उसके यथातथ्य पथ से भ्रष्ट कर सकती थीं। तेज़ पवन ३० जनवरी को भी चलती रहीं और कार्यक्रम फिर स्थगित करना पड़ा। ३१ जनवरी को दोपहर १·४० पर भी पवन की चाल १०० मील प्रति घण्टा ही थी, पर वह कम होती नजर आती थी और इसलिए जुपीटर-सी के छोड़ने के लिए गणन आरम्भ हो गया। उसे नौ घण्टे बाद, १०·४८ पर छोड़ा गया।

क्रमशः तेज़ी पकड़ता जुपीटर-सी जैसे ही उठा, नियन्त्रण केन्द्र से उसका रेडियो-संचार भंग हो गया। सैनिक प्रक्षेपास्त्र अभिकरण के प्रमुख तथा उपग्रह छोडने के कार्यक्रम के कार्याधिकारी मेजर जनरल जॉन वी० मेडेरिस इलेक्ट्रानी ट्रैकिंग-प्रणाली पर रॉकेट के उठने के पथ को अंकित होता देख रहे थे। अचानक उसके चढ़ाव को अंकित करने वाला कलम बाईं ओर उछल गया—रॉकेट जेट स्ट्रीम में फँस गया था। इसके बाद कलम फिर वापस उछल आया। रॉकेट उससे गुजर गया था और कक्षा प्राप्त करने जा रहा था।

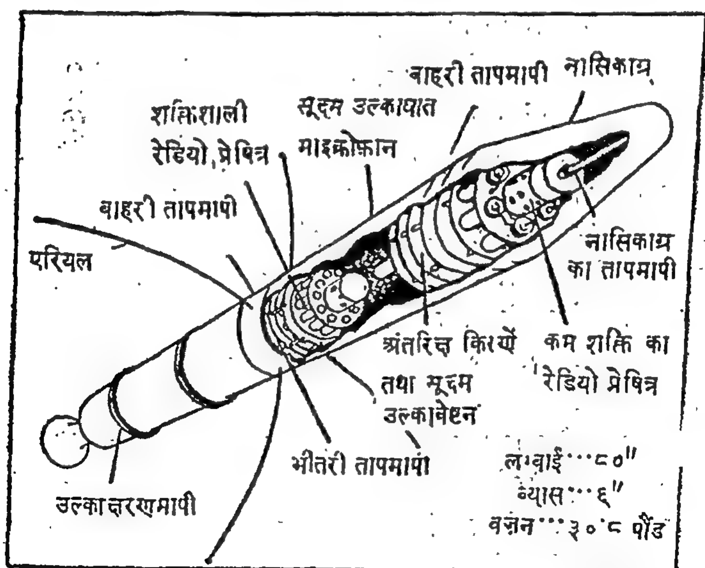
एक्सप्लोरर प्रथम के छोड़े जाने के तीन दिन बाद तक केप केनेवेरल पर खूब ऊँची पूर्व की ओर बहती जेट स्ट्रीम और २० मील प्रति घण्टा से इससे भी ज्यादा चाल की सतही पवनों ने वेंगार्ड उपग्रह के नभावतरण के दूसरे प्रयास को स्थगित किए रखवाया। जुपीटर-सी से हल्का तथा अधिक जटिल त्रिखण्डी वेंगार्ड रॉकेट २०-२५ मील प्रति घण्टा की सतही पवनों और १२५ मील प्रति घण्टा से अधिक चाल की जेट पवनों के विरुद्ध अपना नभावतरण मञ्च न छोड़ सका। जुपीटर-सी यदि ७५ प्रतिशत तक भी सही चला जाता, तो वह छोड़ा जा सकता था; लेकिन वेंगार्ड को, जिसे प्रयोजनार्थ जटिल और 'अग्रिम' डिजाइन के अनुसार बनाया गया है, ९० प्रतिशत कार्यदक्षता प्राप्त करनी होती है। जब ५ फरवरी को सवेरे पवन शान्त हो गई, तो द्वितीय वेंगार्ड छोड़ा गया। एक साधारण प्राविधिक दोष के कारण रॉकेट २०,००० फुट की ऊँचाई पर टूट गया और वह हवा में फोड़ दिया गया।

भू-उपग्रहों के छोड़ने के प्रथम प्रयासों से सम्बन्धित भावनाओं के दृष्टिगत इस बात पर ज़ोर देना ठीक रहेगा कि छोड़ने की प्राविधिक समस्याओं का बुनियादी विज्ञान के प्रश्नों से कोई सम्बन्ध नहीं है। रूसियों को तथा अमरीकी सशस्त्र सेवाओं की सभी शाखाओं को इसमें सन्निहित बुनियादी विज्ञान की समान समझ है। अन्तर अनुभव का और दोनों के प्रयास के परिमाण का है।

इसी बीच अंभूव के तेरहों कार्यक्रमों में प्रगति की जा रही है। उदा

हरण के लिए दक्षिण गोलार्ध में एक ध्रुवीय अग्रभाग वाली जेट स्ट्रीम मिली है। उत्तरी गोलार्धकी भाँति यह पूर्व की ओर ही जाती है, पर ज़्यादा ऊँचाई पर। एक अधिक दक्षिणवर्ती जेट स्ट्रीम द० ध्रुव महाद्वीप के ही ऊपर जाती मिली, पर इसका असामान्य रूप यह है कि यह मौसमों के साथ अपना रुख उलट देती है।

द० ध्रुव प्रदेश समुद्रों, जलवायु तथा मौसम और अयनमण्डल की ठोस जानकारी धीरे-धीरे हासिल की जा रही है। उपग्रह तथा रॉकेट-प्रयोग, रेडियो-ज्योतिर्विज्ञान, अन्तरिक्ष-किरण-अध्ययन, सूर्य-उत्सर्जनों का विश्लेषण तथा अन्तरिक्ष के विद्युत-चुम्बकीय रहस्यों को भेदने वाले प्रयोग इतनी तेजी के साथ चल रहे हैं कि इन क्षेत्रों के मुख्य विकास वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होने से पहले अखबारों में छप जाते हैं। पृथ्वी



आकृति १४—प्रथम अमरीकी उपग्रह एक्सप्लोरर का रेखाचित्र। उपकरणिका अवेष्टन के अलावा इसमें अंतिम रॉकेट भी सम्मिलित है।

सिंहावलोकन, १९६०

ऐतिहासिक अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष (१९५७-५८) तथा अन्तरराष्ट्रीय भू-भौतिकी सहकारिता (१९५९) की समाप्ति पर संसार के वैज्ञानिक लगभग वही सवाल पूछ रहे थे, जो वे पहले पूछा करते थे।

भू-भौतिक अनुसन्धान के क़दम-ब-कदम तरीके एक मिसाल से साफ हो जाएँगे। सूर्य-पृथ्वी-सम्बन्धों के क्षेत्र में १२ अक्तूबर, १९५८ के सूर्य-ग्रहण के समय प्रशान्त महासागर पर से कई अमरीकी रॉकेट अयनमण्डल में दागे गए। इनके नतीजे पुराने अमरीकी राकूतों की खोजों के साथ शामिल कर दिये गए। १४०-१५० मील की ऊँचाइयों पर एक के बाद एक करके छोड़े गए पाँच रॉकेटों ने पाया कि जैसे-जैसे सूर्य का चेहरा क्रमशः चन्द्रमा से ढँकता जाता है, पारबैंगनी विकिरण कम होता जाता है। लेकिन एक्स-किरण-तीव्रता नहीं कम होती। स्पष्ट है कि एक्स-किरणें सूर्य के चेहरे से नहीं, वरन् उसे घेरने वाली तप्त गैस के कोरोना से आ रही थीं। पारबैंगनी विकिरण सूर्य के चेहरे से आ रहा था। तथापि कई प्रश्न बिना उत्तर के ही रह गए। कोरोना में एक्स-किरणें कैसे बनती हैं? और जब पृथ्वी के ऊपरी वायुमण्डल में एक्स-किरणों तथा पारबैंगनी विकिरण का अवशोषण होता है, तो वहाँ ठीक क्या-क्या होता है?

जो हज़ारों सवाल अंभूव की ओर ले गए थे, और अंभूव-अंभूस के दौरान जो लाखों माप तथा प्रयोग किये गए, उनसे केवल कुछ ही उत्तर मिले थे।

इन बुनियादी सवालों के—मिसाल के तौर पर अभी भी कोई निश्चित

उत्तर न मिल सके :

१. सूर्य-पृथ्वी-सम्बन्धों के स्पष्ट रूप क्या हैं ?
२. मौसम के सब कारण क्या हैं, और वायु के चक्रण के रूप क्या हैं ?
३. महासागरीय जलों के भीतर क्या रूप हैं ?
४. क्या पृथ्वी गरम हो रही है ?
५. क्या द० ध्रुव प्रदेश एक महाद्वीप है ?
६. क्या महाद्वीप सरक रहे हैं ?
७. पृथ्वी के चुम्बकत्व के सही कारण क्या हैं ?
८. पर्वत और पृथ्वी की पपड़ी कैसे बनी है ?
९. ब्रह्माण्ड-किरणें कहाँ से, क्यों और किन परिणामों को लिए पृथ्वी की तरफ आती हैं ?

हर मामले में कुछ उत्तर प्राप्त कर लिये गए थे। सभी खोजें चित्ताकर्षक थीं, लेकिन साथ ही वे अपूर्ण भी थीं और हर खोज से नये सवाल पैदा हो गए थे।

फलस्वरूप अंभूव तथा अंभूस की प्रत्येक शाखा—अन्तरिक्ष-अनुसन्धान, द० ध्रुव प्रदेश-अनुसन्धान, सागर-विज्ञान, सौर-पर्यवेक्षण, भू-चुम्बकत्व, मौसम-विज्ञान—में अन्तरराष्ट्रीय सहकारिता को जारी रखा या बढ़ा दिया गया है।

हिम

हिमनद विज्ञान के क्षेत्र में अंभूव ने सिद्ध किया था कि अब तक जितना माना जाता था, पृथ्वी पर उससे ४० प्रतिशत अधिक हिम है। अगर यह विशाल हिमराशि पिघल जाए, तो हमारे महाद्वीपों के विशाल क्षेत्र जलप्लावित हो जाएँगे। इसके अलावा अंभूव के वैज्ञानिकों को इस बात के प्रमाण मिले हैं कि गत १००० वर्षों में द० ध्रुव प्रदेश और स्वयं पृथ्वी भी

गरम होती रही है। इंगलैण्ड के दक्षिण के आसपास का समुद्र गत १०० वर्षों में ६ इंच चढ़ गया है! इस पर भी इसका कोई निश्चय नहीं है कि आज क्या हो रहा है। कुछ जगहें ऐसी हैं, जहाँ गरमाने की प्रवृत्ति रुक गई है और वैज्ञानिक इसमें सन्निहित पहलू अभी भी नहीं जानते।

चित्र जटिल है। उदाहरणार्थ यह पाया गया कि द० ध्रुव प्रदेश में लिटिल अमरीका में औसत ताप १९११ से ५° सें० बढ़ गया है। तथापि यह भी पाया गया कि द० ध्रुव प्रदेश में आश्चर्यजनक रूप से थोड़ा हिमपात होता है और बहुत ही कम पिघलता है। क्या इस ५° सें० की वृद्धि से कुछ फर्क पड़ा है?

१ दिसम्बर, १९५९ को बारह राष्ट्रों (अर्जेनटाइना, आस्ट्रेलिया, बेलजियम, चिली, फ्रान्स, जापान, न्यूज़ीलैण्ड, नार्वे, दक्षिण अफरीकी संघ, सोवियत संघ, ग्रेट ब्रिटेन तथा अमरीका) ने राजनैतिक तथा सैन्य विचारों को एक तरफ कर द० ध्रुव प्रदेश को, "यह मानते हुए कि यह सारी मानव-जाति के हित में है कि इसका सदा-सर्वथा केवल शान्तिपूर्ण प्रयोजनों के लिए ही उपयोग किया जाए···" एक वैज्ञानिक रक्षित क्षेत्र बनाने का फैसला किया।

यह एक दिलचस्प बात है कि द० ध्रुव प्रदेश में इस वैज्ञानिक सहयोग के बावजूद वैज्ञानिक अनुसंधान तथा विचारण के राष्ट्रीय प्रयासों में कुछ मामूली भेद है। जलवायु-विज्ञान तथा हिम के बढ़ाने-घटाने के सामान्य प्रश्न पर सोवियत संघ पश्चिम की अपेक्षा सूर्य-कलंकों के दीर्घ तथा अल्पकालीन प्रभावों और सौर-क्रियाशीलता की लयों की ओर अधिक ध्यान दे रहा है। सोवियत संघ की जल-मौसम वैज्ञानिक संस्था तथा उ० ध्रुव व द० ध्रुव प्रदेश संस्था के वैज्ञानिक दावा करते हैं कि उन्होंने सौर-क्रियाशीलता की दीर्घकालीन लयों तथा उ० ध्रुव व द० ध्रुव प्रदेशों की जलवायु में परिवर्तनों और मौसमी रूपों में स्पष्ट पारस्परिक सम्बन्ध पाया है।

वायु

मौसम-विज्ञान में अनेक नये तथ्यों की खोज हुई।

यह पाया गया कि उ० ध्रुव प्रदेश में हिम का गलना धूमिल और मेघाच्छन्न आकाश के नीचे तेज धूप की अपेक्षा अधिक होता है। यह मेघाच्छन्न आकाश द्वारा अवशोषित तथा रोके हुए दीर्घ-तरंग उष्मा विकिरण के कारण था। साफ धूप में सूर्य की काफी उष्मा परावर्तन तथा प्रतिच्छालन में नष्ट हो जाती थी या अन्तरिक्ष में विकरित हो जाती थी। यह भी पाया गया कि यद्यपि उ० ध्रुव प्रदेश का हिम द० ध्रुव प्रदेश के हिम की अपेक्षा कहीं तेजी से घट रहा है, उ० ध्रुव प्रदेश में हिमपात द० ध्रुव प्रदेश से दो गुना है।

दो नयी जेट स्ट्रीम खोजी गईं—एक द० ध्रुव प्रदेश पर और एक उ० ध्रुव प्रदेश पर। इन 'ध्रुवीय रात्रि जेटों' के साथ एक विचित्र बात यह थी कि वे मौसम के साथ अपने बहाव का रुख बदल देती थीं।

रूसियों ने अगस्त, १९५८ में वोस्तोक एंटार्कटिक स्टेशन पर—१२५·३° का ताप दर्ज किया। यह निम्नताप का नया रेकार्ड है।

ऊँची, उच्चतर वायु का जो अजीब 'विस्फोटक' गरमाना पहले-पहल १९५२ में बर्लिन के ऊपर देखा गया था, १८ फरवरी, १९५७ को उ० ध्रुव प्रदेश पर फिर देखने में आया। लेकिन यह नहीं मालूम कि यह सूर्य से उत्सर्जित कणों या विकिरण की प्रत्यक्ष क्रिया के फलस्वरूप था या सूर्य से अधिक परोक्षरूपेण सम्बद्ध उच्चतर वायु पवनों की गति के कारण।

द० ध्रुव प्रदेश में पवन तथा वायु की गतियों का सामान्य रूप उभरने लगा है। कभी-कभी समुद्रों की गरम वायु का महाद्वीप पर हमला होता है, तो कभी महाद्वीप की ठण्डी हवा फूट पड़ती है और समुद्र की ओर चल देती है। वायु के इन आक्रमणों से तेज तूफान पैदा होते हैं। फिर भी यह बड़ा सवाल बना ही रहता है कि शीतल द० ध्रुव प्रदेश दक्षिण गोलार्ध के मौसम को किस हद तक प्रभावित करता है?

पृथ्वी के मौसम-स्तरों के बहुत ऊपर वायुमण्डल एक नियमित 'श्वसन-प्रक्रिया' से गुजरता पाया गया, जिसमें वह सूर्य के दिवा तथा रात्रिकालीन प्रभाव से फैलता और सिकुड़ता है। क्या इसका मौसम पर कोई असर पड़ता है?

७ अगस्त, १९५९ को अमरीका द्वारा एक्सप्लोरर षष्ट के नभावतरण के साथ अन्तरिक्ष-युगीन मौसम-विज्ञान ने एक पग और आगे बढ़ाया। इस उपग्रह में पृथ्वी के मेघावरण को देखने के लिए एक टेलीविज़न नेत्र था।

तथापि इन सब नई प्रविधियों और खोजों के बावजूद पृथ्वी के अविश्वसनीयरूपेण जटिल मौसम के सारे रूप और कारण अभी तक नहीं मालूम हो सके हैं।

जल

समुद्र आज भी उतने ही रहस्यमय हैं, जितने कि वे अंभूव के आरम्भ के समय थे।

हम अटलांटिक में १९५७ में गल्फस्ट्रीम के नीचे खोजी निम्नधारा के साथ प्रशांत महासागर में स्क्रिप्स के सागर-वैज्ञानिकों द्वारा खोजी गई दो गहन तल धाराओं को और शामिल कर सकते हैं। इनमें से एक विषुव-वृत्तीय धारा के नीचे और विपरीत दिशा में बहती है। दूसरी धारा प्रशांत-सागरीय विषुववृत्त के कोई तीन सौ मील उत्तर में सतह के नीचे बहती है। ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी सागर-वैज्ञानिकों ने भूमध्य सागर तथा अटलांटिक महासागर के बीच गहन तल जल के बहाव का अध्ययन किया। फिर भी अटलांटिक या प्रशांत में गहन जलों की गति की अभी तक कोई साफ तसवीर नहीं मिल पाई है।

१९५७ में सोवियत वैज्ञानिकों ने पश्चिमी प्रशांत में मेरिआनास खंदक में उस विन्दु का पता चलाया, जो सभी महासागरों में गहनतम हो सकता है। सोवियत अनुसंधान-पोत वित्याज़ पर सवार सोवियत महासागर-विदों को ६·८ मील की गहराई में आनाय (ट्रौल) डालने और उसे वापस खींचने में बारह घण्टे लगे। सोवियत महासागरविदों का दावा है कि इन अँधियारी, उच्चदाबी गहराइयों तक में न्यूनतम जीवन के कुछ स्वरूपों का अस्तित्व है।

सागरतल के भौगोलिक अन्वेषण से उत्तरी प्रशान्त को दो भागों में बाँटने वाली एक विशाल रिज (पहाड़ी दीवार) का पता चला। यह एल्यु-

शियन द्वीप-समूह से चलकर हवाई के पास से जाती है। इसी तरह की एक उत्तर-दक्षिणवर्ती पहाड़ी अटलांटिक को विभाजित करती है। द० ध्रुव प्रदेश के आस-पास के सागर-तल पर और दक्षिण अफ्रीका तक फैले हुए बड़े ज्वालामुखीय पर्वत पाये गए। उ० ध्रुव प्रदेश के तल पर भी नयी पर्वत-श्रृंखलाएँ मिलीं।

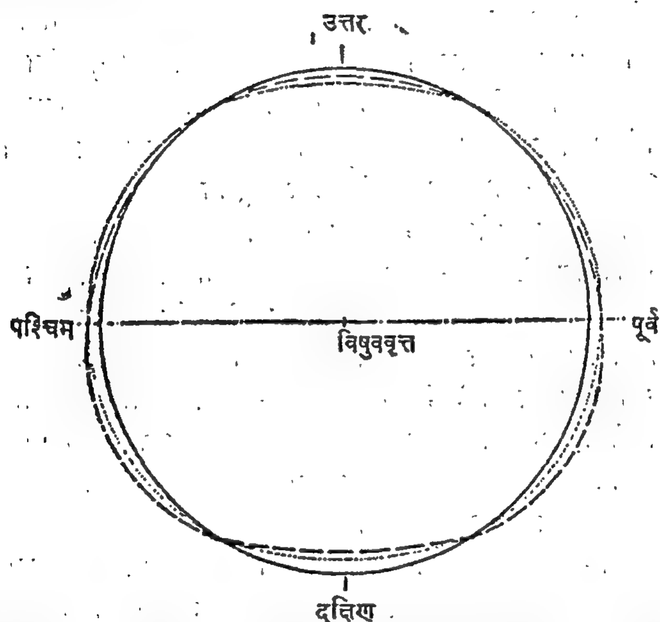
सागरतल की खोजों में सबसे चकित करने वाली खोज प्रशान्त में एक विस्तृत क्षेत्र का मिलना था, जहाँ मैंगनीज़, कोबाल्ट, लौह तथा ताम्रयुक्त कीचड़ थी। यह कीचड़ कम-से-कम पाँच लाख डालर प्रति वर्गमील मूल्य की है। हो सकता है कि ये 'अयस्क' सागरीय जीवन की प्राणिशास्त्रिक क्रियाओं के फलस्वरूप वहाँ जमा हुए हों। इसकी अन्तरिक्षीय स्रोतों से निकिल के जमा होने के एक पुराने सिद्धान्त से तुलना कीजिए।

अंभूव तथा अंभूस के तरंग-अध्ययनों ने वायुमंडलीय दाबों और पवनों के सागर की सतह के साथ एक जटिल 'संयोजन' की ओर इंगित किया है। आगत तरंगों को मापकर तूफानों की गति की भविष्यवाणी करने के सिद्धान्त का विस्तार हुआ है। त्सुनामी तरंगों के क्षेत्र में रूसियों ने कामचत्का तथा क्यूराइल द्वीपों में प्रशान्त तट पर अपनी आगाही प्रणाली की स्थापना की है। सोवियत आगाही प्रणाली भूकंप की तथा ध्वनि की है और यह सागर तल के कम्पित होने या ज्वालामुखीय विस्फोट होने पर बता देगी कि त्सुनामियों के आने की आशंका है।

जल की गतियों का उद्घाटित होना अभी शुरू ही हुआ है। सागरों के जटिल ताप तथा रासायनिक परिवर्तनों को समझना और भी कठिन है। मिसाल के तौर पर सागर-स्तर तथा 'राजमार्ग' अभी भी एक रहस्य हैं। १९५७ में एक रूसी जहाज ने हिन्द महासागर में लगभग ६०० मील लम्बे और १५० मील चौड़े क्षेत्र पर लाखों टन मरी हुई मछलियों के तिरते होने की सूचना दी। मरी हुई मछलियों की संख्या संसार में वाणिज्यिक प्रयोजनों से पकड़ी जाने वाली मछलियों की वार्षिक संख्या के बराबर हो सकती थी। यह विश्वास किया जाता है कि ये मछलियाँ किसी कारण—ताप में परिवर्तन ?—पानी के ऐसे स्तर में जा फँसी, जिसमें ऑक्सीजन

की न्यूनता थी। तब से ऐसे कई विवरण मिले हैं।

संसार के महासागरविदों ने हिन्द महासागर के अध्ययन के लिए, जो संसार के सर्वाधिक अज्ञात सागरों में एक है, १९६१-६२ में एक लघु 'अंभूव' का आयोजन किया है। इसी बीच अंभूव के उपक्रम से आरम्भ महासागर वैज्ञानिक अनुसंधान को अन्य महासागरों में तेजी के साथ जारी रखा जा रहा है।



आकृति १५—पृथ्वी की आकृति की विभिन्न धारणाएं। पूरी रेखा एक आदर्श गोला है; बिन्दुदार रेखा ध्रुवों पर चपटी और विषुववृत्त पर फूली पृथ्वी के परम्परागत विचार को दर्शाती है; डैशदार रेखा वेंगार्ड प्रथम की कक्षा से आकलित नासपाती से मिलती आकृति को प्रकट करती है। बिन्दुदार तथा डैशदार दोनों ही रेखाएं आदर्श गोले से विभिन्नताओं को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर दिखाती हैं। नयी खोजों पर जोर देने के लिए डैशदार रेखा को खासकर ज्यादा बढ़ाया-चढ़ाया गया है।

ठोस पृथ्वी

ठोस पृथ्वी के बारे में सबसे महत्त्वपूर्ण खोज कि पृथ्वी नासपाती की शक्ल की है, एक अमरीकी उपलब्धि है। यह प्रथम वेंगार्ड उपग्रह की कक्षाओं के संगठन पर आधारित है। अमरीकी राष्ट्रीय उड्डयन तथा अन्तरिक्ष प्रशासन के सैद्धान्तिक विभाग के प्रमुख डॉक्टर रॉबर्ट जैस्ट्रॉ कहते हैं, "यह खोज पृथ्वी की भीतरी बनावट के बारे में हमारे विचारों में बड़े परिवर्तन ला सकती है।"

वेंगार्ड की कक्षा की जाँच से पता चला कि उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्धों पर उसके आचरण में कुछ अन्तर है। इन अन्तरों ने इंगित किया कि 'नासपाती' की नोक उत्तर ध्रुव पर है। वास्तव में पृथ्वी की पूर्ण-संगणित आवृति पर यह केवल ५० फुट का नन्हा-सा उभार ही है। नासपाती का चपटा, भीतर घुसा सिरा द० ध्रुव प्रदेश में है। दक्षिण गोलार्ध में एक २५ फुट का उभार नजर आता है। डॉक्टर जैस्ट्रॉ की राय है कि नासपाती का चपटा पेंदा इस बात को इंगित कर सकता है कि द० ध्रुव प्रदेश के हिम का पिघलना ठोस पृथ्वी के वापस उछल सकने से ज़्यादा तेज है। वह सुझाते हैं कि पृथ्वी उतनी नरम नहीं है जितनी पहले समझी जाती थी। यहाँ इस बात पर जोर दे देना चाहिए कि इन वेंगार्ड-परिणामों के स्पष्टीकरण अभी तक सैद्धान्तिक ही हैं।

पृथ्वी का अध्ययन करने की भूकम्पी पद्धतियों से भी नतीजे निकले हैं। चिली तथा पेरू की ताम्र खदानों में कृत्रिम विस्फोटों के भूकम्प-श्रवण ने इस बात की ओर इंगित किया है कि पर्वतों-सम्बन्धी यह धारणा कि वे पृथ्वी के आवरण पर हिमशैलों की भाँति इस प्रकार तैरते हैं कि उनका अधिकांश भाग नीचे घुसा रहता है, सदा सही नहीं होती। कुछ पर्वतों की जड़ें बहुत गहरी जाती नहीं लगतीं। यह हो सकता है कि इन पहाड़ों में जड़ों का एक ऐसा जाल हो, जो आवरण में बहुत गहराई तक फैला होता है और वे वस्तुतः 'तैरती' नहीं। यह धारणा भू-सन्तुलन की पुरानी धारणा से मेल नहीं खाती, तथापि संसार के पर्वतों के बारे में अभी भी और काम करना बाकी है।

द० ध्रुव प्रदेश में किये गए भूकम्पी विस्फोटों ने इंगित किया है कि 'महाद्वीपीय' किनारे के साथ-साथ हिम के नीचे द्वीपों का अस्तित्व है, क्योंकि कुछ हिम समुद्र की सतह से नीचे है, फिर भी अंतःप्रदेश का अधिकांश स्थल का ही है। लेकिन हो सकता है कि यह स्थल-प्रदेश एक जल-धारा द्वारा, जो रॉस को या तो वेड्डेल या वेलिंगश्वासेन समुद्र से मिलाता है, कट गया हो। भूकम्पन-कार्य से हमें अभी द० ध्रुव 'महाद्वीप' का सम्पूर्ण चित्र नहीं मिल पाया है।

अयनमण्डल

अन्तरिक्ष के किनारे के पास उच्च, विद्युतावेशित वायुमण्डल में नये तथ्यों की खोज हुई।

जैसा कि हम देख चुके हैं, अयनमण्डल सूर्य के विकिरण का एक परिणाम है। तथापि अजीब बात यह पायी गई कि दक्षिण ध्रुव पर अयनमण्डल शीतकालीन ध्रुवीय रात्रि में भी, जब महीनों सूरज नहीं चमकता, कायम रहता है। ध्रुवीय रात्रि का यह अयनमण्डल टुकड़ों में तथा मेघों में बँटा रहता है, फिर भी यह इतना सघन होता है कि रेडियो-तरंगों को वापस उछाल दे और सरदियों में रेडियो संचार को सहायता दे। अंभूव में यह बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। लेकिन इससे एक सवाल पैदा होता है—ये अयनित मेघ कहाँ से आते हैं? क्या वे सूर्य-प्रकाशित क्षेत्रों से प्रेत, पवनों के रूप में आ जाते हैं? या वे सूर्य-प्रकाशित ग्रीष्म के अवशेष हैं?

वैज्ञानिक इसलिए भी चक्कर में हैं कि द० ध्रुव प्रदेश के ऊपर के ये अयनित मेघ रात-दिन में वैभिन्न्य दरशाते हैं, जिससे फिर यह लगता है कि ये सूर्य के प्रभाव में होने चाहिएँ। इस पर भी सूर्य सरदियों में महीनों तक लगातार क्षितिज के नीचे रहता है और गरमियों में जब सूर्य लगातार आकाश में रहता है, तो दिन-रात नहीं होते।

अंभूव ने सिद्ध कर दिया है कि अयनमण्डल में २०० से ३०० मील प्रति घण्टे की चाल से चलने वाली पवनें हैं। द० ध्रुव प्रदेश के चकत्ते इनसे पैदा हो सकते हैं, लेकिन क्या पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की रेखाओं को

काटते समय ये धाराओं और चुम्बकीय वैभिन्न्य को भी उत्पन्न करती हैं ? बीच के अक्षांशों में ये अयनमण्डलीय वैद्युतिक पवन सीधे सूर्य से उत्पन्न होती हैं और इसलिए ये दिवाकालीन घटनाएँ हैं। ये विषुववृत्त के ऊपर, उस प्रदेश में, जहाँ पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र आड़ा है, बहने वाली विद्युतजेटों से सम्बद्ध मालूम पड़ती हैं। अंभूव के दौरान अमरीकी वैज्ञानिकों ने राकूनों के नभावतरण के द्वारा विषुववृत्ति पर ऐसी एक के ऊपर एक दो विद्युतजेटों का पता चलाया।

चपल अयनमण्डल इतना जटिल है और सूर्य, ऋतुओं तथा पृथ्वी के परिक्रमण से इस कदर निकट सम्बन्धित है कि हर खोजा हुआ तथ्य रेत के एक कण-जैसा ही है। इससे जानकारी में मामूली-सी ही वृद्धि होती है। पृथ्वी के विभिन्न अक्षांशों और पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के विभिन्न प्रदेशों में अयनमण्डल के स्तरों का आचरण भिन्न-भिन्न है। 'सीटीकार' तक विभिन्न अक्षांशों और पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग तरह का आचरण करते हैं। अलास्का में लघु 'सीटी' आम हैं, पर अमरीका के पूर्वी तट पर वे दुष्प्राप्य हैं। क्यों ? इन रूपों तथा क्रियाओं के स्पष्ट होने में कई वर्ष लग जाएँगे।

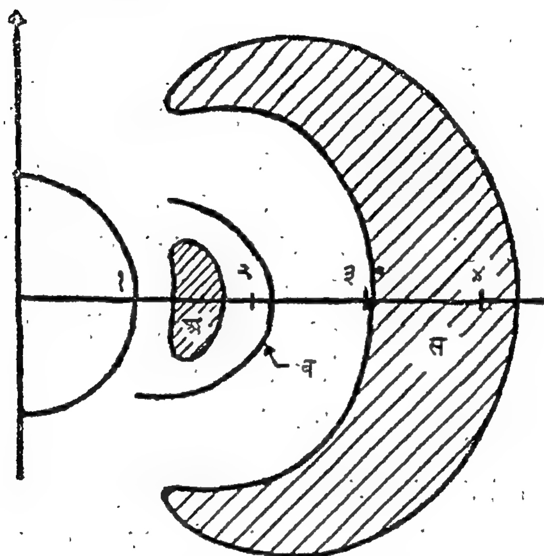
सूर्य, पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष

अंभूव-अंभूस के अन्त तक अमरीकी तथा सोवियत वैज्ञानिक अन्तरिक्ष-युग के पहले वर्षों की उपलब्धियों का सरसरा आकलन कर चुके थे।

अगस्त, १९५९ में एक प्रमुख सोवियत अन्तरिक्ष वैज्ञानिक, ए० वाई० शुदाकोव ने लिखा था, "अब तक उपग्रहों तथा रॉकेटों की सहायता से किये वैज्ञानिक अनुसन्धान के सबसे रोचक और अप्रत्याशित परिणामों में से एक पृथ्वी की सतह से १००० और १०,००० किलोमीटर (६२५ से ६२५० मील) की दूरी पर स्थित उच्च तीव्रतायुक्त आवेशित कणों के दो अंचलों की खोज है···इन वलयों के अस्तित्व का पहला प्रायोगिक प्रमाण वान एलेन द्वारा अमरीकी उपग्रहों एल्फा तथा गामा (एक्सप्लोरर प्रथम तथा तृतीय) की उड़ानों के दौरान प्राप्त किया गया था।"

इस खोज के महत्त्व की पुष्टि करते हुए अमरीकी अन्तरिक्ष अभिकरण के डॉक्टर रॉबर्ट जैस्ट्रा ने जुलाई, १९५९ में लिखा था, "यह (वान एलेन) खोज अंभूव के उपग्रह कार्यक्रम की सबसे उल्लेखनीय वैज्ञानिक अनुसंधान-उपलब्धि है।"

भूचुम्बकीय अक्ष



आकृति १६—पाशबद्ध प्राकृतिक विकिरण के वान एलेन प्रदेशों की सापेक्षता में आर्गस आवरणों की सन्निकट स्थिति। अ आंतरिक वान एलेन पट्टी है, ब आर्गस आवरणों की स्थिति है और स बाह्य वान एलेन पट्टी है। पैमाना पृथ्वी के अर्धव्यास में है।

वाशिंगटन में डॉक्टर विलार्ड एच० बेनेट के प्रयोगों ने अंभूव के आरम्भ के पूर्व पृथ्वी के इर्द-गिर्द कम-से-कम एक ऐसा वलय पाने की संभावना की ओर इंगित किया था। आकृति ६ अब भी वान एलेन वलय सरल नमूने का काम दे सकती है। लेकिन कोई भी सरल प्रयोगशाला

प्रारूप जितना बता सकता था, अन्तरिक्ष में परिस्थितियाँ उससे अधिक जटिल निकलीं।

पृथ्वी के आस-पास एक नहीं, बल्कि दो वलय हैं। बाहरी वलय सूर्य से आये कणों से बहुत-कुछ बेनेट के सुझाए ढंग से ही बना लगता है। इसकी तीव्रता का चरम पृथ्वी से कोई १०,००० मील ऊपर है और यह बाह्य अन्तरिक्ष में कोई ३५,००० मील तक फैला हुआ है। भीतरी वलय की तीव्रता का चरम पृथ्वी से कोई २५०० मील ऊपर है। इस भीतरी वलय में असाधारणतः उच्च ऊर्जा के—एक खरब वोल्ट तक के—कण और धीमे कण भी हैं। ये उच्च ऊर्जा-कण प्रोटान हैं और ये सम्भवतः वायु-मण्डल में अन्तरिक्ष-किरण-विस्फोटों के और इन खण्डित परमाणुओं के अवशेषों—'तीव्र न्यूट्रानों के बीटा क्षयज कणों'—के विद्युतावेशित वलय में पाशबद्ध हो जाने के परिणाम हैं। यह भीतरी वलय मानवयुक्त अन्तरिक्ष-उड़ान के लिए अप्रत्याशित खतरों का अंचल है, क्योंकि अन्तरिक्ष-यान से टकराने वाले कण उसके भीतर संघातक एक्स-किरणें पैदा कर देंगे। दोनों ही वलयों के सभी पाशबद्ध कणों की स्पष्ट प्रकृति की अभी जाँच चल ही रही है।

वान एलेन वलयों की खोज की ओर ले जाने वाली घटनाओं का रोजनामचा अंभूव के महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों में है—पहला अमरीकी उप-ग्रह, एक्सप्लोरर प्रथम, ३१ जनवरी १९५८ को नभावतरित किया गया। इसमें ब्रह्माड-किरणों को मापने के लिए वान एलेन द्वारा निर्मित गाइगर-गणक था।

७ और ८ फरवरी को सूर्य खासी क्रियाशीलता का प्रदर्शन कर रहा था। ९ फरवरी की शाम को ४·०८ और ६.०२ बजे के बीच हवाई तथा अमरीका की वेधशालाओं ने सूर्य पर एक असामान्य उद्वेग देखा। उसी समय सूर्य से एक बड़ा रेडियो शोर पृथ्वी पर पहुँचा।

२४ घंटे से अधिक बाद, १० फरवरी की शाम को ८.२९ पर अम-रीका में एक चुम्बकीय वेधशाला ने पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के 'एच' या 'आई' भाग की सामर्थ्य में अचानक उछाल दर्ज की। एक मिनट के बाद,

८.३० पर, उत्तरी गोलार्ध में एक विशाल मेरु प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ, जो उ० ध्रुव प्रदेश से क्यूबा तक फैला हुआ था। प्रकटतः पृथ्वी पर उद्वेग से आते विद्युतावेशित कणों ने चोट की थी। साथ ही चुम्बकीय क्षेत्र में वृद्धि पृथ्वी की ओर आती अनेक ब्रह्मांड-किरणों को वापस मोड़ रही थी।

उसी शाम को ८.५६ पर चुम्बकीय क्षेत्र में एक दूसरी, अधिक बड़ी, वृद्धि देखने में आई। साथ ही शक्तिशाली पार्थिव धाराएँ भी दर्ज की गई। लगता था कि कणों की एक दूसरी तरंग ने पृथ्वी पर आघात किया है। एक मिनट बाद, ९.०० बजे, दुनिया-भर में भू-स्थित ब्रह्मांड-किरण-स्टेशनों ने पृथ्वी पर गिरने वाली किरणों में ४ से ६ प्रतिशत की कमी दर्ज की। ज्यादा ऊँचाइयों पर कमी १५ प्रतिशत तक थी। उसी समय उत्तरी अमरीका पर का आकाश एक असामान्य मेरु प्रकाश से अचानक लाल हो गया।

अगले दो मिनट में, ९.०२ पर, पार्थिव धाराएँ चरम पर पहुँच गई। उत्तर अटलांटिक टेलीफोन केबल ने यूरोप तथा अमरीका के बीच विभव में २६५० वोल्ट का अन्तर दर्ज किया। धारा यूरोप को पूर्वी अमरीका में किसी स्थान से जा रही थी। ९.०९ बजे विभव का रुख उलट चुका था। उस रात को ११.४५ पर छोड़े गए एक गुब्बारे ने वायुमण्डल की इलेक्ट्रानी बमबारी से हुए एक्स-किरण आस्फोटों को मापा।

अगले दिन, ११ फरवरी को, सुबह १.२२ पर चुम्बकीय वृद्धि गिरने लगी। २.३० बजे गुब्बारे को एक्स-किरणें माप में नहीं मिलीं।

लेकिन सुबह ३.५० पर चुम्बकीय क्षेत्र में एक नयी वृद्धि दर्ज की गई और वायुमण्डल की इलेक्ट्रानी बमबारी से एक्स-किरणों का एक नया आस्फोट आरम्भ हो गया। ५.०० बजे मेरु प्रकाश-प्रदर्शन अपने चरम पर पहुँच गया। यह आधुनिक काल के सबसे चमकदार मेरु प्रकाश में था। पूर्व से पश्चिम तक इसका विस्तार ६००० मील और उत्तर से दक्षिण तक २५० मील था और यह पृथ्वी से १२५ से ५०० मील तक की ऊँचाई पर था।

लगभग एक सप्ताह तक ब्रह्मांड-किरणों की पृथ्वी पर आघात करने

की रफ्तार सामान्य नहीं हुई। प्रकटतः कणों तथा उनके प्रभावों के नतीजे अभी भी असर कर रहे थे।

इस सारी अवधि में अमरीकी उपग्रह एक्सप्लोरर प्रथम पृथ्वी के इर्द-गिर्द अपनी कक्षा में था। उसकी कक्षा का दूरतम विंदु १५७३ मील था और निकटतम २१९ मील। हर बार दूरतम विन्दु पर पहुँचने पर अत्यधिक विकिरण के कारण उसका गाइगर गणक रुक गया, फिर भी सौर-धारा के आघात के समय अपने निकटतम विन्दु पर वह विकिरण में तीन गुनी वृद्धि दर्ज कर सका था। एक्सप्लोरर प्रथम की कक्षा निचले वलय के भीतर ही थी और यद्यपि उसका गाइगर गणक ब्रह्माण्ड-किरण-अध्ययन के लिए बनाया गया था, वह ब्रह्माण्ड किरणों से कई गुने तेज सौर-कणों की इस बमबारी को पकड़ रहा था।

फरवरी, १९५८ की यह सौर-धारा वेनेट की प्रयोगशाला-निर्मित धारा से कहीं जटिल थी, यद्यपि कई बातों में वह उसके समान ही लगती है। (इन धाराओं की स्पष्ट प्रकृति तथा रचना अभी निर्धारित नहीं हुई है।) फरवरी की धारा प्रकटतया विद्युतावेशित-कणों की, जो एक-दो घंटे लम्बे उद्वेग से फूटे थे, एक 'नदी' थी। इसका विस्तार ४,६०,००,००० मील था और पृथ्वी को पार करने में इसे २४ घण्टे लगे थे। इसका अग्रभाग लगभग ४००० मील चौड़ा था, अर्थात् पृथ्वी के अर्धव्यास के बराबर; और इसकी चाल ८७५ मील प्रति सेकण्ड के करीब थी। धारा के अग्रभाग ने, जिसमें तीव्रतम कण थे; पृथ्वी पर एकाएक आघात किया। धीमे कणों वाले दो और अग्रभाग उसके बाद में आए।

ख़याल किया जाता है कि सूर्य से पृथ्वी के बीच फैली ऐसी विद्युत की नदियाँ वे चुम्बकीय राजमार्ग भी हो सकती हैं, जिन पर होकर तीव्रतर ब्रह्माण्ड-किरणें सूर्य-प्रदेश से आ सकती हैं।

२६ मार्च, १९५८ को अमरीका ने एक्सप्लोरर तृतीय छोड़ा। इसका गाइगर गणक भी उसी उच्च तीव्रता के विकिरण में पहुँच गया। कुछ सप्ताह तक अभिलेखों पर विचार करने और घटना का अध्ययन करने के बाद जेम्स वान एलेन ने इसका जवाब निकाल लिया। १ मई, १९५८ को

वाशिंगटन में राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने एक विशेष प्रेस सम्मेलन का आयोजन किया। अन्तरिक्ष-युग का यह पहला वास्तविक वैज्ञानिक प्रेस-सम्मेलन था।' डॉक्टर जेम्स ए० वान एलेन ने घोषित किया कि "शीघ्र अन्तरिक्ष-अभियान की मनुष्य-जाति की योजनाओं में पृथ्वी से १००० मील ऊपर अप्रत्याशित रूप से भारी विकिरण की एक पट्टी बाधक सिद्ध हो सकती है...इस विकिरण की यथार्थ प्रकृति अभी निर्धारित नहीं हुई है, किन्तु यह विश्वास किया जाता है कि ये कण सूर्य से आते हैं।"

दो सप्ताह बाद, १५ मई, १९५८ को रूसियों ने स्पुतनिक तृतीय छोड़ा। इसके उपकरण भी वान एलेन विकिरण को ग्रहण करने लगे। किन्तु यह एक दूसरी, बाहरी पट्टी के प्रमाण भी ग्रहण करने लगा। प्रत्यक्षतः इससे रूसी वैज्ञानिक असमंजस में पड़ गए। स्पुतनिक तृतीय की कक्षा एक्सप्लोरर प्रथम अथवा तृतीय की कक्षाओं से नीची थी। किन्तु स्पुतनिक तृतीय की कक्षा अधिक उत्तरमुखी (विपुववृत्त के साथ ६५°) थी, अतः यह इस बाह्य वलय के छोर से होकर गुज़र रहा था, जहाँ यह वलय लगभग ५५° से ६५° अक्षांश पर उत्तरी तथा दक्षिणी मेरु प्रकाश अंचलों में झुक जाता है।

अमरीकी उपग्रहों की कक्षा इतनी उत्तरवर्ती नहीं थी। उनका पथ केवल ३४° उत्तर तथा दक्षिण अक्षांश तक का था, अतः वे मेरु प्रकाश अंचलों के निकट बाह्य वलय के प्रमाण-क्षेत्र में नहीं जा सकते थे। इसके अलावा अमरीकी तथा सोवियत उपग्रहों की कक्षाएँ इतनी ऊँची नहीं थी कि वे पृथ्वी के चुम्बकीय विषुववृत्त के ऊपर बाह्य वलय के सम्पर्क में आते। वस्तुतः सोवियत वैज्ञानिक दोनों ही वलयों को ठेठ नवम्बर, १९५७ से स्पुतनिक द्वितीय में ग्रहण कर रहे थे। प्रत्यक्षतः वे यह नहीं जान पाए कि अपनी इस सूचना का क्या अर्थ लगाएँ। पाशबद्ध कणों का विचार सैद्धांतिक था और वैज्ञानिकों को ज्ञात था तथा बेनेट व अन्य वैज्ञानिक इसको समझा चुके थे। फिर भी जब तक वान एलेन ने अपनी घोषणा नहीं की सोवियत वैज्ञानिक यह नहीं समझ पाए कि वे किस चीज़ का सामना कर रहे हैं।

इसी बीच एक और अमरीकी उपग्रह, एक्सप्लोरर चतुर्थ ने इस विकिरण की खोज शुरू कर दी (आगे आर्गस परियोजना देखिए)। सोवियत वैज्ञानिकों ने अन्त में कहीं अगस्त, १९५८ में जाकर घोषणा की कि उनके उपग्रह भी इन कणों के प्रमाण दे रहे हैं।

११ अक्तूबर, १९५८ को अंशतः सफल अमरीकी अन्तरिक्ष संधान पायनियर प्रथम भीतरी पट्टी की सीमाएँ माप सका और इस प्रकार निर्धारित कर सका कि यह एक पट्टी या 'वलय' है।

६ दिसम्बर, १९५८ को अमरीका ने अपने अन्तरिक्ष सन्धान, पायनियर तृतीय को छोड़कर ६३,५८० मील की ऊँचाई तक पहुँचा दिया। इसके परिणामस्वरूप अमरीकी वैज्ञानिकों ने यह सूचना देकर कि पायनियर तृतीय एक के बाद एक करके दोनों वलयों से गुज़रा था, बाह्य विकिरण पट्टी की 'खोज' की औपचारिक घोषणा की।

वान एलेन वलयों की खोज की यह संक्षिप्त रूपरेखा अन्तरिक्ष घटना तथा अनुसन्धान की कुछ जटिलताएँ प्रकट करती है। लगभग तुरन्त ही, और अंशतः वान एलेन-खोज के परिणामस्वरूप, अमरीका ने अंभूव-काल के अपने सबसे शानदार प्रयोग 'आर्गस परियोजना' की योजना बनाई।

आर्गस परियोजना

आर्गस परियोजना मनुष्य का अन्तरिक्ष की परिस्थितियों को बदलने का—उन्हें केवल मापने का ही नहीं—पहला प्रयास है।

मूलतः अंभूव का अंग न होते हुए भी गुप्त सैनिक 'आर्गस परियोजना' अन्तरिक्ष युग के उद्घाटित होते विज्ञान तथा प्रशिल्प का अंग तो थी ही। यह अंभूव का अंग इसलिए बन गई कि अन्ततः अंभूव के एक उपग्रह और अंभूव के वैज्ञानिकों तथा प्रविधियों को भी इस प्रयोग में शामिल कर लिया गया था और इसलिए भी कि अन्तरिक्ष घटना को पूरी तरह छिपाकर 'राष्ट्रीय रहस्यों' की तरह नहीं रखा जा सकता।

आर्गस परियोजना की परिकल्पना वान एलेन वलयों की खोज के पहले की गई थी। वेनेट-प्रयोगों की भाँति यह भी एक ऐसे सिद्धान्त पर

आधारित था, जो चुम्बकीय पृथ्वी के इर्द-गिर्द पाशबद्ध विद्युत्-कणों का एक वलय होने की सम्भावना की ओर इंगित करता था। इस सिद्धान्त के अनुसार सही चाल से तथा सही दिशा में चलने वाला इलेक्ट्रान पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में पाशबद्ध हो जाएगा और यह उस क्षेत्र की किसी अदृश्य बल-रेखा के आसपास सर्पिल गति से घूमने लगेगा। जब वह पृथ्वी के बहुत निकट आ जाएगा, तो यह कण या तो पृथ्वी के ऊपरी वायुमण्डल के किसी अणु पर आघात करेगा; या चुम्बकीय क्षेत्र, जो पृथ्वी के निकट अधिक बलशाली है, उसे बल-रेखा के साथ-साथ सर्पिल गति से वापस भेज देगा। तब यह कण इस बल-रेखा पर चलकर दूसरे गोलार्ध चला जाएगा और इस प्रक्रिया की सम्भवतः लाखों बार पुनरावृत्ति होगी। कण पाशबद्ध हो जाएगा। पाशबद्ध कण साथ ही अपने सर्पिल, रेखीय पथों पर चलते-चलते पूर्व की ओर सरकते जाएँगे। फलस्वरूप यदि काफ़ी इलेक्ट्रान पाशबद्ध हो जाएँगे, तो एक वलय बन जाएगा। प्रयोगशाला में बेनेट ने मुख्यतः यही किया था।

अक्तूबर, १९५७ में, सोवियत संघ द्वारा अपने पहले स्पुतनिक के छोड़े जाने के बाद तथा अमरीका के एक्सप्लोरर प्रथम के छोड़े जाने के पहले से कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के एन० सी० क्रिस्तोफिलोस इस समस्या पर विचार कर रहे थे। उनका ध्यान इस ओर गया था कि कुछ छोटे तथा कमज़ोर परमाणु-विस्फोटों से पृथ्वी के ऊपरी वायुमण्डल में कई विद्युत्-चुम्बकीय प्रभाव उत्पन्न हो गए थे। बेनेट जबकि सूर्य पर के विस्फोटों से सिद्धान्तः आने वाले इलेक्ट्रानों के साथ प्रयोग कर रहे थे, क्रिस्तोफिलोस इस बात को सोच रहे थे कि यदि ये विस्फोट मानव-निर्मित हों और यदि इलेक्ट्रान परमाणु बम से आएँ, तो इस प्रदेश में क्या होगा? क्रिस्तोफिलोस के अनुसार इलेक्ट्रान एक वलय बना लेंगे, और अपने पथों के पेंदे पर वायुमण्डल पर आघात करके वे मेरु प्रकाश को, तथा सम्भवतः रेडियो-अवरोधन और पृथ्वी के क्षेत्र में वैभिन्य-जैसे अन्य विद्युत् चुम्बकीय प्रभाव उत्पन्न करेंगे।

यह एक दिलचस्प विचार था और अमरीकी परमाणु तथा सैनिक

वैज्ञानिकों में इस पर विचार-विमर्श हुआ। इसलिए क्रिस्तोफिलोस की योजना बड़ी गोपनीयता के साथ राष्ट्रपति की विज्ञान-परामर्शदात्री समिति के आगे रखी गई। अप्रैल, १९५८ के अन्त में इसे समिति का अनुमोदन मिल गया। तभी, १ मई को, वान एलेन ने पृथ्वी के आसपास पाशबद्ध कणों के वलय की खोज की घोषणा की। विभिन्न सैन्य अभिकरणों को इस परियोजना में कार्यभार दिये गए और वान एलेन को एक अभूव उपग्रह के लिए ऐसे उपकरण तैयार करने के लिए कहा गया, जो न केवल पृथ्वी के प्राकृतिक वलय को ही, वरन् प्रस्तावित कृत्रिम वलय को भी ग्रहण करते।

वान एलेन के उपकरणों से लैस अमरीकी उपग्रह एक्सप्लोरर चतुर्थ २६ जुलाई, १९५८ को छोड़ा गया। आर्गस परियोजना की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह विषुववृत्त के साथ ५०·२९° के कोण पर छोड़ा गया था। यद्यपि उपग्रह की कक्षा बहुत ऊँची नहीं थी, तो भी उत्तर तथा दक्षिण में उसकी कक्षा इतनी आगे चली ही जाती थी कि वहाँ वह कृत्रिम वलय में सो होकर गुजरे।

एक महीने के बाद, २७ अगस्त १९५८ को, एक निम्न शक्ति का परमाणु बम एक बहुखण्डी रॉकेट द्वारा ३०० मील की ऊँचाई पर पहुँचवाकर पृथ्वी के अधिकांश वायुमण्डल के ऊपर विस्फोटित किया गया। रॉकेट दक्षिण अटलांटिक में अमरीकी नौ-सैनिक पोत **नोर्टन साउंड** से दागा गया था। दूसरा बम ३० अगस्त को और तीसरा ६ सितम्बर को दागा गया।

आर्गस परियोजना पर २६ मार्च, १९५९ को प्रसारित अधिकृत रिपोर्ट उसके परिणामों का विस्तृत ब्यौरा देती है :

"चित्ताकर्षक प्रेक्षणों की एक पूरी शृंखला उपलब्ध की गई। आस्फोट की प्रारम्भिक चमकदार दमक के बाद वायुमण्डल में एक हलकी, मगर निरन्तर मेरु प्रकाशीय द्युति पैदा हुई, जो आस्फोट-बिन्दु से होकर जाने वाली चुम्बकीय रेखाओं के साथ ऊपर और नीचे की तरफ फैल गई।

"लगभग उसी समय, उस बिन्दु पर, जहाँ उत्तरी गोलार्ध में यह बल-रेखा अजोरेज़ द्वीपों के निकट पृथ्वी के वायुमण्डल में वापस आती है—तथाकथित संयुग्मी बिन्दु पर—आकाश में एक चमकदार प्रभामण्डलीय

उद्दीप्ति पैदा हुई और यह इस घटना की आशा में वहाँ पहले से ही तैनात वायुयानों से देखी गई।

"अभिलेखन की जटिल शृंखला का आरम्भ हुआ। इतिहास में पहली बार संसार-व्यापी पैमाने पर भू-भौतिकीय घटना के मापों को मात्रात्मक रूप से ज्ञात एक कारण—पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में एक ज्ञात समय तथा ज्ञात स्थिति पर ज्ञात ऊर्जाओं के इलेक्ट्रानों की एक ज्ञात संख्या का सूच्चा-निक्षेप—से संबद्ध किया जा रहा था।"

उत्तर तथा दक्षिण के अपनी सुदूरगामी कक्षा पर से गुज़रने के दौरान एक्सप्लोरर चतुर्थ इस वलय को ग्रहण कर रहा था। किन्तु सोवियत स्पुतनिक तृतीय भी इस नये वलय से होकर गुज़रता था, और इस बात का कुछ प्रमाण है कि सोवियत वैज्ञानिक यह सन्देह करने लगे थे कि यह वलय किसी अमरीकी परमाणु विस्फोट का परिणाम है। शेष संसार को इन विस्फ़ोटों के बारे में कुछ नहीं मालूम था।

इसी बीच दुनिया-भर में—भूमि पर और जहाज़ों तथा हवाई जहाज़ों पर—अमरीकी वैज्ञानिक परिणामों का अध्ययन कर रहे थे। अयनमण्डल में तथा वलय के निम्न किनारों में परिवर्तनों का अध्ययन करने के लिए कई जगहों से रॉकेट दागे जा रहे थे। एक्सप्लोरर चतुर्थ ने इस वलय से गुज़र-गुज़रकर कोई १६४ बार अच्छे माप लिये। इन मापों की आर्गस बमों के विस्फोट से पहले व्याप्त परिस्थितियों के साथ तुलना करना संभव था।

एक्सप्लोरर चतुर्थ ने पाया कि ये वलय उसी प्रकार के कणों के बने हुए थे, जिनकी बम-विस्फोटों के परिणामस्वरूप उत्पन्न करने की योजना थी। यह वलय पृथ्वी की सतह से बाहर की तरफ कोई ४००० मील तक चला गया था। यह लगभग ५६ से ९२ मील मोटा था और अपने जीवन-काल-भर इसने अपनी आकृति कायम रखी। २००-३०० मील की ऊँचाइयों पर, जहाँ रॉकेटों ने वलय को उसके निचले छोरों पर भेदा, इसकी

मोटाई कुछ दर्जन मील ही थी। वलय के कण उसके छोरों से, निम्न 'दर्पण' विन्दुओं से होकर धीरे-धीरे 'क्षरित' हो रहे थे। इन विन्दुओं पर कुछ कण परावर्तित होकर वलय में ऊपर की तरफ वापस चले जाते थे और कुछ पृथ्वी की वायु के अणुओं से टकराते थे।

वलय ने इंगित किया कि पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की आकृति का जो अनुमान लगाया गया था, उससे वह बहुत भिन्न नहीं थी। वलय के दोनों—उत्तरी तथा दक्षिणी—सिरों पर मेरु प्रकाश देखे गए थे। ये आँखों से भी देखे गए और राडार द्वारा ग्रहण भी किये गए। इन मेरु-प्रकाशों के वर्णक्रम-विश्लेषण से पता चला कि ये उन कणों के कारण थे, जो उच्चतर वायु की ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन पर आघात करते हैं। ये मेरु प्रकाश १५० से ३५० मील की ऊँचाइयों पर देखे गए थे। दक्षिण अटलांटिक क्षेत्र में बम-विस्फोट के बाद एक मिनट के भीतर ही राडार ने इन्हें पृथ्वी के उत्तरी संयुग्मी पार्श्व पर ग्रहण कर लिया था। विद्युत् चुम्बकीय उत्पातों को भूमि पर मापा गया। संसार में रेडियो-संग्रहण पर इसका अलग-अलग तरह का प्रभाव पड़ा—कहीं संग्राहिता नष्ट हो गई, कहीं बढ़ गई।

वैज्ञानिक इस तथ्य से प्रभावित हुए कि यद्यपि इलेक्ट्रान-ऋण उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर लाखों बार आते-जाते रहे, पर वलय ने अपनी आकृति कायम रखी। ठेठ २१ सितम्बर तक, जबकि एक्सप्लोरर चतुर्थ की बैटरियाँ अन्ततः क्षय हो गईं, वह इस वलय को उपस्थिति को ग्रहण करता रहा था। ६ दिसम्बर को छोड़े गए पायनियर तृतीय तक ने इस वलय के अवशेषों का भू-चुम्बकीय विषुववृत्त के खूब ऊपर आभास पाया मालूम होता है। तथापि ३ मार्च, १९५९ को छोड़े गए पायनियर चतुर्थ ने इस वलय का आभास नहीं पाया।

अन्तरिक्ष की 'परखनली' में मनुष्य के पहले सृजनात्मक प्रयोग के कुछ वैज्ञानिक परिणाम ये थे। सैनिक महत्त्व के परिणाम घोषित नहीं किये गए हैं, पर सम्भवतः उनका सम्बन्ध रेडियो, राडार तथा निर्देशन पर प्रभावों से है।

अन्तरिक्ष युग का उद्घाटन

वान एलेन वलयों की खोज अन्तरिक्ष-युग के प्रारम्भिक वर्षों की पहली महती वैज्ञानिक उपलब्धि है। चूँकि सभी नक्षत्र तथा सूर्य विद्युतावेशित कणों का उत्सर्जन करते हैं, इसलिए चुम्बकीय क्षेत्र वाले हर ग्रह तथा चन्द्रमा के पास एक वान एलेन वलय भी होगा। और क्योंकि ब्रह्माण्ड-किरणें समस्त विश्व में भ्रमण करती हैं, इसलिए वायुमण्डल वाले हर ग्रह या चन्द्रमा के पास ब्रह्माण्ड किरण-विस्फोटों से उत्पन्न एक खतरनाक उच्च ऊर्जायुक्त वलय होगा।

लेकिन वान एलेन वलयों के अन्य पहलू भी हैं। अवकाश-युग के तीसरे साल में सोवियत संघ तथा अमरीका, प्रत्येक के पास इतनी रॉकेट-शक्ति थी कि मनुष्य को पृथ्वी के इर्द-गिर्द कक्षा में डाला जा सके। लेकिन दो समस्याओं के कारण मनुष्य अन्तरिक्ष में न जा सका। ये समस्याएँ थीं—(१) सुरक्षित पुनरागमन; (२) विकिरण का खतरा। यान की पुनः-प्राप्ति तथा पुनरागमन की समस्या प्राविधिक थी और हल की जा सकती थी। विकिरण की समस्या वैज्ञानिक थी और इसमें अभी बहुत-कुछ अज्ञात था। उपकरणों ने वान-एलेन विकिरण की तीव्रता को माप लिया था, किन्तु वैज्ञानिकों को इस बात की तनिक भी कल्पना न थी कि इस विकिरण के प्राणिशास्त्रिक प्रभाव क्या होंगे। घातक भीतरी वलयों से मनुष्य को इसके नीचे प्रत्यक्षतः सुरक्षित कक्षा में—लगभग १२० मील—डालकर बचा जा सकता था। लेकिन १९५९ के आरम्भ में अमरीकी वैज्ञानिकों ने घोषित किया कि एक विराट् सौर उद्वेग के बाद आगत कणों से जनित तीव्र विकिरण केवल ग्यारह मील की ऊँचाई पर उड़ते गुब्बारे द्वारा मापा गया है। मनुष्य के वान एलेन वलयों के नीचे की 'सुरक्षित' मानी जाने वाली कक्षा में होने के समय यदि कोई खास तेज़ उद्वेग आस्फोटित हो जाए, तो क्या होगा? क्या उसे भारी आवरण की भी आवश्यकता होगी? मनुष्य को अन्तरिक्ष में भेजने का सबसे अच्छा समय वह होगा, जब सूर्य-कलंक-चक्र में शान्ति-काल का चरम हो। यह १९६३ के आसपास होना चाहिए।

सूर्य से आने वाली ये धाराएँ अन्य रोचक वैज्ञानिक समस्याएँ उपस्थित

करती हैं। वेनेट के प्रयोगों के अनुसार सूर्य से आती कण-धारा [illegible] यह सम्भव है कि वह पृथ्वी के वायुमण्डल और वान एलेन वलयों तक को बहुत ही निकटता से चूककर निकल जाए। जब ऐसा होगा, तो पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के कारण कणों की धाराएँ मुड़-तुड़कर फन्दों में चलने लगेंगी। किन्तु ये ऐसी विद्युत्-धाराएँ हैं, जो पृथ्वी के निकट अन्तरिक्ष में घूम-फिर रही हैं। क्या इन धाराओं का पृथ्वी पर कोई प्रभाव है? डॉक्टर वेनेट का ख़याल है कि इनका प्रभाव पड़ता है। सोवियतों को भी इन प्रभावों के कुछ प्रमाण मिले मालूम पड़ते हैं।

सोवियत अभूव की वैज्ञानिक सचिव और पार्थिव-धारा-विशेषज्ञ, वी० ए० त्रोइत्स्काया ने पाया है कि पृथ्वी ऐसी धाराओं को दर्ज करती हैं, जिनकी लय में भेद है। सूर्य से आती कण-धारा ज्यों-ज्यों पृथ्वी के वायुमण्डल के हर अगले स्तर में प्रवेश करती जाती है, यह लय बदलती जाती है। लेकिन जब कोई धारा पृथ्वी के निकट से गुज़रती है या मात्र वान एलेन वलयों में प्रवेश करती है, तो वह पृथ्वी में ऐसी विद्युत्-धाराएँ प्रेरित करती हैं, जो प्रत्यक्ष आघात के किसी सूक्ष्म स्पन्दन को नहीं दरशातीं।

चन्द्रमा

१२ सितम्बर, १९५८ को छोड़ गया सोवियत लूनिक द्वितीय चन्द्रमा पर किसी भी सम्भव चुम्बकीय क्षेत्र को मापने के लिए एक चुम्बकत्वमापी से लैस था। अगले दिन चन्द्रमा पर गिरने तक वह चुम्बकीय माप लेता रहा। सोवियत उपकरणों को चन्द्रमा पर चुम्बकत्व का कोई आभास न मिला। इस तथ्य से झट महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकालना कठिन न होगा। किन्तु हो यह भी सकता है कि सोवियत उपकरण इतना संवेदी न था कि अतीव निर्बल क्षेत्र को माप पाता। इतने निर्बल क्षेत्र का भी बड़ा वैज्ञानिक महत्त्व होगा। हो सकता है कि वह इतना कमज़ोर हो कि वान एलेन वलय के होने में या उल्लेखनीय ब्रह्माण्ड-किरणों को पलट सकने में सहायक न हो, फिर भी वह चन्द्रमा, पृथ्वी, सौर-परिवार तथा स्वयं विश्व तक की उत्पत्ति के बारे में महत्त्वपूर्ण संकेत दे सकेगा।

चन्द्रमा में चुम्बकीय अथवा द्रव क्रोड की उपस्थिति या अनुपस्थिति यह इंगित कर सकती है कि चन्द्रमा कभी पृथ्वी का अंग रहा भी था या नहीं, क्या वह पिछली अवस्था में बना था, या वह अरबों वर्ष पहले पदार्थ के कणों के संचयन द्वारा 'ठंडा' ही बना था। अन्तोक्त स्थिति में क्रोड या क्षेत्र की अनुपस्थिति सम्भव है।

चन्द्रमा ही सौर-परिवार में पदार्थ का अंग है, जहाँ आसानी से जाया जा सकता है और जो सम्भवतः अपनी उत्पत्ति के समय से बहुत बदला नहीं है। पृथ्वी की सतह पवनों तथा पानी से क्षारित होती रहती है और पर्वत-निर्माण, ज्वालामुखीय क्रिया तथा भूकम्पों द्वारा बदलती रहती है। चन्द्रमा पर उसे क्षारित करने वाला कोई वायुमण्डल नहीं है। सम्भवतः वह किन्हीं ऐसे संरचनात्मक उत्पातों से भी नहीं गुज़रा है, जिन्होंने पृथ्वी को बदल दिया है। हो सकता है कि चन्द्रमा 'मौलिक' सौर-प्रणाली का ही कुछ अंश हो।

किन्तु चन्द्रमा का हमारा अन्तरिक्ष-युगीन अध्ययन समस्याएँ खड़ी करने लगा है। एक नया तथ्य तब सामने आया, जब सोवियत ज्योतिर्विद कोज़ीरेव ने कार्बन दिखाने वाले एक वर्णक्रमीय विश्लेषण द्वारा एलफ़ोन्सस ज्वालामुख में 'ज्वालामुखीय' सक्रियता का आभास पाया। ज्वालामुखीय सक्रियता का द्रव केन्द्र की अनुपस्थिति से कैसे मेल बिठाया जाए? या कोज़ीरेव ने गैस की कुछ रिसाई को ही मापा था? यदि हाँ, तो कार्बन ही क्यों? यह कोई आसान समस्या नहीं है।

मापन और स्पष्टीकरण की कठिनाइयाँ ६ अक्तूबर, १९५९ को छोड़े गए तृतीय सोवियत अन्तरिक्ष रॉकेट द्वारा लिए चन्द्रमा के पृष्ठ-भाग के ऐतिहासिक चित्रों तक भी चली जाती हैं। यह एक असाधारण प्राविधिक कृत्य था। चित्रों से लगता है कि चन्द्रमा के पिछले भाग की सतह उसके 'सामने' वाले भाग से अधिक साफ है। लेकिन इसमें भी सावधानी बरतनी होगी। चित्र भ्रमात्मक हो सकते हैं। टेलीविज़न द्वारा लिये चित्र अपेक्षतया अस्पष्ट हैं और केवल प्रमुख चन्द्र-लक्षण ही दरशाते हैं। दूसरे चित्रों की टोन इतनी सूक्ष्म नहीं है कि अधिक छोटे लक्षण दिखा सकें। प्रविधि में उन्नति

के साथ सम्भवतः एकदम दूसरी ही सतह प्रकट हो। इसलिए अभी के निर्वाचन अस्थायी ही रहेंगे। फिर भी यह प्रविधि सही है और अमरीका तथा सोवियत संघ दोनों मंगल तथा शुक्र को चित्र खींचने वाले रॉकेट भेजने की योजनाएँ बना रहे हैं।

दूसरी प्रविधियाँ भी हमें इतनी जानकारी दे सकती हैं, उदाहरण के लिए, अमरीकी चन्द्र-वैज्ञानिक चन्द्र-शिलाओं की रेडियमधर्मिता मापने के लिए एक गामा किरण-परिचायक को चन्द्रमा के इर्द-गिर्द कक्षा में भेजने की योजना बना रहे हैं। यह चन्द्रमा पर विकिरणशील कोरियम, यूरेनियम तथा पोटाशियम की सापेक्ष प्रतिशत की ओर इंगित करेगा और यह बताएगा कि क्या भारी तत्त्वों की औसत संरचना पृथ्वी-जैसी ही है।

चन्द्रमा के सही अध्ययन में कम-से-कम दसियों वर्ष लग जाएँगे। इस बीच अधिक जटिल पिंडों—मंगल तथा शुक्र—के सम्बन्ध में एक-साथ अनेक वैज्ञानिक खोजें हो रही हैं। मिसाल के तौर पर, यह ज्ञात हो ही चुका है कि मंगल ऐसे मौसमी परिवर्तनों से गुज़रता है, जिनकी पृथ्वी से तुलना की जा सकती है। १९५९ में मंगल के मौसम की विभिन्नताओं का अध्ययन करते हुए एक हंगेरियाई वैज्ञानिक ने पाया कि वह एक-दो दिन के अन्तर से पृथ्वी की ऋतुओं का ही अनुगमन करता लगता है। क्या ऐसा सौर-कणों के यात्रा-काल के कारण होता है ? यह खोज अस्थायी ही है, किन्तु यह इस बात की ओर इंगित करती है कि भू-भौतिकीय प्रक्रियाओं का पग-पग पर अनुगमन किस प्रकार विश्व की ओर ले जाता है। हंगेरियाई वैज्ञानिकों ने मिसाल के तौर पर, यह भी पता चलाया है कि मंगल का एक चुम्बकीय क्षेत्र भी है, जिसकी शक्ति पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की शक्ति से कोई आधी है। फिर क्या मंगल के इर्द-गिर्द वान एलन वलय भी है ?

अन्तरिक्ष में मानव

कई वर्षों तक उपकरण ही अन्तरिक्ष के मुख्य अन्वेषक रहेंगे। मनुष्य शायद हमेशा ही अपने यांत्रिक 'स्काउटों' के कुछ वर्ष पीछे ही रहेगा। फिर भी निकट भविष्य में ही मनुष्य को प्रायोगिक नीची कक्षाओं में छोड़ा

ाएगा। कक्षाएँ भीतरी वान एलेन वलयों से नीचे रहेंगी और ये उड़ानें पेक्षतया कम-अवधियों की होंगी। इन उड़ानों से लेकर मनुष्य की अन्त-रक्ष में 'मुक्त उड़ान' तक कई वर्ष लग जाएँगे।

हम देख चुके हैं कि अन्तरिक्ष की शुद्ध वैज्ञानिक समस्याएँ सोवियत घ और अमरीका के लिए एक-जैसी ही हैं। अन्तरिक्ष-उड़ान की प्राणि-ास्त्रिक-चिकित्सकीय समस्याएँ भी समान ही हैं। त्वरण, भारहीनता, वेकिरण, समन्वयन तथा प्रशिक्षण, पुनरागमन तथा पुनः-प्राप्ति की वही समस्याएँ दोनों राष्ट्रों के सामने हैं। इन समस्याओं का हल कुछ विवरण ों भिन्न हो सकता है। उदाहरण के लिए, अपने प्रारम्भिक प्राणिशास्त्रिक-चेकित्सकीय प्रयोगो के लिए सोवियत वैज्ञानिक कुत्तों को उपयोग में ला हे हैं। अमरीका बन्दरों तथा चूहों को इस्तेमाल कर रहा है। सोवियत ैज्ञानिकों का दावा है कि चूहे या अति उत्तेजनशील बन्दर के मुकावले कुत्ते ी प्रतिक्रियाएँ मनुष्य की प्रतिक्रियाओं के अधिक निकट हैं।

भेद और भी हैं। अन्तरिक्ष में मानव-कार्यक्रम की इस पहली मंज़िल ें सोवियत वैज्ञानिक अधिक भारी यानों को छोड़ सकते हैं, जो किसी भी अमरीकी यान से तीन से छः गुने तक भारी हैं। इसका मतलव यह है कि विकिरण आवरण तथा अन्य सुरक्षात्मक युक्तियाँ बनाने के उनके पास अधिक अवसर हैं। अमरीका को रॉकेट-शक्ति में इस अन्तर की पूर्ति नैपुण्य े करनी चाहिए।

लेकिन सूक्ष्म भेद और भी हैं। अन्तरिक्ष-यात्रियों के प्रशिक्षण तथा परीक्षण के सोवियत सिद्धान्त अमरीकी सिद्धान्तों से कुछ भिन्न हैं। यहाँ हम सामाजिक दृष्टिकोण तथा मनुष्य के मनोवैज्ञानिक गठन के प्रति नजरिए के क्षेत्र में आ जाते हैं। सोवियत वैज्ञानिक अमरीकी ढंग के मनो-वैज्ञानिक तथा बुद्धि-परीक्षणों को ज्यादा वज़न नहीं देते। उनका दावा है कि ऐसे परीक्षणों के पीछे कल्पना यह है कि मनुष्य पृथक् प्रतिक्रियाओं तथा क्षमताओं से मिलकर बना है। इसके बजाय वे ऐसे अन्तरिक्ष-यात्रियों की तलाश में हैं जो 'समन्वयित सम्पूर्ण मनुष्य' हों। इसलिए वे अपने अन्तरिक्ष-यात्रियों के भावनात्मक स्थायित्व और बुद्धि के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण

नहीं कर रहे हैं, वरन् घर, खेल के मैदान, मित्रों के बीच और काम के दौरान उनकी प्रतिक्रियाओं को देख और आँक रहे हैं। खेल-कूद पर वे कहीं ज़्यादा ज़ोर दे रहे हैं। निःसन्देह ये सूक्ष्म भेद हैं, लेकिन ये इस बात के प्रतीक हैं कि अन्तरिक्ष-युग किस प्रकार अपना मानव-आचरण के क्षेत्र में भी प्रसार कर रहा है। अन्त में अमरीकी तथा सोवियत अन्तरिक्ष-यात्री समान रूप से ही सुप्रशिक्षित होंगे, क्योंकि दोनों को एक ही वास्तविकता का सामना करना होगा।

लेकिन असल में यह **आधुनिक मनुष्य** ही है, जो हज़ारों वर्षों के विकास के बाद, और किसी वास्तविक राष्ट्रीय अथवा सांस्कृतिक भेद के बिना अन्तरिक्ष-युग का सूत्रपात कर रहा है। अन्तरिक्ष-युग का उद्घाटन निःसन्देह अन्तरराष्ट्रीय सहकारिता का ज़्यादा तकाज़ा करेगा और इस प्रयास में राष्ट्रीय भेदों को कम करेगा।